UGC Care Listed

त्रैमासिक साहित्यिक शोध पत्रिका

ISSN-2321-1504 Nagfani

RNI No. UTTHIN/2010/34408

वर्ष-13, अंक-44, जनवरी - मार्च 2023

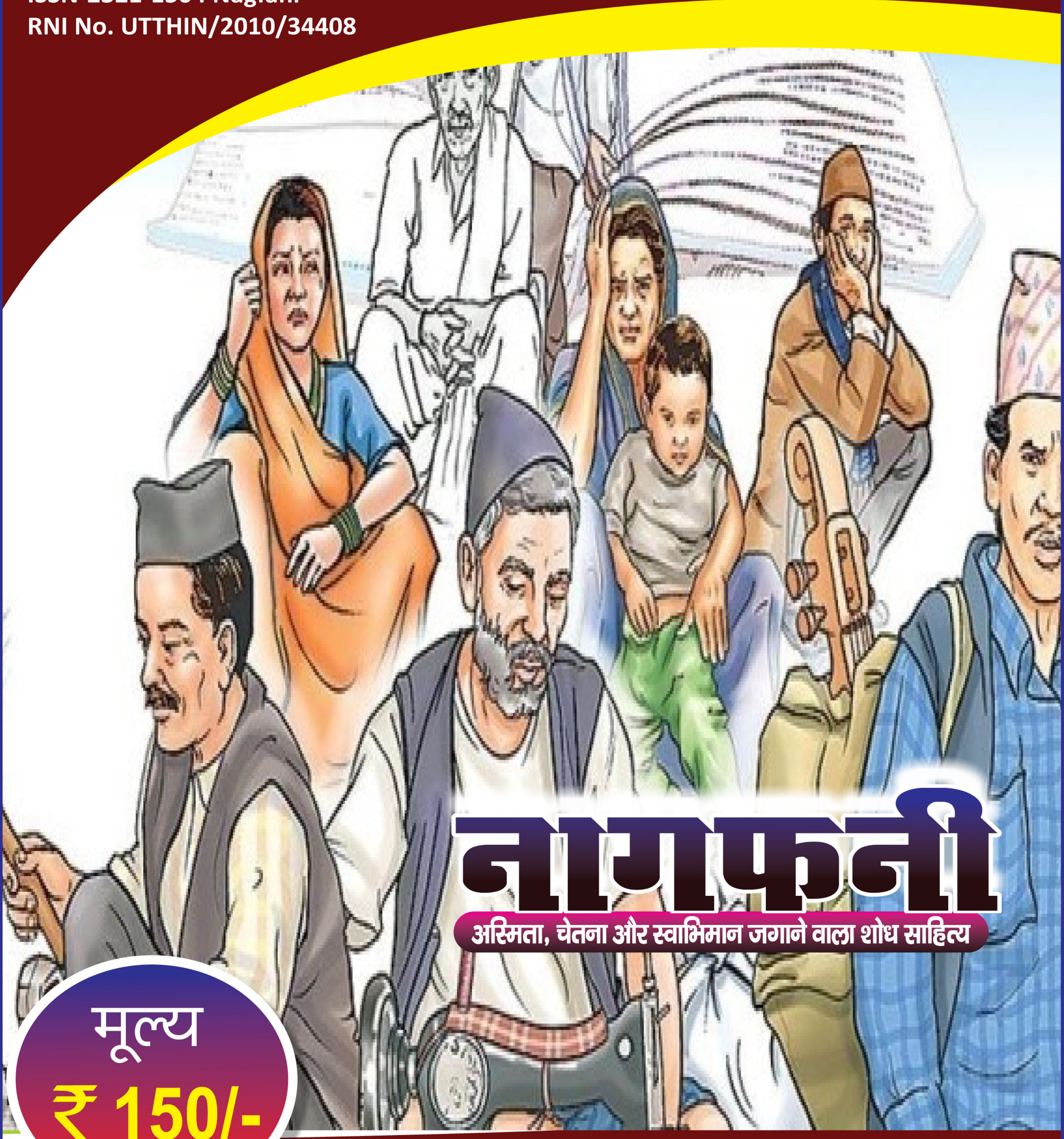

नागफनी

अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला शोध साहित्य

मूल्य
₹ 150/-

अगामी अंक की सूचना

अप्रैल से जून 45वाँ अंक के लिए आगामी 30 मई 2023 तक ही आलेख स्वीकार किये जायेंगे। 30 मई के बाद प्राप्त आलेख को उसके आगे वाले अंक के लिए रखा जाएगा। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं। स्वीकृति संबंधी मेल प्राप्त होने के बाद सदस्यता के बारे में जानकारी के लिए सम्पर्क कर सकते हैं. सदस्यता के संबंध में नागफनी के वेवसाइट पर विस्तार से जानकारी दी गयी है."नागफनी" अस्मिता,चेतना,और स्वाभिमान जगाने वाली त्रैमासिक साहित्यिक शोध पत्रिका है। इस पत्रिका को यूजीसी केयर लिस्ट मे शामिल किया गया है पत्रिका का ISSN-2321-1504 nagfani और RNI No-UTTHIN/2010/34408 नम्बर है। साथ ही यह Peer Reviewed Referred journal है। आलेख nagfani81@gmail.com पर भेजने का कष्ट करें। व्यक्तिगत पंच वार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं ।

आलेख भेजने संबंधी निर्देशः-

- शोधालेख यूनि कोड kokila फॉन्ट 16 साइज में तथा एरियल युनिकोड में टाइप करके word और PDF दोनों में भेजना है ।
- मौलिकता और प्लेगरिज्म संबंधी प्रमाण-पत्र
- अन्य किसी टाइप फान्ट को स्वीकृत नहीं किया जाएगा।
- आलेख मेल पर भेजने के बाद आलेख स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना मेल पर ही दी जाएगी ।

धन्यवाद!

नागफनी

A Peer Reviewed Refereed Journal
(अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला शोध साहित्य)
त्रैमासिक साहित्यिक शोध पत्रिका
ISSN-2321-1504NaagfaniRNI No.UTTHIN/2010/34408

वर्ष-13 अंक 44,जनवरी-मार्च-2023

संपादक
सपना सोनकर

सह संपादक
रूपनारायण सोनकर

Co Editor(English
Prof.Rajesh karankal
Dr.Santosh Kumar Sonkar

कार्यकारी संपादक
डॉ.एन.पी.प्रजापति

सलाहकार मण्डल (Peer Review Comittee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन तिरुअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह,रीवा (मध्य प्रदेश)
डॉ.एन. एस. परमार, बड़ौदा (गुजरात)
प्रो. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी.नगर (गुजरात)
डॉ.उमाकांत हजारिका, शिवसागर(असम)
प्रोफेसर संजय एल. मादार,धारवाड़ (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ.दादा साहेब सालुनके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
प्रोफेसर मोहनलाल 'आर्य' मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)
डॉ.जी.व्ही .रत्नाकर हैदराबाद(तेलंगाना)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ.एन.पी.प्रजापति द्वारा नमन प्रकाशन–423/Aअंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य।

मुख पृष्ठ– उत्कर्ष प्रजापति, सिंगरौली - मध्यप्रदेश

संपादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मंसूरी -248179, उत्तराखण्ड, दूरभाष : 0135-6457809 मो.0941077718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू. डी. आर. -62 ए ब्लॉक कॉलोनी बैढ़न, जिला-सिंगरौली म. प्र. पिन-486886 मो. 09752998467
सहयोग राशि -150/-रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1500/-रुपये, पंच वार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-3000/-रुपये पंच वार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए –3500/-रुपये, विदेशों में$50 आजीवन व्यक्ति-6000/-रुपये,संस्था-10,000/-रुपये।

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-Dalit Utkarsh Samiti–A/C–31590110006504
IFSC Code-UCBA0003159 Branch-Waidhan ward no 40

नोट:-पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक-संचालक पूर्णतया अवैतनिक एवं अध्यवसायी हैं।**'नागफनी'**में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार से सलाहकार मंडल की सहमती के उपरांत ही प्रकाशित किया जाता है।**'नागफनी'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीऑर्डर, बैंक/चेक/बैंक ट्रांसफर/ई-पेमेंट आदि से किए जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/-अतिरिक्त जोड़ें दें।

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- nagfani81@gmail.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें Website:–http:naagfani.com

दलित उत्कर्ष समिति के सौजन्य से प्रकाशित

संपादकीय 3

साहित्यिक विमर्श

1. भारतीय समाज और इतिहास की वैचारिकी सत्ता: एक विश्लेषण-**सूरज प्रकाश बडत्या** 4-8
2. हिन्दी गीत और ग़ज़ल का प्रतिबिंबात्मक वैशिष्ट्य-**डॉ.शिव शरण कौशिक** 9-12
3. गढवाल हिमालय के लोकगीतों की भाव सम्पत्ति-**डॉ.डी.एस.भण्डारी** 13-14
4. स्वातंत्र्योत्तर आलोचना के आधार स्तंभ: नामवर सिंह-**चेतन चंद्र जोशी** 15-16
5. 'वीमा' नाटक में व्यक्त विविध समस्याएँ- **डॉ.भुरे बालाजी श्रीपती** 17-19
6. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में चेतना के विविध आयाम-**रश्मि पुशाम** 20-21
7. 'छत पर दस्तक' कहानी का मूल्य -बोध-**डॉ.सुषमा चौधरी** 22-23
8. अमृतलाल नागर का 'महाकाले' उपन्यास : प्राकृतिक आपदा कोरोना के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता-**डॉ.बोबडे जयंत ज्ञानोबा** 24-26
9. हिंदी कहानी में चर्चित वृद्ध समस्याएँ -**डॉ.एन. लावण्या** 27-30
10. पत्रकारिता के बदलते आयाम:एक दृष्टि-**अमित कुमार गौतम &प्रो.दिनेश कुशवाह** 30-31
11. मुक्तिबोध की कविता में सत्ता के विरूद्ध संघर्ष-**डॉ.सुनीता कुमारी** 32-33
12. हरिशंकर परसाई की रचनाओं में व्यक्त व्यंग्य की प्रासंगिकता- **डॉ.कृष्ण विहारी राय** 33-35
13. नयी कविता और प्रयोगवाद-**अनिल मेरावी&डॉ.गंगाधर ढोके** 35-36

स्त्री विमर्श

1. दलित साहित्य में स्त्री:बदलते प्रतिमान-**रजिला. ओ.पी.** 37-38
2. सुब्रमण्यम भारती के साहित्य में नारी मुक्ति-**डॉ.के.महालक्ष्मी** 38-39
3. 'रसीदी टिकट' और 'कस्तूरी कुण्डल बसै' स्त्री संघर्ष का दस्तावेज-**अनू पाण्डेय&डॉ.विश्वजीत कुमार मिश्र** 40-41

दलित विमर्श

1. सनातन : भारतीय सामाज व्यवस्था का पोस्टमॉर्टम-**प्रा.डॉ. गिरीश मोरे** 42-51
2. सामाजिक विसंगतियों एवं दलित जीवन की त्रासदी का दस्तावेज़: 'गट्टर का आदमी'-**डॉ.पान सिंह** 52-55
3. हिंदी कथा साहित्य में अस्मिता मूलक विमर्श:विविध आयाम-**प्रो.डॉ.एम.डी.इंगोले** 56-57

आदिवासी विमर्श

1. भारत में जनजातीय विकास: आशाएं और योजनाएं-**डॉ.संजय यादव** 58-61
2. बालाघाट जिले के जनजातीय समाज की समस्याएं-**नीतेश मेश्राम&डॉ.मधुलिका श्रीवास्तव** 61-63

विविध विमर्श

1. अनुवाद में प्रोक्ति,परिवृत्ति की अवधारणा-**डॉ.श्रीराम हनुमंत वैद्य** 64-66
2. श्रीमद्भागवत में तरु पूजा-**डॉ.राखी गुप्ता** 67-68
3. भारत में विवाह के बदलते आयाम सामाजिक विधिक अध्ययन-**दिनेश कुमार** 68-69
4. वेदों में वनस्पति व औषधीय प्रबंधन-**मोनिका सिंघानिया&डॉ दीप्ति वाजपेयी** 70-73
5. भारत में समावेशी शिक्षा और उसकी उपादेयता: एक शैक्षिक अध्ययन-**डॉ.राजकुमारी गोला** 73-75
6. लॉकडाउन के दौर में दो प्रमुख हिंदी अखबारों की रिपोर्टिंग का विश्लेषणात्मक अध्ययन-**निखिल शर्मा&डॉ.कुंजन आचार्य,** 76-80

Canonical Literary Discourse

1. The changing discourse of Subalterns: From subordination to dominance-**Jayini Bhaumik& Bikram Ghosh&Dr. Bidisha Ghosh Dastidar** 81-82

Feminist Discourse

1. STRUGGLES OF MODERN INDIAN WOMEN IN THE NOVELS OF SHOBHA DE AND SHASHI DESPANDE.-**Birendra Kumar Pandey** 83-85

Others

1. Unemployment problem among graduates -A study in the Dima Hasao district of Assam-**Ms.Tina Bardhan & Dr Mousumi Borah** 86-89
2. A Study of Impact of Modern Technologies on Society-**Dr. Mohan Lal 'Arya'** 90-93
3. DEPICTIONS OF CHILDHOOD AND INNOCENCE: A COMPARATIVE STUDY OF ROALD DHAL AND R.K NARAYAN-**Raghwendra Prasar** 93-94
4. A Study on : Environmental Impact Assessment (EIA)-**Nabamita Nath** 95-98
6. RELATIONSHIP BETWEEN FRUSTRATION TOLERENCE &MENTAL HEALTH OF SECOND ARY SCHOOLGOING ADOLESCENTS- **DR.Bimal Mandal** 99-101
7. Re-reading Disability: A Study of Ishan Mushahari's Bodo Short Story "Abari"-**Dr.Chandrima Sen** 101-103
8. MENTAL HEALTH DISORDER IN ADOLESCENTS-**Tuli Bhattacharya** 104-105
9. Learning as a Bystander: Case of *Lakshami* in Shyam Benegal's *Ankur*-'**Vaishali Yadav** 106-108

संपादकीय ....

भारत रत्न बाबा साहेब डॉक्टर अंबेडकर के दर्शन से दलित,पिछड़ा, गरीब सवर्ण और अल्पसंख्यक समाज बदल रहा है
" शिक्षित बनो, संगठित हो ,संघर्ष करो"

बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का उपर्युक्त अमर वाक्य पब्लिक डोमेन में ऊर्जा भर रहा है। गरीब से गरीब लोग अपने अपने बच्चों को शिक्षित करने में लगे हैं जो बहुत ही उत्साह वर्धक है।

आजादी के बाद सरकार ने लगभग प्रत्येक गांव में कक्षा एक से पांच तक प्राइमरी पाठशालाओं का निर्माण किया। कई गांवों के मध्य एक एक जूनियर हाईस्कूल खोले गए। बड़े बड़े कस्बों में राजकीय इण्टर कॉलेज खोले गए। इसके बाद बड़े बड़े शहरों में विश्व विद्यालय खोले गए। शिक्षा ने तेजी से गति पकड़ी और नौजवान पीढ़ी शिक्षित होने लगी।वे लोग बी.ए, एम. ए. करने के बाद छोटी बड़ी नौकरियां पाने लगे। लोगों की गरीबी दूर होने लगी।मुझे याद है मेरे सगे रिश्तेदार श्री आर डी सोनकर जो गांव सौह तहसील बिंदकी,जिला फतेहपुर उत्तर प्रदेश भारत के रहने वाले थे। नेहरू इण्टर कॉलेज बिंदकी से इंटर मीडिएट करने के बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद से दर्शनशास्त्र में एम ए किया। इसके बाद आई ए एस हो गए।जिला फतेहपुर के सभी वर्गों के नौजवानों ने श्री आर डी सोनकर का अनुसरण किया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद से पढ़ने के बाद आई ए एस , पी सी एस और एलाइड सेवाओं में चुने गए। श्री आर डी सोनकर एक पथ प्रदर्शक के रूप में ख्याति प्राप्त की।

उस समय स्कूल,कॉलेज और विश्वविद्यालय की फीस बहुत ही कम थी। गरीब से गरीब आदमी का बेटा और बेटी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता था। जब से प्राइवेटाइजेशन शिक्षा के क्षेत्र में हुआ,शिक्षा बहुत ही मंहगी हो गई।गरीब आदमी धीरे धीरे शिक्षा से वंचित होता जा रहा है। प्राइवेट स्कूलों का व्यावसायिककरण हो गया है। शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। जगह जगह पैसा कमाने के लिए प्राइवेट इंजीनियरिंग व मेडिकल कॉलेजों की भरमार हो गई है। जो बहुत अधिक धनाढ्य होगा वही डॉक्टर बनेगा। पी. एम. टी. टेस्ट के बाद जो डॉक्टर बनते थे उनमें दक्ष डॉक्टर समाज को मिलते थे। जो इंजीनियर सरकारी इंजीनियरिंग कॉलेजों से निकलते थे।वे सभी बहुत ही काबिल इंजीनियर होते थे।अब बी टेक,एमबीए करने के बाद नौजवान सड़कों पर बेरोजगार घूम रहे हैं।

एक उदाहरण देना चाहता हूं। एक एम बी ए ,एक स्टोर की दुकान में काम कर रहा था ।
वह घर घर जाकर स्टोर में बिकने वाली वस्तुओं का प्रचार कर रहा था।मैने जानने के लिए उससे पूछा, -
"आप कितना पढ़े हैं?"उसने कहा- " एमबीए " मैने कहा-
" आपको कोई अच्छी नौकरी नहीं मिली और आप इस काम के लिए प्रति माह कितना रुपया पाते हो?"
वह बोला- " केवल सात हजार"
मैने अफशोश जताते हुए कहा- " यह धनराशि बहुत ही कम है!"
उसने उत्तर दिया - " किसी तरह सरवाइव करना है।"
मुझे यह जानकर बहुत पीड़ा हुई। करोड़ों बेरोजगारों का यही बुरा हाल है।

रोटी रोटी के लिए
संघर्ष कर रहा है प्रत्येक आदमी
उच्च शिक्षित आदमी
फिर भी भूंखां सोता है

इस संबंध में मेरी एक कविता प्रस्तुत है।

वह रिक्शा चला रहा था
तेज बुखार से उसका बदन तप रहा था
वह शाम को अपने बच्चों को
रोटी खिलाना चाहता था
एक सेठ रिक्शा पर बैठा
उससे तेजी से रिक्शा चलाने को
कह रहा था
जर्जर शरीर रिक्शा न थाम सका
जमीन पर गिर पड़ा था
मरते मरते जय भारतi जय भारतii
का रहा था।

आपका ही ....
- रूप नारायण सोनकर

****

भारतीय समाज और इतिहास की वैचारिकी सत्ता: एक विश्लेषण

सूरज प्रकाश बडत्या
विजिटिंग एसोसिएट प्रोफेसर
टोक्यो युनिवर्सिटी ऑफ़ फोरेन स्टडीज टोक्यो, जापान

शोधालेख सार - इस शोधालेख में भारतीय समाज की जातिव्यवस्था का विश्लेषण किया गया है . इसके अंतर्गत हर समय बहुत सी सत्ताएं अपने वर्चस्व को बनाए हुए रहती हैं | प्रस्तुत शोधालेख उन्हीं सताओं का विश्लेषण करता है | जातिव्यवस्था का विश्लेषण करना है | वर्ग और वर्ण को भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में रखकर उनका मूल्यांकन करता है | इसी सन्दर्भ में डॉ आंबेडकर के विचारों को इस शोधालेख का आधार बनाता है |

बीज शब्द- भारतीय समाज, जाति व्यवस्था, सत्ता, आंबेडकर, इतिहास -दर्शन , वर्चस्ववादी सत्ता , वर्चस्वाद

किसी समाज-इतिहास एवं समय की वर्चस्ववादी सांस्थानिक शक्ति को सत्ता के रूप में प्रायः चिन्हित किया जा सकता है। बहुत से चिंतकों ने अपने-अपने ढंग से इसके बारे में विचार किया है। भारत में महात्मा बौद्ध से लेकर अंबेडकर तक और प्लेटो से लेकर कार्ल मार्क्स तक इसपर बहुत लिखा जा चुका है। मार्क्स ने समाज की ऐतिहासिक व्याख्या करते हुए उसे आदिम साम्यवादी युग, दास युग, सामंती युग, पूंजीवादी युग, समाजवादी युग एवं साम्यवादी युग के रूप में विभक्त करके विश्लेषण किया है। हालांकि यह एक प्रकार से समाज का **वर्गीय सत्तामूलक** विश्लेषण है। जिसे भारतीय समाज के संदर्भ में लागू नहीं किया जा सकता। उन्होंने बताया है कि मानव सभ्यता के शुरुआती चरण में समाज शोषणमुक्त, सामूहिक सत्तामूलक समाज था। जहां वर्ग नहीं बने थे, कोई भी सत्ता नहीं बनी थी। इसलिए उसे उन्होंने लोकतंत्रावादी सत्तामूलक समाज की संज्ञा कहा था। जैसे-जैसे समाज में वर्ग बने, तो श्रम करने वालों को दास बनाया गया और उन पर अधिकार रखने वाला दास मालिक बन गया। यह उच्चवर्गीय सत्ता की शुरुआत थी जिसे इतिहास में दास एवं दास मालिक के रूप में चिन्हित किया गया। इसी प्रकार खेतिहर समाज में किसान-सामंत एवं पूंजीवादी समाज में सर्वहारा और पूंजीपति के रूप में चिन्हित है। इस विश्लेषण से हम यह जान पाते हैं कि विश्व समाज में अभी तक समाज के नीति निर्धारक और नियामक उच्चवर्गीय लोग थे इसलिए उन्हीं की सत्ता कायम थी। सत्ता के सभी संस्थान शिक्षा, राजनीति, संस्कृति, अर्थतंत्रा, समाज की अधिकांश इकाइयां उच्चवर्गीय सत्ता से संचालित थी। मार्क्स ने इसे ही बदलकर मेहनत करने वालों की सत्ता कायम करने की बात की है। इसे राजसत्ता और लोकसत्ता का रूप भी कह सकते हैं। समाज में कोई भी सत्ता हो, वह अपनी वैचारिकी को तमाम शैक्षणिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक संस्थानों के माध्यम से समाज में परोसने का कार्य करती है। साहित्य, कला, संस्कृति, इतिहास, धर्म स्थापित सत्ता के मूल्यों का प्रचार-प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इसे हम भारत के संदर्भ में भी समझने का प्रयास कर सकते हैं। भारतीय समाज जातिवादी समाज है। भारत के इसी समाज को आधार बनाकर बाबा साहेब डा. अंबेडकर ने भारतीय समाज का विश्लेषण करते हुए बताया कि कैसे भारतीय समाज अपने विकास की प्रक्रिया में जातियों के आधार पर समाज का बंटवारा करता है और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तीन उच्च वर्ग (जातियां) मिलकर एक उच्च वर्गीय सत्तामूलक समाज की स्थापना करते हैं। इससे भारत का इतिहास, संस्कृति, साहित्य, राजनीति, अर्थव्यवस्था, सभी इससे प्रभावित होते हैं। इसे डॉ अंबेडकर ने ब्राह्मणवादी वैचारिक सत्ता के रूप में चिन्हित किया है। उनका मानना था कि भारत में इसी ब्राह्मणवादी वैचारिकी ने एक ऐसी संस्कृति का निर्माण किया जो आज रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन, तीज-त्यौहार, भाषा सभी के माध्यम से भारतीय समाज का विभेदमूलक स्वरुप दीखाई देता है।वैसा देखा जाए तो 'सत्ता' का सीधा सामान्य अर्थ है सामाजिक संगठन। इसके अंतर्गत प्राधिकारी शक्ति विरोधपूर्ण एवं समूहगत हितों में समन्वय के द्वारा मानवीय क्रियाकलापों को संचालित करने, समझाने-बुझाने या जोर-जबर्दस्ती से उन्हें एक ही वैचारिकी-नियमों के मातहत करने की कोशिश करती है। मनुष्य के शुरुआती चरण में कबिलाई समाज की सत्ता कायम थी। यह कबिलाई समाज की सत्ता एक ऐसा लोकतांत्रिक व्यवसाय था जिसमें सभी वयस्क सदस्य बैठकर विचार-विमर्श कर किसी नतीजे पर पहुंचने की कोशिश करते थे। लेकिन धीरे-धीरे मानव समाज के विकास के साथ यह लोकतांत्रिक पद्धति एकाधिकारी वर्चस्व के रूप में बदलकर एक दमनकारी संस्थान के रूप में विकसित हुई। मार्क्सवादी विश्लेषण पद्धति का मानना है कि उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के कारण सत्ता की प्रकृति में बदलाव आया। इससे कुछ लोग मालिक बन गए और अधिकांशत लोग गुलाम। अपने इसी मालिकाने वर्चस्व को बचाए और बनाए रखने के लिए 'स्वयंभू मालिकों' ने नयी सांस्थानिक सत्ताओं की नींव डाली। इनमें से धर्म का सांस्थानिक सत्ता है। धर्म की सत्ता के साथ कुछ मूल्य - पद्धतियों, संस्कृति, नैतिकता को भी सांस्थानिक रूप दिया गया। लेकिन इस मार्क्सवादी चिंतन प्रणाली को भारत के संदर्भ में पूरी तरह से लागू नहीं किया जा सकता। क्यूंकि यहाँ जाति आधारित विभेद उनके विश्लेषण का आधार नहीं बन पाता।

'सत्ता' का संबंध अंग्रेजी के 'पावर' से सीधे रूप में जुड़ा है, जिसे शक्ति के रूप में भी चिन्हित किया जाता है ।भारत के संदर्भ भारतीय इतिहास, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य, राजनीति, अर्थ सभी सामाजिक-राजनीतिक इकाइयां ब्राह्मणवादी वैचारिकी और मूल्यों से संचालित होती आ रही हैं। डॉ अंबेडकर का ऐसा मानना है।

'सत्ता' और 'संस्कृति' से हमारा आशय मूलतः इसी वर्चस्ववादी मूल्यपद्धति के विश्लेषण पर आधारित है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक अधिकांशत भारतीय सामाजिक, सांस्थानिक इकाइयों ने न केवल वैचारिक स्तर पर बल्कि व्यावहारिक रूप में भी अपनी गहरी पैठ जमाई हुई है। पूरी दुनिया के सामाजिक विकास के विभिन्न सोपानों का विश्लेषण मार्क्सवाद एवं अन्य चिंतकों ने किया है लेकिन भारत के संदर्भ में ज्योतिबा फुले और अंबेडकर ने भारतीय समाज की एकदम नई व्याख्या-विश्लेषण प्रस्तुत किया।

हालांकि देखा जाए तो प्रकारांतर से इन वर्चस्ववाली सत्ताओं को हाशिये पर रहे वर्ग-वर्ण समूहों से चुनौती मिलती रही है लेकिन अपने उच्चवर्गीय-उच्चवर्णीय संस्कारों और वैचारिकी के कारण समाजविज्ञानी और इतिहासकार प्रायः उन चुनौतियों और प्रतिरोधों को नजरअंदाज करता रहा है। आधुनिक काल में बहुत से समाज विश्लेषक एवं चिंतकों ने हाशिये पर रहे शूद्र- दलित की सांस्कृतिक विरासत, संस्कृति, चुनौतियों और उनके प्रतिरोध को सामने लाने की कोशिश की। उसी का परिणाम हुआ कि आज से लगभग सौ साल पहले स्वामी विवेकानंद को भी कहना पड़ा कि – 'आने वाला समय शूद्रों का होगा'। भारतीय समाज का अध्ययन करते हुए हमें अनेक सत्ताएं अपने सांस्थानिक रूप में दिखाई देती हैं। इन्हीं सत्ताओं का विश्लेषण हमारे इस 'लिखत' का आधार है। यूरोपीय चिंतक कार्ल

मार्क्स ने एक स्थान पर इतिहास का विश्लेषण करते हुए कहा था कि- 'अभी तक का आविर्भूत समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों और प्लेबियन, सामंती स्वतंत्रा मनुष्य और दास, पेट्रीशियन और प्लेबियन, सामंती प्रभु और भूदान, शिल्प-संघ का और मजदूर-कारीगर संक्षेप में उत्पीड़क और उत्पीड़ित बराबर एक-दूसरे का विरोध करते आए हैं। वे कभी छिपे, कभी प्रकट रूप से लगातार एक-दूसरे से लड़ते रहे हैं, जिस लड़ाई का अंत हर बार या तो पूरे समाज के क्रौंतिकारी पुनर्गठन में, या संघर्षरत वर्गों की बर्बादी में हुआ है।'[1]

यहाँ एक तथ्य साफ तौर पर उभर कर आता है कि समाज के विकास के पहले चरण से ही समाज में दो वर्ग विद्यमान रहे हैं। पहला वर्ग वह है जो सत्ता में था और उत्पादन के सभी साधनों पर उसका अधिकार रहा । दूसरा वर्ग वह है जो वंचित रहा। उत्पादन के साधनों के साथ इस वंचित तबके का संबंध बराबर बना रहा लेकिन वह मालिक नहीं दास था और भारत में शूद्र-अछूत। यह शूद्र-अछूत सृजनकर्ता तो था लेकिन भोक्ता नहीं था, वह समाज और सभ्यता के विकास का नियामक था लेकिन खुद समाज और सभ्यता के विकास से बाहर था। यह दुःखद किन्तु आश्चर्यजनक है कि इतिहास और समाज की गति का नियामक स्वयं गति से बाहर था । भारत में उत्पादन के साधनों पर काबिज वर्चस्वशाली वर्ग था लेकिन वह वर्ण-जाति के रूप में ब्राह्मण और क्षत्रिय शब्दावली से चिन्हित है तो दूसरी तरफ वंचित वर्ग शूद्र-अछूत पद के रूप में। मार्क्स ने कहा था 'वर्ग का विभाजन श्रम के विभाजन से जुड़ा है।' लेकिन इस समझ से असहमति व्यक्त रखते हुए भारत के प्रमुख समाजशास्त्री डा. अंबेडकर ने कहा कि- 'जाति-व्यवस्था श्रम का नहीं बल्कि श्रमिकों का विभाजन है।'2 यह एकदम नए और भिन्न रूप में भारत के समाज और इतिहास का विश्लेषण है । भारत के संदर्भ में एक अन्य विशिष्ट बात यह भी है कि उपर्युक्त तीनों वर्चस्वशाली सत्ताओं की अलग-अलग सत्ता होते हुए भी ये तीनों सत्ताएं एक-दूसरे से जुड़ी हैं। । लेकिन सवाल यहां पर यह है कि हजारों साल से सामाजिक फासीवाद का दंश झेलती दलित जातियों के उत्पीड़न को क्या केवल आर्थिक विश्लेषण से समझा जा सकता है ? जैसा कि मार्क्सवाद समझाता है | भारत के संदर्भ में यह भी गौरतलब होगा कि 'जाति' को 'अधिरचनागत' विश्लेषण के आधार पर नहीं समझा जा सकता है इस पर सोचा जाना चाहिए।

इतिहास की सत्ता: एक विश्लेषण:-

प्रसिद्ध इतिहासकार ई.एच. कार का एक उद्धरण हैं- 'इतिहास के अध्ययन का अर्थ है उसके कारणों का अध्ययन ।'[3] ई.एच. कार यहां 'कारण' को इतिहास के अध्ययन की एक प्रमुख कसौटी मानते हैं। क्योंकि बिना कारण के दुनिया में कोई भी परिघटना घटित नहीं होती । किसी परिघटना के अंजाम तक जाने में कोई एक कारण नहीं बल्कि कई सारे 'कारणों' की शृंखलाएं होती हैं । अक्सर इतिहासकार अपनी वैचारिकी और अंतःजगत के संस्कारों और मूल्यों से प्रेरित होकर एक ही कारण को किसी परिघटना के लिए निर्णायक एवं नियामक मानकर अन्य 'कारणों' की अनदेखी करता है । भारत के संदर्भ में लिखे गए राजा-रजवाड़ों के गौरवगान और तथाकथित सवर्ण जातियों के अलौकिक तथा चमत्कारी क्रिया-कलापों को ही इतिहास के रूप में दर्ज कर दिया गया । यही इतिहास की तथाकथित सवर्ण (ब्राह्मणवादी) सत्ता का इतिहास विमर्श था जिसने इतिहास में मौजूद बहुत से कारकों को इतिहास से बेदखल कर दिया | इतिहास से बेदखल होने का अर्थ किसी समुदाय-विशेष, वर्ग-विशेष या समाज-विशेष का इतिहासविहीन होना या इतिहासशून्य होना नहीं बल्कि इस समाज के इतिहास में हाशिये पर किया गया मानना चाहिए । इतिहास में 'हाशिये' पर होने का सवाल ही 'इतिहास के पुनरुत्पादन' के सवाल के साथ बहुत ही गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। इतिहास का यह 'पुनरुत्पादन' इतिहास-विश्लेषण और समाज को समझने की खिड़कियों को हमारे सामने खोलता है। अभी तक के इतिहास में जो 'कर्ता ' था वह अब समाज और इतिहास में 'भोक्ता' बनना चाहता है। इसे हम 'हाशिये' और 'केंद्र' के उदाहरण से भी समझ सकते हैं। परिस्थितियों के घात-संघात इतिहास के पहिये को जब घुमाते हैं तो इतिहास में 'हाशिये' पर रहा वर्ग 'केंद्र' में आने को व्याकुल हो उठता है और इतिहास की यही व्याकुलता इतिहास-विश्लेषण के सहारे इतिहास का पुनरुत्पादन करती है। इतिहास में बेज़ुबां रही यह व्याकुलता अपनी संस्कृति व परंपरा के सार्थक योगदानों का भी निर्धारण करती है । जैसा कि ई.एच. कार का कथन है कि ''अतीत का कोई भी सार्थक अध्ययन निश्चित रूप से भविष्य की अंतर्दृष्टि द्वारा प्रेरित और आलोकित होगा।''[4]

इतिहास में हाशिये पर रही यह बेज़ुबां व्याकुल अस्मिताऐ (शूद्र -अछूत) अपने भविष्य के निर्धारण के लिए इतिहास के गर्भ में जाकर अपने इतिहास, संस्कृति व परंपरा का निर्धारण करने की कोशिश कर रही है। और यह निर्धारण पुराने इतिहास के सत्ता विमर्श के विचलन का संकेत है और नए इतिहास के सत्ता स्थापन के प्रारंभ का प्रस्थानबिन्दु । इतिहास में तथ्यों की एक महती भूमिका होती है किन्तु यह इतिहासकारों के संस्कार, विचार व दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि वह किन ऐतिहासिक तथ्यों को अपनाता है और किन्हें छोड़ता है? कौन से तथ्य उनके लिए 'विशेष तथ्य' और 'सामान्य तथ्य' का दर्जा पाते हैं। इसलिए तथ्यों का चुनाव और विश्लेषण आज कहीं गहरे में अर्थ संदर्भों की वृहत्तर व्याख्या की ओर संकेत करते हैं। ई.एच. कार कहते हैं कि 'इसीलिए तथ्य के चुनाव की प्रक्रिया की जांच होनी चाहिए ।'5 ऐतिहासिक तथ्यों के चुनाव की यह प्रक्रिया इतिहास के संस्कार, जीवनानुभव, वैचारिकी, अभिरुचि और विवेक से संबद्ध है। कार्ल मार्क्स ने इसे 'क्लास कैरेक्टर' के रूप में चिन्हित किया था और भारत के संदर्भ में डा. भीमराव अंबेडकर ने इसे 'कास्ट कैरेक्टर' के रूप में रेखांकित किया है । इतिहास के तथ्यों के चयन में जुड़ी यही प्रक्रिया इतिहास निर्माण के साथ-साथ दर्शन, साहित्य, सैद्धांतिकी, राजनीति और संस्कृति की सत्तामूलक अवधारणा को सामने रखती है।

दलित का ऐतिहासिक रूप और आर्य-ब्राह्मण संबंध:-

दलित का शब्दगत अर्थ है जिसका समाज में विभिन्न रूपों में दलन हुआ हो अर्थात यह सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से एक ऐसा 'पद' है जो भारतीय समाज की वर्णश्रेष्ठत्व की परिधि में निचले स्थान पर मान लिया गया। दलित भारतीय समाज में एक ऐसा समुदाय है जो ऋग्वेद के पुरुषसूक्त से ही हेय, नीच और ब्रह्मा के पांव से उत्पन्न माना गया। जन्म के आधार पर ही इस समुदाय को अछूत नहीं माना गया बल्कि इनके शोषण को दार्शनिक-पौराणिक और धार्मिक आधार प्रदान किया गया। 'दलित' शब्द आज भारतीय समाज में किसी सामान्य अर्थ को ध्वनित नहीं करता बल्कि यह समुदाय विशेष, जाति विशेष या वर्ग विशेष के रूप में चिन्हित कराता है। दलित शब्द की गहरी जांच-पड़ताल करने के लिए हमें सर्वप्रथम भारतीय समाज का गहन अध्ययन करना होगा। जाति का प्रस्थान बिंदु क्या है उसे समझना होगा । भारतीय समाज में चार प्रकार के वर्गों (वर्णों) के स्तरीकरण स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं । चार प्रकार के स्तरीकरण का कोई ठोस वस्तुगत आधार नहीं है बल्कि यह सीधे 'मालिक' और 'गुलाम ' की संबंध शृंखला को बनाए रखने का परिचायक है । हालांकि पूरी दुनिया में 'मालिक' और 'गुलाम' की इस संबंध-शृंखला को देखा जा सकता है। लेकिन भारत में यह संबंध-शृंखला श्रम करने वाली जमात को धर्म और पुराण के सहारे अछूत बनाए जाने के रूप में दिखाई देती है। यहां मालिक और गुलाम की यह संबंध-शृंखला ब्राह्मण-क्षत्रिय (मालिक) और शूद्र (-अतिशूद्र) (दलित) पदों से चिन्हित की गई है। इस रूप में भारतीय समाज की यह स्तरीकृत संबंध-शृंखला दुनिया के सामाजिक वर्ग-विभाजन से एकदम नए रूप में दिखाई देती है।

भारतीय समाज चार वर्णों पर टिका है। समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तो महत्वपूर्ण श्रेणियां मानी गईं लेकिन शूद्र का ऊपर की तीनों जातियों ने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और शारीरिक रूप से न केवल शोषण किया बल्कि इनकी आने वाली पीढ़ियों तक को इतिहास और समाज से बेदखल कर दिया। अछूत समुदाय तो इस वर्गीकरण में शामिल ही नहीं था | भारतीय सामाजिक जाति-व्यवस्था पर विचार करते हुए प्रमुख समाजविज्ञानी डा. भीमराव अंबेडकर का कहना है कि 'हिन्दू सोसायटी उस बहुमंजिली मीनार की तरह है जिसमें प्रवेश करने के लिए न कोई सीढ़ी है न दरवाजा। जो जिस मंजिल में पैदा हो जाता है उसे उसी मंजिल में मरना होता है।'[6] भारतीय समाज का इससे कठोर लेकिन वास्तविक विश्लेषण शायद ही किसी विद्वान ने किया हो। इस आधार पर भारतीय समाज को गतिहीन और बंद समाज के रूप में रेखांकित करना अनुचित नहीं होगा।

डॉ भीमराव अंबेडकर ऐसे समाजविज्ञानी हैं जिन्होंने इस जातिवादी समाज के मूल मर्म को समझा, इसे पहचाना और इसका विश्लेषण किया। हालांकि इनकी चिंतन प्रणाली और विश्लेषण क्षमता को स्वीकार करते हुए भी अधिकांश समाजविज्ञानी और इतिहासकारों ने इनके मतों को स्वीकारने में आनाकानी की। इसका कारण उनका सवर्ण समुदाय से होना भर है होना है| हिन्दू समाज में शूद्र शब्द की वास्तविकता और शूद्र समुदाय की सामाजिक हैसियत का विश्लेषण करते हुए डा. अंबेडकर कहते हैं कि-

'मेरी व्याख्या यह है कि भारतीय आर्य समुदाय के शूद्रों को कालांतर में ब्राह्मणवादी व्यवस्थाओं की कठोरताओं ने इतना हेय बना डाला कि समाज में उनका स्थान वास्तव में निम्नतर हो गया। इसके दो परिणाम हुए। एक परिणति यह हुई कि शूद्र शब्द के गुणार्थ ही बदल गए। एक वर्ग विशेष के रूप में शूद्र शब्द के मूल अर्थ में परिवर्तन हो गया और यह निम्न जातियों का सामान्य नाम बनकर रह गया जिसकी कोई सभ्यता नहीं, संस्कृति नहीं, कोई मान-सम्मान और हैसियत नहीं। दूसरा परिणाम यह हुआ कि शूद्र की परिधि बढ़ जाने से विधि-विधानों का दायरा भी बढ़ गया। यही कारण है कि आज के तथाकथित शूद्र इस व्यवस्था के शिकार हो गए, यद्यपि वे शूद्र शब्द की परिभाषा में नहीं आते। कुछ भी हो वास्तविकता यह है कि जो विधि-विधान मूल अपराधियों के लिए बने थे उन्हें बेकसूर लोगों पर ही थोप दिया गया। यदि ¯हद विधिवेत्ताओं को पर्याप्त ऐतिहासिक ज्ञान होता तो वे मूल शूद्र शब्द को समझते जो आज के शूद्रों से नितांत भिन्न है...। यह तथ्य बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि विधि संग्रह की वही कठोरता आधुनिक शूद्रों के प्रति बरती जाती है जो कभी मूल शूद्रों के साथ बरती जाती थी।''[7]डा. अंबेडकर के विश्लेषण से यह महत्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने उपस्थित होता है कि आज का आधुनिक दलित अर्थात प्राचीन शूद्र -अछूत वास्तविक अर्थों में वह नहीं था जिसके लिए यह शूद्र शब्द प्रचलित किया गया। इस विश्लेषण से यह जिज्ञासा भी प्रबल होती है कि ऐतिहासिक रूप से वह समुदाय कौन सा था जिसके लिए कठोर विधि-विधान बनाए गए? दूसरा प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि वे कौन से कारण थे कि शूद्र पद उस समुदाय से अलग होकर एक अन्य अर्थ में दूसरे समुदायों के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा? इस संदर्भ में हम डा. अंबेडकर के विश्लेषण को ही पुनः सामने रखकर इसे समझने की कोशिश करेंगे। उनका मत है कि-

1. शूद्र आर्यों के सूर्यवंशी समुदाय में से ही थे।
2. एक समय था जब आर्य समुदाय ने केवल तीन वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही मान्यता दी।
3. शूद्रों का अलग से कोई वर्ण नहीं था, वे भारतीय आर्य समुदाय के क्षत्रिय वर्ग से आते थे।
4. शूद्र राजाओं और ब्राह्मणों के बीच अनवरत संघर्ष होते रहते थे और ब्राह्मणों को शूद्रों के हाथों अनेक कष्ट और अपमान सहने पड़े।
5. शूद्रों द्वारा किए गए उत्पीड़न और पीड़ाओं से त्रास्त होकर ब्राह्मणों ने शूद्रों का उपनयन संस्कार संपन्न करना बंद कर दिया।[6]. उपनयन संस्कार से वंचित होने पर शूद्र जो क्षत्रिय थे, उनका सामाजिक ह्रास हो गया। उनका दर्जा वैश्यों के नीचे हो गया और वे चैथे वर्ण में गिने गए।''[8]डा.अंबेडकर का मत हमारे सामने नए तथ्यों और नई व्याख्या को प्रस्तुत करता है। उपर्युक्त मत शूद्र शब्द के उद्भव और विकास की गहराई से जांच-पड़ताल का मार्ग प्रशस्त करता है। उपर्युक्त विश्लेषण पर गौर करें तो यह साफतौर पर दिखाई देगा कि 'आर्य' और 'ब्राह्मण' एक ही समुदाय से प्रतीत नहीं होते हैं। हालांकि यह चैंकाने वाला तथ्य है कि शूद्र भी आर्यों के ही सूर्यवंशी समुदाय के थे। इस पर हमें गहराई से सोचना चाहिए कि कालांतर में ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने अपने को आर्यों का वंशज बताकर शूद्र समुदाय को अनार्य घोषित किया। अगर इससे आगे बढ़ें तो यह तथ्य भी निकलकर सामने आएगा कि शूद्रों के आक्रमण से डरकर, अपमान सहते हुए और उनसे त्रास्त होकर उन्होंने शूद्रों का उपनयन संस्कार संपन्न करना बंद कर दिया। इस संबंध में मुद्राराक्षस महोदय का कथन देखना समीचीन होगा। वे कहते हैं कि- 'डा. अंबेडकर भारत के बुद्धिजीवियों में ब्राह्मण तंत्र के सबसे सशक्त विरोधी थे। उन्होंने भारत की प्राचीन संस्कृति को लेकर जो कुछ कहा उसको परवर्ती ब्राह्मण चिंतकों ने बहुत उद्धृत किया है। उन ब्राह्मण विचारकों ने अंबेडकर की इस अवधारणा पर बहुत संतोष जाहिर किया कि भारतीय अतीत में शूद्र कोई नहीं था, सभी आर्य थे। इसी एक सच की पड़ताल भारतीय इतिहासकारों ने कभी नहीं की।''[9]

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है जिसकी ओर पहले डॉ अंबेडकर ने संकेत किया और फिर मुद्राराक्षस भी इस ओर इशारा करते हैं कि आर्य और ब्राह्मण एक नहीं हैं बल्कि दोनों ही अलग-अलग समुदाय और जातियां हैं। दोनों में ही परस्पर युद्ध होता था। ब्राह्मणों के लिए आर्य कभी भी न तो सम्माननीय रहा और न ही उल्लेखनीय। इसलिए इस पर गौर करें कि किसी भी ब्राह्मण ग्रंथ, पौराणिक पुस्तक में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को आर्य के रूप में चिन्हित नहीं किया गया। उनके साथ तो हमेशा द्वेष भाव रखने या फिर उन्हें खदेड़ने के रूप में आर्य पद आया है। अगर वेद आर्यों ने लिखे थे तो वेदों में आर्यों की प्रशंसा नहीं है जिसकी ओर मुद्राराक्षस भी इशारा करते हैं। वे कहते हैं कि ''इस गुत्थी को सुलझाने के लिए हम कुछ दूसरे ग्रंथों के साक्ष्य लेना चाहेंगे। पतंजलि ने अनिरवसित शूद्रों का जिक्र किया है। ये उनके अनुसार वे लोग थे जो आर्य इलाके के भीतर रहते थे। ब्राह्मण समाज के लिए यह असुविधाजनक और अधार्मिक स्थिति थी। पतंजलि के अनुसार, आर्य बस्तियों में चांडाल आदि जातियां बाकायदा घर बनाकर रहती थीं। यह स्थिति वैदिक ब्राह्मण प्रभुत्व वाले इलाकों में संभव नहीं थी।'[10]आर्य शब्द का सीधा संबंध हिन्दू मनीषी अपने साथ जोड़कर देखते हैं। वे तो लगातार यह गर्व के साथ दोहराते हैं कि 'संपूर्ण विश्व को आर्य बनाओ।'[11] लेकिन अगर पौराणिक ग्रंथों और वेदों को एक बार उलट लिया जाए तो ये आर्य हैं ही नहीं प्रतीत होते। ब्राह्मणों और अन्य तथाकथित उच्चवर्णीय समुदाय ने अपने को आर्यों का वंशज किस आधार पर कहना शुरू किया होगा उसका विश्लेषण होना चाहिए। इसमें गौरतलब यह भी है कि भारतीय समाजविज्ञानी और इतिहासकारों की नजरों से इतना बड़ा तथ्य कैसे ओझल हुआ यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। मुद्राराक्षस ने अपनी पुस्तक में ऐसे बहुत से महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया है जिनका जिक्र किए बिना आगे बढ़ना मुश्किल है। वे बताते हैं कि-

'यहां आर्य जाति के बारे में विचार करते हुए हम वेदों के पाठ पर नजर डालना चाहेंगे। ऋग्वेद में (6-33-3) एक मंत्र आया है 'त्वं तान् इंद्र उभयां अमित्रांदासा बृत्राणि आर्या च शूर। वधी वन रस सुधितेभिः अत्कैः आ पुत्सु दर्षि नृणां नृतम्।' अर्थात इंद्र, तुम उन दोनों अमित्रों और दासों, वृत्रों, आर्यों और दस्युओं को कुल्हाड़ी से जंगलों की तरह

काट डालो जिन्हें काटने-मारने का अनुरोध इंद्र से किया जा रहा है, उनमें आर्य भी हैं। आर्यों को भी मार डालने का आह्वान है। ध्यान रहे, बुरे आर्य के लिए वैदिक साहित्य में शब्द मौजूद है। यहां बुरे या खराब आर्य को नहीं, आर्यों को ही काट डालने की बात है। इसी प्रकार ऋग्वेद के श्लोक की तरह अथर्ववेद का भी एक मंत्र है जो अपने मत के समर्थन में हम रखना चाहेंगे-

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजानु मां कृणुः।
प्रियं सर्वस्य पश्चातु उत् शूद्रे उत आएं। 19-62-1

यानी हमें देवताओं में प्रिय बनाओ, सबका प्रिय बनाओ यहां तक कि शूद्रों और आर्यों का भी प्रिय बनाओ।''[12]यह बहुत ही विचित्र है लेकिन वास्तविकता है कि जिस प्रकार ब्राह्मण-वैदिक ग्रंथों में स्पष्ट रूप से दासों को, अमित्रों को और आर्यों को भी मारने की बात की जा रही है ऐसे में ब्राह्मण और आर्य एक कैसे हो सकते हैं? एक होना तो बहुत दूर की बात है वे तो मित्र भी नहीं थे बल्कि उनके बीच शत्रुओं जैसी स्थिति थी। अथर्ववेद के उपर्युक्त श्लोक में भी स्पष्ट रूप से आया है कि हमें आर्यों और शूद्रों के बीच भी प्रिय बनाओ। यदि ब्राह्मण और आर्य एक ही पदश्रेणी हैं तो आर्यों का उल्लेख शूद्र के समतुल्य क्यों किया जा रहा है। इस अर्थ में डॉ अंबेडकर का विश्लेषण महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने ब्राह्मण और आर्यों को एक-दूसरे से विलग कर समझने की कोशिश की है। इसके साथ ही एक अन्य तथ्य भी गौरतलब है कि बौद्ध साहित्य में आर्य शब्द का उल्लेख बहुत ही सम्माननीय अर्थ में आया है। वहां 'आर्य मार्ग', 'आर्य निकाय' आदि आते हैं। जो शब्द ब्राह्मण ग्रंथों में अपमानजनक और शत्रुतापूर्ण तरीके से आया हो और बौद्ध साहित्य में सम्माननीय रूप में तो उसके संदर्भ में इस अंतर को समझना होगा। प्रायः भारतीय इतिहासकार वेद लिखने वाले ब्राह्मणों को और आर्यों को एक ही संस्कृति का मानते रहे हैं। बौद्ध साहित्य की ओर उनका ध्यान क्यों नहीं गया? बौद्ध साहित्य में चिंतन की तर्कपूर्ण राह को आर्य मार्ग के रूप में उल्लेख करते हैं। एक तथ्य और भी है जो प्रायः बौद्ध साहित्य में दिखाई देता है। वहां पर एक शब्द आया है 'पृथग्जन', पृथग्जन का सामान्य अर्थ है साधारण कामगार, शिल्पी या वह कुलीन जो अभिजन नहीं है। यहां अनार्य शब्द को लेकर एक भ्रम की स्थिति बन सकती है। यदि शूद्र आर्यों की ही एक जाति से संबंधित थे तो फिर अनार्य कौन थे जिसका उल्लेख भी वैदिक ग्रंथों और पुराणों में धड़ल्ले से हुआ है। पृथग्जन या अनार्य उसे कहा जाता था जो प्रायः अपने में ही केंद्रित था या मोहमाया के बंधन में फंसा रहता था। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि बौद्ध धर्म की शाखा हीनयान में ही आर्य मार्ग की भी प्रतिष्ठा हुई होगी, ऐसा प्रतीत होता है। इस आर्य और अनार्य के अंतर को अधिक स्पष्ट करने के लिए हमें फिर से मुद्राराक्षस के मत का उल्लेख करना पड़ेगा ''बुद्ध वचनों में बौद्ध साहित्य के पृथग्जन का जिक्र बार-बार आया है। इसका अर्थ बौद्ध विद्वानों ने जो किया है वह ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार पृथग्जन का अर्थ होता है अनार्य या अनाड़ी। भाषा के इतिहासकारों का ध्यान इस ओर जाना चाहिए कि अनाड़ी शब्द क्या है? वास्तव में वह अनार्य, आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार बाहर से आई आर्य जाति का विरोधी अनार्य नहीं। अनार्य उसी समाज का अंग है जिसका आर्य अंग है और दोनों में जातीय विरोध नहीं है। आर्य परिष्कृत, कुलीन लोग थे और अनार्य उन्हीं के साथ रहने वाले अपेक्षाकृत अपरिष्कृत और अनाड़ी। इसी अनाड़ी को संस्कृत भाषा में अनार्य कह लिया गया है।''[13]डा. अंबेडकर के इस मत को अधिकांश भारतीय इतिहासकारों ने सिरे से खारिज करने की कोशिश की है। प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रमुख ज्ञाता हैं रामशरण शर्मा। इन्होंने अपनी पुस्तक 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास' में डा. अंबेडकर के मतों का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि-

''शूद्रों के बारे में एकमात्र प्रबंध रचना (1946) सुविख्यात भारतीय राजनीतिज्ञ अंबेडकर की है। यह शूद्रों के उद्भव तक ही सीमित है। लेखक ने पूरी सामग्री अनुवादों से जुटाई है और उससे भी बुरी बात यह है कि उनके लेखन से यह आभास मिलता है कि उन्होंने शूद्रों को उच्चवंश का सिद्ध करने का दृढ़ संकल्प लेकर अपनी यह पुस्तक लिखी है। यह उस मनोवृत्ति का परिचायक है, जो हाल में नीची जाति के पढ़े-लिखे लोगों में उत्पन्न हुई है। 'शांतिपर्व' के मात्रा एक स्थल पर शूद्र पैजवन द्वारा किए गए यज्ञ की चर्चा को शूद्रों को मूलतया क्षत्रिय होने का पर्याप्त प्रमाण मान लिया गया है।''[14]डा. रामशरण शर्मा प्राचीन भारतीय इतिहास के एक आधिकारिक ज्ञाता माने जाते हैं। संभवतः डॉ अंबेडकर शूद्रों की जिस प्राचीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति की ओर इशारा करना चाहते हैं रामशरण शर्मा उसे नहीं पकड़ पाते। डा. रामशरण शर्मा शूद्रों को आर्यों के ही एक समुदाय से संबंधित होने वाले तर्क को सिरे से खारिज करते हैं। वे डा. अंबेडकर पर आरोप लगाते हैं कि इन्होंने सारी सामग्री अनूदित पुस्तकों से ग्रहण की और निष्कर्ष निकाल लिया। लेकिन क्या हम डा. शर्मा से यह पूछ सकते हैं कि उन्होंने तो प्राचीन भारतीय समाज पर उपलब्ध मौलिक सामग्री का ही अध्ययन किया होगा फिर वे अपने इस निष्कर्ष पर कैसे पहुंच गए कि 'शूद्र' और आर्य का कोई संबंध नहीं था। मुद्राराक्षस द्वारा संस्कृत के मौलिक ग्रंथों और वेदों के द्वारा जुटाई गई सामग्री की तरफ क्या डा. शर्मा का ध्यान नहीं गया? उन्होंने भी संभवतः ऋग्वेद और अथर्ववेद की मूल पांडुलिपियों का अध्ययन किया होगा। फिर कैसे उनसे इतने महत्वपूर्ण तथ्य छूट गए? इसीलिए ई.एच. कार का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण जान पड़ता है कि 'तथ्यों के चुनाव की प्रक्रिया की जांच होनी चाहिए।' आगे चलकर डा. रामशरण शर्मा कहते हैं कि-

''यह जोर देकर कहा गया है कि ब्राह्मणों के साथ दीर्घकाल तक संघर्ष करते रहने के फलस्वरूप क्षत्रियों को शूद्र की स्थिति में पहुंचा दिया गया और ब्राह्मणों ने अपने शत्रु शूद्रों को अंततः उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) के अधिकार से वंचित कर दिया। महाभारत के 'शांतिपर्व' में वर्णित एकमात्र अनुश्रुति के आधार पर कि पैजवन शूद्र राजा था, यह दावा किया जाता है कि शूद्र आरंभ में क्षत्रिय थे। इस तरह की धारणा का कोई तथ्यगत आधार नहीं है।''15

डा. अंबेडकर के उपर्युक्त विश्लेषण और रामशरण शर्मा के मत दोनों में अंतर मूलतः वैचारिकी की भिन्नता के कारण आया दिखता है। हालांकि डा. अंबेडकर जिस मत को सामने रखते हैं उस मत को उदाहरणों के माध्यम से मुद्राराक्षस और अधिक पुष्ट और ठोस आकार देते हैं। चूंकि डा. अंबेडकर की यह विश्लेषण पद्धति कोरे तर्कों की हवाई उड़ान नहीं भरती और न ही कुछ नया कहने-करने की हठधर्मिता करती है बल्कि यह भारतीय इतिहास के मान्य आधार ग्रंथ पुराण, वेद, धार्मिक ग्रन्थ , ब्राह्मण साहित्य, बौद्ध साहित्य और विदेशी चिंतकों के आधार पर अपना विश्लेषण सामने रखती है। इस अर्थ में ऐसा लगता है कि शूद्र भी आर्य समुदाय की किसी अन्य शाखा से सम्बन्धित रहे हों जिसकी प्राचीन भारतीय समाज में अपनी सत्ता और वर्चस्व रहा हो। जिस पुरुष सूक्त में वर्णव्यवस्था का वर्णन करते हुए शूद्र को ब्रह्मा के पांव से पैदा हुआ बताया है वह तीखी ब्राह्मण प्रतिक्रिया रही हो। चूंकि ब्राह्मण समुदाय और आर्य समुदाय के झगड़े तो ब्राह्मण ग्रंथों के आधार पर सामने आ रहे हैं। यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों के परस्पर संघर्ष को हम महाभारत और रामायण में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। भाषा के आधार पर भी भाषाविदों ने ऋग्वेद के पुरुष सूक्त पर प्रक्षेपित होने का अर्थात बाद में जोड़े जाने का आरोप तो लगाया ही है। डा. रामशरण शर्मा का मत कि प्रारंभ में 'शूद्र' एक जनजाति ही रही होगी जो उत्तरार्द्ध में मवेशियों के कारण पैदा हुए विवाद और भूमि हथियाने की लड़ाई के कारण, श्रमिक

वर्ग में बदल गई। मवेशियों और भूमि पर कार्य हेतु श्रमिक दास की आवश्यकता थी और हारे हुए समुदाय की स्त्री तथा पुरुषों को कार्य हेतु रख लिया गया। वे ही अंततः शूद्र कहलाए। डा. रामशरण शर्मा की चूंकि 'वर्ग' की मार्क्सवादी समझ है इसीलिए 'वर्ण' को समझने के लिए उनके पास वैसी सामाजिक तर्क प्रणाली नहीं है जो डा. अंबेडकर के पास मौजूद थी। अगर रामशरण शर्मा के मत को मान भी लें कि वह आर्थिक कारण ही रहे होंगे जब शूद्र शब्द श्रमिक समुदाय के लिए प्रयुक्त होने लगा होगा, तो क्या डा. शर्मा बता सकते हैं कि अस्पृश्य की, समाज से बाहर रहने वाली सामाजिक स्थिति कैसी हो गई? वह अंत्यज, चांडाल, अछूत जैसी श्रेणी में कैसे पहुंचा दिया गया? हालांकि मार्क्सवादी इतिहासकारों का यह प्रमुख तर्क है कि आर्थिक श्रेणी ही सामाजिक श्रेणी (पद, वर्ग या समुदाय) को प्रभावित करती है। लेकिन आज के आधुनिक समाज की स्थिति में सामाजिक हैसियत (वर्ण श्रेष्ठता) ही आर्थिक आयामों, आधारों और कार्य-कारण संबंधों को प्रभावित करती हुई दिखाई देती है। इसीलिए केवल आर्थिक विश्लेषण और 'वर्गवादी ' समझ के आधार पर यूरोपीय समाज-इतिहास का अध्ययन और विश्लेषण तो किया जा सकता है लेकिन भारतीय प्राचीन-आधुनिक समाज और इतिहास के अध्ययन-विश्लेषण के लिए भारत की वर्णव्यवस्था को समझना होगा।

'शूद्र' शब्द और अर्थ के संदर्भ में प्राचीन मनीषियों से लेकर आधुनिक इतिहासकारों और चिंतकों की कुछेक व्याख्याएं एवं विश्लेषण हम पहले ही देख चुके हैं। कुछ और यहां प्रस्तुत हैं। 'शूद्र' शब्द के व्युत्पत्यर्थ निकालने के जो प्रयास हुए हैं उनमें सर्वप्रथम वेदांत सूत्र के बादरायण में एक व्याख्या मिलती है। इसमें शूद्र शब्द को दो हिस्सों में बांटा गया है 'शुक' (शोक) और 'द्र' जो 'दुर' धातु से बना है और जिसका उद्देश्य-अर्थ है दौड़ना। इसकी टीका करते हुए शंकर ने इस बात की तीन वैकल्पिक व्याख्याएं की हैं कि जनश्रुति में शूद्र क्यों कहलाया -

'वह शोक के अंदर छोड़ गया', 'वह शोक-निमग्न हो गया'1 (शुचम् अभिदुद्राव)2, उस पर शोक दौड़ आया',-3 उस पर संताप छा गया'। शंकर का निष्कर्ष है कि शूद्र शब्द के विभिन्न अंगों की व्याख्या करने पर ही उसे समझा जा सकता है अन्यथा नहीं। 'शूद्र' शब्द की उपर्युक्त व्याख्या के संबंध में इतिहासकार रामशरण शर्मा कहते हैं कि ''बादरायण द्वारा शूद्र शब्द की व्युत्पत्ति और शंकर द्वारा उसकी व्याख्या दोनों ही वस्तुतः असंतोषजनक हैं। कहा जाता है कि शंकर ने जिस जनश्रुति का उल्लेख किया, वह अथर्ववेद में वर्णित उत्तर-पश्चिम भारत के निवासी महावृषों पर राज्य करता था। यह अनिश्चित है कि वह शूद्र वर्ण का था। वह या तो शूद्र जनजाति का था या उत्तर-पश्चिम की किसी जाति का था, जिसे ब्राह्मण लेखकों ने शूद्र के रूप में चित्रित किया है।''[16]

रामशरण शर्मा अपने लेखन में बादरायण और शंकर दोनों से ही अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। असहमति व्यक्त करना कोई अनुचित बात नहीं है लेकिन दिक्कत यह है कि वे 'शूद्र वर्ण' और 'शूद्र जनजाति' को किस कसौटी के आधार पर अलगाते हैं यह समझ नहीं आता। वे अपनी हठधर्मिता और पूर्वानुमान के आधार पर 'शूद्र' को एक जनजाति मनवाने पर तुले हैं। 'शूद्र' शब्द के व्युत्पत्ति संबंधी अर्थ का उल्लेख पुराणों में भी मिलता है। इसमें शूद्र 'शुच' धातु से संबद्ध जान पड़ता है जिसका अर्थ है संतप्त होना। इसका अर्थ हुआ 'जो खिन्न हुए और भागे, वे शारीरिक श्रम करने के अभ्यस्त थे, तथा दीन-हीन थे उन्हें शूद्र बना दिया। इसके अतिरिक्त 'शूद्र' शब्द की व्याख्या का प्रयास बौद्धों द्वारा भी किया गया। बौद्ध मत के अनुसार जिन व्यक्तियों का आचरण आतंकपूर्ण और हीन कोटि का हो वे सुध (संस्कृत शूद्र) माने जाने लगे। इस तरह मध्यकाल के बौद्ध शब्दकोश में 'शूद्र' शब्द क्षुद्र का पर्याय बन गया। रामशरण शर्मा उपर्युक्त व्याख्या का विश्लेषण करते हुए कहते हैं ''दोनों ही व्युत्पत्तियां भाषा विज्ञान की दृष्टि से असंतोषजनक हैं, किन्तु फिर भी महत्वपूर्ण हैं। ब्राह्मणों द्वारा प्रस्तुत व्युत्पत्ति में शूद्रों की दयनीय अवस्था का चित्रण किया गया है | बौद्ध व्युत्पत्ति में समाज में उनकी हीनता और न्यूनता का परिचय मिलता है। इन व्युत्पत्तियों से केवल इतना पता चलता है कि भाषा और व्युत्पत्ति संबंधी व्याख्याएं भी सामाजिक स्थितियों से प्रभावित होती हैं।''[17]

भारतीय इतिहासकारों चिंतकों से लेकर विदेशी इतिहासकारों-चिन्तकों तक ने अपने अध्ययन और विश्लेषण के लिए इन्हीं पौराणिक-धार्मिक साहित्य को ही आधार सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया। इसी के कारण इनके निष्कर्ष भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाए। लेकिन जब बौद्ध चिन्तक या समाजशास्त्री , फुले-आंबेडकर भारतीय समाज का विश्लेषण करते हैं तो उन्हीं अध्ययन सामग्री से नए तरह के तथ्य और विश्लेषण हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं .

इस शोध आलेख के माध्यम से हमने प्राचीन भारतीय समाज में कैसे और किन-किन सत्ताओं की मौजूदगी थी उसे देखने की कोशिश की है. उन सताओं की प्रकृति और इतिहास के तथ्यों के चयन उनके विश्लेषण में उस नजरिये का भी मूल्यांकन किया है जो एक विशेष दृष्टिकोण से परिचालित रहा है .

****

संदर्भ

1. कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र; कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स, परिकल्पना प्रकाशन , प्रथम संस्करण पृ. 24.
2. जाति का जहर, संपादन-राजकिशोर , लेख डा. भीमराव अंबेडकर, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली , संस्करण -2011, पृ. 14.
3. इतिहास क्या है?, ई.एच. कार, , मैकमिलन प्रकाशन संस्करण -2020, नई दिल्ली, पृ. 74.
4. वही.
5. वही, पृ. 6.
6. बाबा साहेब डा. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड16 , डा. अंबेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली संस्करण 2001 पृष्ठ , पृ. 7.
8. वही. पृ. 9
9. धर्मग्रंथों का पुनर्पाठ, लेखक मुद्राराक्षस, गौतम बुक सेंटर . नयी दिल्ली ,प्रथम संस्करण 2015 , पृ. 14-15.
10. वही, पृ. 29
11. वही, पृ. 29 .
12. वही. पृ. 27.
13. वही, पृ. 32-33.
14. शूद्रों का प्राचीन इतिहास, लेखक: रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन , भूमिका, संस्करण- 2000 पृ. 12.
15. वही, पृ. 34.
16. वही, पृ. 37.
17. वही, पृ. 37.

हिन्दी गीत और ग़ज़ल का प्रतिबिंबात्मक वैशिष्ट्य

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1468

डॉ. शिव शरण कौशिक
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर) राजस्थान

कविता जीवन का अन्तर्दर्शन और उसकी रागात्मक अभिव्यक्ति है। हिन्दी काव्य में प्रारम्भ से ही अनेक काव्य - विधाएँ प्रचलित रही हैं, लेकिन आधुनिक काल में प्रबन्ध-काव्य एवं मुक्तक काव्य की विधाएँ उत्तरोत्तर गौण तथा अलोकप्रिय होती गईं और गीतिकाव्य के विविध रूपों जैसे - गीत, प्रगीत, ग़ज़ल, चतुर्दशपदी, मुक्त छन्द की दीर्घ कविता तथा छन्द मुक्त निबन्ध कविता आदि का प्रचलन विशेष रूप से हुआ। वस्तुत: गीत और ग़ज़ल को दो विपरीत ध्रुवों के रूप में मानना या स्थापित करना तर्कसंगत नहीं होगा, क्योंकि दोनों ही काव्य रूप मानवीय संवेद्य की अभिव्यक्ति के दो वृत्त हैं। जहाँ गीत आदिम संगीत - काल से ही मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है वहीं ग़ज़ल भी आदिम संवाद - काल से ही जीवानुभवों तथा विचार-बोध का प्रकटीकरण करती रही है।

काव्य मानव-जीवन के स्पन्दन से अनुप्राणित होने के कारण विभिन्न भाव - सरणियों का संवाहक है। यही भाव सरणियाँ कवि की अनुभूति की उत्तेजना में निहित रहती हैं, जिनमें ऐन्द्रिय, मानसिक तथा बौद्धिक तत्त्वों का सम्मिश्रण रहता है और यदि यही भाव सरणियाँ संगीत तत्त्व तथा अर्थ तत्त्व का अवलम्ब पाकर अभिव्यक्त होने लगें तो काव्य का जो रूप प्रकट होगा वह है - गीत - काव्य.हिन्दी गीत तथा ग़ज़ल दोनों ही गीत-काव्य की दो विधाएँ हैं। आज जीवन की व्यस्तताओं के कारण पाठक के मन में सुदीर्घ- प्रबन्धात्मक कविता के प्रति रुचि उत्पन्न नहीं होती बल्कि वह जीवन की किसी एक घटना, एक परिस्थिति तथा एक अनुभूत को चुनिन्दा शब्दों के संक्षिप्ताकारी गेय छन्दों में पढ़कर आनन्द लेना अधिक पसन्द करता है, जो साथ - साथ उसकी निजानुभूति में भी उद्रेक उत्पन्न करता चले। इस उद्देश्य में गीत और ग़ज़ल सर्वथा उपर्युक्त व प्रेषणीय सिद्ध हुए हैं।

आज के गीत और ग़ज़ल दोनों ही आत्माभिव्यक्ति, हृदय की रागात्मकता तथा आत्मा की मुक्तावस्था जैसी पुरातन अर्थ सीमाओं को तोड़कर लोक - मानस के धरातल पर जीवन की ही तरह व्यापकता तथा विविधता वाले हो गए हैं। मानव के अमूर्त रूपाकारों, विचारों, अनुभूतियों तथा संवेदनों की अभिव्यक्ति की इन दोनों ही विधाओं को किसी एक निश्चित सीमा में बाँधना दुस्साध्य है।

गेयता व लयबद्धता के कारण संगीत के अंक में बँधा हुआ कथ्य श्रोता को गुनगुनाहट के साथ एक समय तक आबद्ध किए रहता है और यदि संगीत के बाह्य रूप का निर्वाह न भी हो तो आन्तरिक संगीत व लयबद्धता के कारण गीत व ग़ज़ल दोनों ही छन्द सदैव संवेदनीय बने रहे हैं। हाँ समय और परिवेश के प्रभाव से उसमें परिवर्तन आना स्वाभाविक था। इसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप आधुनिक हिन्दी कविता कभी पारम्परिक गीत, कभी छायावादी, कभी प्रगतिवादी, कभी प्रयोगवादी, कभी नई कविता, कभी विचार कविता और कभी नवगीत के रूप **में** दृष्टिगोचर होती है। गीति-काव्य का ही दूसरा काव्य रूप ग़ज़ल है जो नपे -तुले शब्दों में हृदय की तीव्रानुभूतियों को पाठकों तथा श्रोताओं तक सम्प्रेषित करने में सहायक होता है। कुछ काव्यकारों ने इसे गीतिका अथवा अनुगीत की संज्ञा प्रदान की है। ग़ज़ल में कम शब्दों में बहुत कुछ कहे जाने की क्षमता विद्यमान होने, संक्षिप्तता तथा अनुभूति की तीव्रता के कारण रचनाकारों ने अपने पूर्ववर्ती द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता व छायावादी वायवीयता की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवादी व परवर्ती काव्य में ग़ज़ल को उपयोगी विधा के रूप में स्वीकार किया। यहाँ यह कह देना भी प्रासंगिक होगा कि हिन्दी ग़ज़ल ने कवि व समाज के अन्तस् के भावों को जन मानस तक पहुँचाने में अपना प्रभावकारी महत्त्व प्रतिपादित किया। हिन्दी में गीत-काव्य का इतिहास गौरवशाली है। **हिन्दी** में गीत का प्रादुर्भाव महान् गीतकार विद्यापति से माना जाता है जो कि संस्कृत के 'गीत गोविन्द' से प्रभावित हैं। मध्यकाल के कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि के शास्त्रीय रागों **में** निबद्ध अनेक पद विश्व - विश्रुत हैं।रीतिकालीन गीतात्मक शुष्कता को कवियों ने छायावाद में आकर सरस बनाया। मैथिलीशरण गुप्त से प्रारम्भ हुई उन्नत गीत परम्परा को प्रसाद, निराला, महादेवी तथा पन्त आदि ने वैयक्तिक सुख - दुखानुभूति तथा भारतीय संस्कृति के प्रांजल रूप की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के रूप में स्थापित किया। अन्ततः इन्हीं छायावादी गीतकारों में से पन्त, निराला आदि ने निजी वायवीयता से बन्धनमुक्त होकर प्रगतिवाद के रूप में नवीन भाव-बोध, भाषा-बोध तथा शिल्प - बोध की आधारशिला रखी। आज यही परम्परा नवगीत लेखन के रूप में सम-सामयिक युग चेतना को नवीन रूपाकारों के माध्यम से अतियथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करते हुए बुद्धिवाद के सहारे प्रयोगधर्मी भाव-भूमियों को रेखांकित करती है। दूसरी ओर ग़ज़ल उर्दू कविता का सर्वश्रेष्ठ, अनूठा व सशक्त काव्य-रूप हैं इसका प्रादुर्भाव फ़ारसी भाषा में हुआ तथा उर्दू के माध्यम से हिन्दी में प्रवेश पाकर अपने रचनात्मक स्वरूप के शिखर बिन्दुओं का स्पर्श किया। यद्यपि अमीर खुसरो के बाद व्यापक स्तर पर हिन्दी ग़ज़ल का विकास सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और दुष्यन्त कुमार के समय से ही हुआ, किन्तु स्फुट रूप में ग़ज़ल के तत्त्व भारतेन्दु काल में भी मिलते रहे हैं। महात्मा कबीर ने भी आम आदमी की बोलचाल की भाषा में कतिपय ग़ज़लें लिखी हैं। लेकिन इस विधा को साहित्य में प्रमुख स्थान दुष्यन्त कुमार ने दिलाया। छायावादोत्तर काल **में** हिन्दी ग़ज़ल लेखन में अनेक रचनाकारों ने काव्य तथा शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचनाधर्मिता का निर्वाह किया।

अत्याधुनिक युग की ग़ज़लों को साठोत्तरी अथवा आज की समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की संज्ञा देना उचित ही है। विगत कुछ दशकों में हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा का चहुँमुखी विकास हुआ है। आज का ग़ज़लकार सर्वहारा वर्ग द्वारा भोगे जा रहे यथार्थ, थोथी व्यवस्था के प्रति विद्रोह तथा ह्रासोन्मुख सामाजिक व नैतिक मूल्यों की नींव पर हिन्दी ग़ज़ल की सुदृढ़ भित्ति का निर्माण करता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मानवीय कोमल भावों को संक्षिप्तता व गहराई से अभिव्यक्ति प्रदान करने में कुछ विधाएँ अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई हैं जिनमें गीत तथा ग़ज़ल प्रमुख हैं। गीत और ग़ज़ल दोनों ही काव्य की स्वतन्त्र विधाएँ हैं तथा दोनों के ही संवेदनों ने जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया है। मानव जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू, घटना तथा विचार का सुगठित चित्र प्रस्तुत करने के कारण ही आधुनिक युग में यह गेय विधाएँ अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं। अपने विशिष्ट शिल्प-विधान के कारण भी गीत और ग़ज़ल ने हिन्दी काव्य में अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाई है। यहाँ हम गीत और ग़ज़ल **में** परस्पर तथा समकालीन कविता के साथ संवेदना एवं शिल्पगत प्रतिबिम्बता, वैशिष्ट्य तथा दिशा पर प्रकाश डालेंगे तथा देखेंगे कि गीत और ग़ज़ल एक ही दिशा की विधाएँ होते हुए भी किस प्रकार से अपनी अलग पहचान रखती हैं तथा कैसे वे एक-दूसरे में संक्रमित करती हैं।

(1) **संवेदनात्मक प्रतिबिम्बता** -कैाव्य प्रवृत्तियाँ विविधात्मक होती हैं, किन्तु सभी प्रवृत्तियों के केन्द्र में कोई मूल संवेदना अवश्य रहती है। यही मूल चेतना काव्य का प्रतिपाद्य कहलाती है। गीत में मूलतः कवि

की रागात्मक अन्तर्दृष्टि, उसके निजानुभव तथा मानवीय संवेदनों का ही चित्रांकन होता है। एक ओर जहाँ गीत कवि तथा मनुष्य की आन्तरिक वेदना, आत्म तुष्टि, दर्शन तथा अध्यात्म जैसे अन्तर्मुखी पक्ष को उजागर करता है, तो वहीं दूसरी ओर हिन्दी ग़ज़ल दिनोंदिन बढ़ती बौद्धिक प्रवंचनाओं, छल-छद्म, गिरते सामाजिक मूल्यों, विषमताओं तथा विद्रूपताओं जैसे बहिर्मुखी पक्ष का परदाफ़ाश करती है। प्रारम्भिक काल से आधुनिक काल तक हिन्दी गीत में अनेक भाव - धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। किन्तु इन सभी पड़ावों को पार कर आज हिन्दी गीत और ग़ज़ल संवेदना की दृष्टि से एक-दूसरे से बहुधा साम्य रखते हुए प्रतिबिम्बित करते हैं। क्योंकि गीत-प्रगीत के परम्परागत गुण - आत्मानुभूति की तीव्रता,मार्मिकता,कल्पनाशीलता, प्रभविष्णुता, चित्रोत्पादकता, संगीतात्मकता तथा भाषा की सुकुमारता आदि आज की गीत - सृष्टि से देखते हुए अपर्याप्त सी लगने लगीं तथा बदले हुए परिवेश तथा नवीन युग-बोध को भाव तथा कलापक्ष की दृष्टि से गीत और ग़ज़ल परस्पर दोनों बौद्धिक चिन्तन, वैचारिक, विशिष्टता, युग परिवेश का यथार्थ, प्रतीकात्मकता, जैसे गुणों के साथ स्पन्दित करने लगे। आज हिन्दी गीत और ग़ज़ल आम आदमी, समाज, राष्ट्र राजनीति, विज्ञान, संस्कृति, अन्तर्राष्ट्रीयता तथा विश्व-बोध पर समान रूप से अपनी काव्य-दृष्टि डालते हुए मानवीय संवेदनाओं तथा आम आदमी की व्यक्तिगत समस्याओं से जूझते हुए सन्तोष का अवकाश खोजते प्रतीत होते हैं। ऐसे में बिखराव से अलग हटकर कवि को जहाँ राहत की साँस मिल सकती थी। वह गीत व ग़ज़ल का ही क्षेत्र है। नवगीत लेखन में जहाँ गीत सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव - बोधों को काव्य **में** पुष्पित- पल्लवित कर रहा है। साथ ही वह व्यक्ति की ऊहात्मक तथा द्वन्द्वात्मक मनोदशा, सामाजिक विसंगतियों, राजनीतिक विद्रूपताओं, सांस्कृतिक अवमूल्यन, वैज्ञानिक आविष्कारों के गम्भीरतम परिणामों आदि का कँटीला ताज लेकर काव्यकार की पीड़ा का आगाज करता दिखाई देता है।

" जलती हुई मशालों में भी धुआँ बहुत है,
आग नहीं है कोई भी बेदाग नहीं हैं।

वहीं आज की हिन्दी ग़ज़ल की अतियथार्थवादी प्रकृति को भ्रष्ट व्यवस्था, भ्रष्ट राजनीति, भ्रष्ट धर्मनीति, कालाबाजारी, बेरोजगारी, महँगाई, आम आदमी की कुंठा, पीड़ा, त्रासदी तथा निराशा आदि शब्द - रेखाओं के रूप में देखा जा सकता है।

"कुछ नई पगडंडियों पर इस तरह भटका,
हो गया परदेस जितना दूर मेरा गाँव। "

हिन्दी गीत और ग़ज़ल में संवेदनात्मक प्रतिबिम्बता का एक और विशिष्ट पहलू यह है कि आधुनिकता - बोध की अभिव्यक्ति का माध्यम हिन्दी गीत भारतीयता की चेतना के साथ भारतीय ज़मीन के प्रति गहरे लगाव को भी अभिव्यक्त करता है तो समरूप में हिन्दी ग़ज़ल भी हिन्दी का मुहावरा पाकर भारतीय सांस्कृतिक भाव-बोध के स्वर मुखरित कर हिन्दी - मन- भावन के भारतीय जनमानस को प्रतिबद्धता के साथ रूपायित करती है। राहिताश्व अस्थाना की परिभाषानुभा हिन्दी ग़ज़ल का शेर देखिए :-

दर्द का इतिहास है हिन्दी ग़ज़ल
एक शाश्वत प्यास है हिन्दी ग़ज़ल .
आदमी के साथ नंगे पाँव ही ढो रही संत्रास है हिन्दी ग़ज़ल.

साथ ही आज के गीत और ग़ज़ल कवि के मर्म को ही नहीं छूते बल्कि विचार को भी छूते हैं। इन दोनों ही गीति-विधाओं ने पाठक या श्रोता को न केवल भावोद्रेक ही प्रदान किया है, बल्कि सोचने को भी विवश किया है। इसके साथ ही गीत और ग़ज़ल में कुछ सूक्ष्म संवेदनागत वैशिष्ट्य भी पाए जाते हैं।

(2) संवेदनात्मक वैशिष्ट्य:-हिन्दी गीत और ग़ज़ल का आदिकाल से छायावाद तक परिशीलन करने पर यह बात साफ तौर पर सामने आती है कि गीत और ग़ज़ल की संवेदना के बीच कुछ विभेदक रेखाएँ भी स्पष्ट दिखाई देती हैं जो दोनों ही विधाओं की भिन्न-भिन्न विशिष्टता की द्योतक हैं। अपनी परम्परा में गीत ने एक तरफ व्यक्तिगत रागानुभवों से सम्पृक्त शृंगार गीतों की सृष्टि की तो दूसरी तरफ प्रकृति के रहस्यों से प्रभावित होकर उसे भक्ति, दर्शन तथा अध्यात्म का अलौकिक आधार प्रदान किया। लोक भाषा के गीतों में प्रयुक्त **होने** से मैथिल कोकिल विद्यापति ने कृष्ण-भक्ति का आधार लेकर अनेक ऐसे मधुर गीतों की सर्जना की जो हिन्दी साहित्य में गीति - परम्परा की अमूल्य निधि हैं। विद्यापति के गीतों की व्याख्या करते हुए डॉ. आशा किशोर ने लिखा है- "इनकी रचनाओं में सजीव मूर्ति-विधान की अपूर्व क्षमता है। इन्होंने लोक भाषा में राधा को प्रतिष्ठित किया है। हिन्दी कवियों के बीच इनके गीतों में वैष्णव भक्ति का पहली बार स्पष्ट स्वर सुनाई देता है। "[3] भक्तिकाल **में** कबीर की लोक-धर्मी गीति - परम्परा ने ऐसा अनूठा ताना-बाना बुना है कि भारतीय लोक-मानस में भक्त हृदय की दीनता, भावप्रवणता, समर्पण तथा तादात्म्यानुभव का प्रत्यक्षीकरण ही उपस्थित होता है। इन्हीं के समकालीन सूर, मीरा तथा तुलसी ने भी सगुण भक्ति के माध्यम से अपने आराध्य के प्रति पूर्ण तदाकार होकर तन्मयता के साथ पद-गीतों का भाव व शिल्प की दृष्टि से परिष्कार किया।

रीतिकाल में रसखान, घनाननद, बोधा, आलम जैसे गीत - कवियों ने प्रेम के प्रांजल रूप के लौकिक तथा अलौकिक दोनों पक्षों को उजागर किया, लेकिन फिर भी स्थूल - शृंगारिकता के चलते भक्तिकालीन मीरा की मार्मिक भावुकता रीतिकाल तक आते लुप्त सी हो गई। डॉ. रामकुमार वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि " जिस प्रकार दीपक की उज्ज्वल शिखा से काजल निकलता है, उसी प्रकार सूर, मीरा के उज्ज्वल और तेजोमय पवित्र शृंगार से अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी का कलुषित शृंगार प्रादुर्भूत हुआ।" [4]यदि हिन्दी ग़ज़ल के प्रतिपाद्य का आदिकाल से आधुनिक काल के प्रारम्भ तक अनुशीलन करें तो यह स्पष्ट ही है कि फ़ारसी से उर्दू तथा पुनः हिन्दी **में** आया यह छन्द अपने पारम्परिक परिधान को कैसे उतार सकता था। उर्दू ग़ज़ल की संक्षिप्तता तथा अनुभूति की तीव्रता का हिन्दी के कवियों पर प्रभाव पड़ा और उन्होंने ग़ज़ल को हिन्दी में अपनाया। अमीर खुसरो हिन्दी के प्रथम ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने ग़ज़ल के शाब्दिक अर्थ 'प्रेमी से वार्तालाप' को आधार मानकर ही रोमानी तथा प्रेमानुभूति विषयक ग़ज़लें लिखीं। भक्तिकाल में कबीर, मीरा ने भी कतिपय रचनाएँ लिखी हैं, लेकिन उनके द्वारा रचित भक्ति के पद गतों की अपार राशि की तुलना में ये 'ग़ज़लनुमा ' रचनाएँ मात्रा में न्यून ही हैं। डॉ. रोहिताश अस्थाना लिखते हैं "कबीर की अमीर खुसरो से ली हुई यह परम्परा हिन्दी में चलती रही, किन्तु कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सम्मुख नहीं आई। " अतः स्पष्ट है ईश्वर भक्ति तथा अध्यात्म-दर्शन की अभिव्यक्ति में गीत हिन्दी ग़ज़ल की तुलना **में** अतुलनीय रूप से समृद्ध है तथा अपनी विशिष्ट पहचान के लिए विश्व विश्रुत है।

इधर हिन्दी गीत में छायावाद गीत - काव्य के स्वर्णयुग के रूप **में** स्थापित हुआ। भाव और शिल्प की दृष्टि से छायावाद एक नवीन धरातल लेकर प्रकट हुआ। यद्यपि छायावादी गीतों में राष्ट्रीय संवेदन के अनेक गीतों की रचना हुई, लेकिन मूलतः इन कवियों की अन्तर्दृष्टि व्यक्तिवादी, रोमानी तथा प्रकृति प्रेरित ही कही जाएगी। लेकिन यह कह देना छायावादी गीतों को कमतर आकना नहीं है, बल्कि इसे कलात्मक गरिमा, सौष्ठव, सौन्दर्य, मृदुता तथा ऋजुता भी प्रदान की। प्रसाद, निराला, महादेवी, पन्त आदि ने गीतों में तीव्रानुभूति, भावों की एकतानता, मानवीय दृष्टिकोण की व्यापकता तथा नारी के प्रति उदार तथा नवीन दृष्टिकोण के साथ नवीन मान्यताएँ स्थापित कीं। यह उद्धरण देखिए-

'जल्द - जल्द पैर बढ़ाओ आओ-आओ
आज अमीरों की हवेली होगी
किसानों की पाठशाला ।"

दूसरी ओर यदि हिन्दी ग़ज़ल की छायावादी संवेदनागत स्थिति पर विचार करें तो पाएँगे कि प्रसाद, निराला आदि ने कतिपय ग़ज़लों में प्रेम विषयक, राष्ट्रीयता तथा व्यंग्य प्रधान ग़ज़लें लिखी हैं, लेकिन छायावादी गीत राशि की तुलना में ये ग़ज़लें शतांश ही मानी जाएँगी। ग़ज़ल शेरों की माला होती है और भाव - संवेदन या कथ्य की दृष्टि से ग़ज़ल का प्रत्येक शेर एक स्वतन्त्र इकाई होता है, अतः जहाँ तक गीत में एक साथ एक ही संवेदन को अभिव्यक्ति प्रदान की जा सकती है वहीं ग़ज़ल का प्रत्येक शेर मानव जीवन की अलग-अलग कथा कहता चलता है। यही कारण है कि प्रगतिवाद व प्रयोगवाद में यद्यपि हिन्दी गीत टूटती हुई मान्यताओं, सतही भावुकता, सीमित अभिव्यक्ति तथा पिछड़ेपन व बुद्धिहीनता आदि के आरोपों से आक्षेपित रहा लेकिन इस काल की हिन्दी ग़ज़ल का एक-एक शेर एक विचार है तथा समाज की सच्ची तस्वीर है । निराला की ग़ज़ल का यह शेर देखिए-

" ज़माने की रफ्तार से कैसा तूफ़ाँ,
मरे जा रहे हैं, जिये जा रहे हैं । " [7]

वर्तमान की अत्याधुनिक जीवन-शैली तथा वैश्वीकरण के कारण परिवारों के विघटन तथा सामाजिक परिवर्तन की एक सच्ची तस्वीर गोपाल गर्ग ने अपनी इस ग़ज़ल में बेहद सार्थकता के साथ प्रस्तुत की है -

रह नहीं पाता तुम्हारा एक-सा दिनमान चिड़िया
इन दिनों की धूप का इतना बुरा न मान चिड़िया
मिल तो जाता है घरों में एक मुट्ठी बाजरा
पर तुम्हारी भूख पर जाता नहीं है ध्यान चिड़िया
उड़ गये जो पंख मिलते ही घरौंदा छोड़कर
एक दिन होगा उन्हें भी इस व्यथा का भान चिड़िया ।

यह सच है कि नवगीत ने पुन: हिन्दी गीति-काव्य को उच्च भाव-भूमि पर ला खड़ा किया है, लेकिन यह तो सिद्ध है ही कि जहाँ हिन्दी गीत की संवेदना की दृष्टि से आदिकाल से छायावाद तक विविध प्रवृत्यात्मक काव्य - राशि की अत्यन्त समृद्ध परम्परा मिलती है वहीं **हिन्दी** ग़ज़ल तो प्रारम्भिक काल से भारतेन्दु युग तक अपने अस्तित्व के लिए ही जद्दोजहद करती - सी प्रतीत होती है, लेकिन आज की समकालीन हिन्दी ग़ज़ल गीत की तुलना **में** अधिक तीक्ष्ण होकर आम आदमी के अधिक करीब आई है और इसकी आधारशिला रखने का श्रेय निःसन्देह दुष्यन्त कुमार को ही जाता है। उनका यह शेर देखिए-

(3) शिल्पगत प्रतिबिम्बता:-

"यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा ।'

साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना स्वतन्त्र शिल्प-विधान होता है और यही शिल्प - विधान उन्हें एक-दसरी विधा से अलगाकर स्थापित करता है। हिन्दी गीतिकाव्य की दोनों विधाओं - गीत और ग़ज़ल का भी अपना अलग-अलग शिल्प विधान है, किन्तु फिर भी उनमें शैल्पिक दृष्टि से अनेक साम्य तथा प्रतिबिम्बताएँ स्पष्ट दृष्टिगत होती हैं। बल्कि ग़ज़ल और गीत दोनों ही गीतकाव्य की शैलियाँ ही हैं, जिनमें गीत काव्य के शैल्पिक तत्त्व समान रूप से मिलते हैं।

आज हिन्दी गीत और ग़ज़ल दोनों में ही प्रतीकात्मकता, ध्वन्यात्मकता तथा विषयानुरूप शब्द, भाषा, लय, संगीत तथा छन्द के अभिनव प्रयोग दिखाई देते हैं । गीतों के लोकगीत तथा कला गीत दोनों ही रूपों तथा हिन्दी ग़ज़ल में समान रूप से संगीत तत्त्व की अनिवार्यता काव्य के आविर्भाव के साथ ही असन्दिग्ध है। सुधांशु उपाध्याय के गीत की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

'भूखे हैं, **नंगे** हैं लोग भले **चंगे** हैं। [9]

गीत और ग़ज़ल दोनों ही गेय विधाएँ हैं, इसलिए इनमें अनुभूति की तीव्रता के कारण कवि गाने के लिए सहसा प्रेरित होता है, परन्तु इनकी संगीतात्मकता स्वर-ताल आदि के बाह्य संगीत की अनिवार्यता से आबद्ध नहीं है बल्कि ये भाव के आन्तरिक संगीत तथा भाषा के शब्द -संगीत से ही जुड़ी रहती है । शब्द-संगीत से आशय स्वर, व्यंजन, पद आदि के भावानुकूल तथा ध्वन्यात्मक संगीत उत्पन्न करने से है । गेय कविता संसार की समस्त भाषाओं में आदि से वर्तमान तक सृजित होती रही है । हिन्दी गीत और ग़ज़ल के शिल्प विधान में लयात्मकता की दृष्टि से जो विशिष्टता नज़र आती है उसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक कारण स्पष्ट दिखाई देता है कि भारतीय संस्कृति में यहाँ के लोग जीवन की विषम परिस्थितियों में भी जीवन की लयात्मकता से विलग नहीं हो पाते । स्वाभाविक है जीवन की विषमता को गीत और ग़ज़ल में व्यक्त करने का उपक्रम छन्दोबद्ध और लयात्मक कविता के माध्यम से लोक मानस को तुष्टि प्रदान करने **में** ही सिद्ध हुआ है ।

संगीत का आवश्यक तत्त्व है - आकार की लघुता तथा संक्षिप्तता । और यह तत्त्व गीत और ग़ज़ल दोनों विधाओं में समान रूप से पाया जाता है। दोनों ही विधाएँ विभिन्न छन्दों में संगीत शास्त्रीय राग-रागनियों के आधार पर गेय हैं । यहाँ तक कि कुछ हिन्दी गीत तो ग़ज़ल के शिल्प पर ही लिखे गए हैं। ग़ज़ल में लिखा बलवीर सिंह 'रंग' का यह गीत देखिए-

"वर्तमान से मुझे शिकायत भारी है
कह सकता कुछ नहीं बड़ी लाचारी है
घेर लिया हैं मुझको दोनों ओर से
आगे सेवक हैं पीछे अधिकारी है। [10]

इनमें यह अन्तर कर पाना कठिन होता है कि यह गीत है या ग़ज़ल । केवल काफ़िया तथा रदीफ़ का निर्वाह ही यहाँ इनके बीच विभेदक का कार्य करता है। शोधार्थी के विचार में गीत और संगीत **में** चोली-दामन का साथ है जो न कभी टूटा है और न टूटने की सम्भावना है । बदले परिवेश में नवगीत में भी भले ही बाह्य शास्त्रीय संगीत तथा परम्परागत छन्द प्रयोग की रूढ़ियाँ टूट गई हों लेकिन आन्तरिक संगीत, लय तथा छन्द-संगीत का निर्वाह सफलतापूर्वक किया जा रहा है। हिन्दी गीत और ग़ज़ल **में** भारतीय काव्य शास्त्र के दोहा, मन्दाक्रान्ता, हरिगीतिका सवैया जैसे छन्दों का भी समान रूप से प्रयोग हुआ है। एक और साम्य गीत और ग़ज़ल में दिखाई देता है और वह है दोनों का ही मात्रिक छन्दों में लिखा जाना । महादेवी का "बीन भी मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ' 11 23 मात्राओं **में** लिखा गया छन्द है । हिन्दी गीत की तो मूल प्रकृति ही वर्ण-वृत्त - प्रधान है। वहीं हिन्दी ग़ज़ल भी फ़ारसी अरूज (गण शास्त्र) की दरूहता के कारण छन्द (बहर) की दृष्टि से मात्रिक ही है । 19 मात्राओं के छन्द **में** लिखी ग़ज़ल का यह मिसरा देखिए-

" आदमीयत खो चुका है आदमी
अब तो केवल यंत्र - सा है आदमी
सभ्यता विकसित हुई कुछ इस तरह
भीड़ में गुम हो गया है आदमी । ' [12]

आधुनिक युग में गीत और ग़ज़ल रचना के कवियों में संगीत, अलंकार आदि के प्रति विशेष आग्रह दिखाई नहीं देता, बल्कि आज के नवगीत तथा आज की हिन्दी ग़ज़ल में नई कविता के समानान्तर नवीन प्रतीक, उपमान, बिम्ब तथा छन्द आदि सभी की प्रयुक्ति से काव्य- जगत **में** अपना स्थान सुनिश्चित करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, किन्तु दोनों में शैल्पिक वैशिष्ट्य तथा वैषम्य भी स्पष्ट दिखाई देता है।

(4) शिल्पगत वैशिष्ट्य:-हिन्दी गीत और ग़ज़ल दोनों का ही छन्द विधान अलग-अलग है, बल्कि गीत ने प्रारम्भ के पदों से लेकर आज

के नवगीत तक कई छान्दसिक स्वरूपों को ग्रहण किया है, जबकि ग़ज़ल के छन्द में प्रादुर्भाव से लेकर आज तक कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं देता।

गीत के छन्द - विधान में चाहे भक्तिकालीन - छायावादी पद हों या आज का नवगीत - सभी में कमोबेश स्थायी (टेक) से गीत का आरम्भ होता है, तदुपरान्त अन्तरे के रूप में कुछ चरण आते हैं, जिनकी संख्या दो से अधिक होती है। ये चरण स्थायी के मात्रिक वजन में भी हो सकते हैं तथा अलग वज़न में भी। पुनः स्थायी की सम मात्रिक पंक्ति तथा स्थायी (टेक) का आवर्त्तन गीत के पहले अन्तरे को पूर्ण करता है। यह गीत देखिए- स्थायी अन्तरा

पागल मन मत मनुहार करो।
भ्रम हो सकता वरदान नहीं
सच होते स्वप्न - विधान कहीं
मेरे मन जलमाया से हट
अपने पर तो अधिकार करो
स्थायी पागल मन मत मनुहार करो। [13]

दूसरी ओर ग़ज़ल में दो-दो पंक्तियों के शेर होते हैं। शेर की हर पंक्ति मिसरा कहलाती है। ग़ज़ल का प्रथम शेर मतला कहलाता है जिसकी दोनों पंक्तियों (मिसरों) में काफ़िया व रदीफ़ का निर्वाह होता है। अन्तिम शेर को मक़्ता कहते हैं, जिसमें कवि का उपनाम होता है। ग़ज़ल में कम-से-कम 5 शेर होते हैं। ग़ज़ल की खास बात यह है कि उसका प्रत्येक शेर अपने आप में एक सम्पूर्ण कविता होता है। विषय-वस्तु की दृष्टि **से** एक शेर का दूसरे शेर से पूर्वापर सम्बन्ध हो यह आवश्यक नहीं होता। इसका आशय यह हुआ कि यदि किसी ग़ज़ल में 12 शेर हैं तो यह कहना गलत न होगा कि उसमें 12 स्वतन्त्र कविताएँ हैं। ग़ज़ल का प्रत्येक शेर एक-एक भाव, एक-एक विचार तथा एक-एक अनुभव है। 'रदीफ़', 'ग़ज़ल' के मतले की दोनों पंक्तियों के अन्त **में** तथा बाद वाले प्रत्येक शेर की दूसरी पंक्ति के अन्त में आने वाला समान्त शब्द-समूह है। रदीफ़ से पहले आने वाला 'तुकान्त' शब्द 'काफ़िया' कहलाता है। यह ग़ज़ल देखिए-

" भूख जैसे सवाल **मत पूछो**
मतला देश का हालचाल **मत** पूछो
इस प्रजातन्त्र की व्यवस्था **में**
'तन्त्र' की ढील - ढाल **मत** पूछो।" [14]

इसमें 'मत पूछो 'रदीफ़' है तथा 'सवाल', 'हालचाल', 'ढीलढाल' आदि 'काफ़िया' हैं। भाषा की दृष्टि से हिन्दी गीत व ग़ज़ल में जो वैशिष्ट्य - वैषम्य दिखाई देता है, उसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि आदिकालीन गीतों में विद्यापति ने मैथिली भाषा का प्रयोग किया तो भक्तिकाल में अवधी तथा ब्रज भाषा गीतों का माध्यम बनी। द्विवेदी काल से छायावाद तक संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के रूप ही गीतों में दृष्टिगोचर होते हैं। दूसरी ओर हिन्दी ग़ज़ल **में** प्रारम्भ से आज तक फ़ारसी- उर्दू प्रधान हिन्दी, संस्कृतनिष्ठ तत्सम हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी के मिले-जुले रूप परिलक्षित हुए हैं। आज के हिन्दी गीतों में आंचलिक भाषा तथा विदेशी भाषाओं के शब्द भी प्रवेश पा गए हैं, जबकि हिन्दी ग़ज़ल आम बोलचाल की हिन्दुस्तानी भाषा के अधिक करीब आ गई है।

ज़हीर कुरेशी का यह शेर देखिए
आपका, मेरा, हर किसी का दुख,
एक जैसा है आदमी का दुख।' [15]

बह्र वज़न की दृष्टि से भी गीत और ग़ज़ल में पर्याप्त वैषम्य दिखाई देता है। जहाँ गीत में मुखड़े (स्थायी) तथा अन्तरे में मात्राओं की संख्या सामान्यतया भिन्न ही होती है (समान भी हो सकती है) वहीं ग़ज़ल का प्रत्येक शेर बल्कि प्रत्येक मिसरा एक ही बहर वज़न (लय खंड) में होगा। हिन्दी गीत **में** आज अनेक लोकगीतों के छन्द भी आकर समाहित हो गए हैं। डॉ. आशा किशोर ने लोकगीतों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है - "जीवन के नवीनतम तत्त्वों को अपने में समाहित करते रहने के कारण लोक गीतों **में** एक जीवन्त गति है, जिसमें जीवन के नित - नूतन आदर्श प्रतिष्ठित हैं। [16]हिन्दी गीत और ग़ज़ल की संवेदना व शिल्पगत प्रतिबिम्बता व वैशिष्ट्य में आई स्थापनाओं के साथ ही समकालीन कविता की गीत और ग़ज़ल में पाई जाने वाली समानता व विशिष्टता का भी सूक्ष्म में ही सही, निष्कर्ष रूप में विचार करना उचित होगा। आज जहाँ एक ओर गीत बाह्य-संगीत तथा आलंकारिकता के लबादे को उतारकर जन-जीवन से जुड़ते हुए नई कविता के समानान्तर बौद्धिकता तथा नवीन रूपाकारों, प्रतीकों, बिम्बों के सहारे पहचान पाता है, वहीं हिन्दी ग़ज़ल न केवल घने अन्धकार में प्रकाश की प्रथम किरण है, बल्कि महानगरीय सभ्यता के बन्द द्वार पर परिचय की दस्तक भी है। डॉ. कुँअर बेचैन का ऐसा ही एक शेर देखिए-

निष्कर्ष -

" फिर रहा है अपने घर में ही यतीमों की तरह,
मन हमारा मारा-मारा और हम खामोश हैं। " [17]

वस्तुतः आज जहाँ एक ओर हिन्दी गीत अपनी कोमलता, माधुर्य, संगीतात्मकता, जीवन की लयात्मकता तथा नवीन युग-बोध के कारण लोगों के दिलों में उतरने का सामर्थ्य रखता है तो वहीं दूसरी ओर हिन्दी ग़ज़ल भी आम आदमी के दुख-पीड़ाओं, त्रासदियों को व्यक्त करती तथा सामाजिक बुराइयों का पर्दाफ़ाश करती लोकप्रिय काव्य-विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। जहाँ तक गीत की भाव व शिल्प की दृष्टि से भावी सम्भावनाओं का प्रश्न है - देखा यह जा रहा है कि नवगीत लेखन से 'नव' के आग्रह में हिन्दी गीत को नई कविता, अकविता आदि के समानान्तर ' आज का गीत', 'नया गीत', 'आधुनिक गीत' तो कहीं नवगीत की संज्ञाओं से अभिहित किया जा रहा है यदि इस पर हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो पाएँगे कि हर बदलते युग का काव्य अपने समय में आज का होता है, नया होता है, आधुनिक होता है तथा 'नव' होता है। स्पष्ट है ये शब्द परिस्थिति सापेक्ष एक विशेषण तो बन सकते हैं, परन्तु ये निरपेक्ष प्रवृत्ति अथवा मूल्यबोधक नहीं बन सकते। साथ ही यह भी देखने **में** आता है कि आज के अधिकांश गीतकार कहने को तो आधुनिकता का दम्भ भरते हैं, किन्तु उनकी रचनाओं **में** आधुनिक विचार - बोध, विज्ञान - बोध की प्रवृत्ति अधिक नहीं पनप पाई है। गीति-कर्म से पहले गीतकार को आज के अति बौद्धिकतावादी युग **में** विचार - साहित्य से जुड़ाव रखना अपरिहार्य हो गया है। फिर भी अपनी विशिष्टात्मकता के कारण **गीत** आज काव्य की अन्य विधाओं के बीच अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। आज की कविता के समानान्तर ही ग़ज़ल भी समसामयिक, सामाजिक, अधिक संवेदनशील, चेतनाकामी, सरल तथा मनुष्य को समझने वाले मित्र के समान प्रतीत होती है।

****

सन्दर्भ -

1. धर्मपाल अवस्थी - नए पुराने गीत, अंक-2, पृ. 59 से उद्धृत। गोपाल गर्ग ऋण चुकाती है नदी, पृ. 30 से उद्धृत।
2. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास - डॉ. आशा किशोर, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 537 1
3. हिन्दी ग़ज़ल का उद्भव और विकास - डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, पृ. 176।
4. बेला- निराला, पृ. 78।
5. बेला – निराला, पृ. 68 1
6. साए में धूप - दुष्यन्त कुमार, पृ. 15।
7.नवगीत दशक - *3* - सं. शम्भुनाथ सिंह, पृ. 55। पृ. 12।
8.बलबीर सिंह रंग - (हिन्दी गीत और गीतकार - डॉ. उपेन्द्र पृ. 23 से उद्धृत)
9.नीरजा - महादेवी वर्मा, पृ. 20।
10.ग़ज़ल : शिल्प और संरचना - डॉ. नरेश, पृ. 38।
11.शम्भुनाथ सिंह : हिन्दी गीत और गीतकार - डॉ. उपेन्द्र, पृ. 47 से उद्धृत।
12.हिन्दी ग़ज़ल के विविध आयाम - डॉ. सरदार मुजावर, पृ. 74
13.चाँदनी का दुख - ज़हीर कुरेशी, पृ. 19।
14.आधुनिक हिंन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास - डॉ. आशा किशोर, पृ. 51
15.शामियाने काँच के - डॉ. कुँअर बेचैन, पृ. 70

गढवाल हिमालय के लोकगीतों की भाव सम्पत्ति

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1464

डॉ.डी.एस.भण्डारी
विभागाध्यक्ष हिन्दी
बालगंगा महाविद्यालय सेन्दुल
केमर टिहरी गढवाल उत्तराखण्ड
मो.9917699690,8126543239

सारांश-काव्यशास्त्र के बंधनों से दूर लोकगीतों की सरसता के समक्ष लिखित साहित्य का काव्य सौन्दर्य फीका दिखाई देता है लोकगीत मानव समाज की सामूहिक अनुभूति को व्यक्त करने के सबसे सशक्त माध्यम दिखाई देते हैं। लोकगीत में अनुभवजन्य ज्ञान होता है इस कारण उन्हें काव्य के साथ ही जीवन दर्शन भी माना जा सकता है। लोकगीत सामूहिक रचना है जबकि कविता व्यक्तिगत कविता विश्राम के क्षणों की काल्पनिक सृष्टि है जबकि लोकगीत लोकजीवन की अनेक परिस्थितियों संघर्षों और आवश्यकताओं के परिणाम हैं। लोकगीत श्रम उत्सव और मानव उल्लासों से संबद्ध मिलते हैं। कोई भी लोकगीत ऐसा नहीं है जिसकी सामाजिक उपयोगिता न हो। लोकगीतों में इतिहास भूगोल संगीत नृत्य आदि अनेक विषय समाहित रहते हैं। अनेक भावों के समागम से लोकगीत बनते हैं जबकि कविता में इन तथ्यों की कल्पना नहीं की जा सकती है। इस प्रकार से गढवाल हिमालय के लोकगीतों की भाव सम्पत्ति अतुलनीय और असीमित है प्रस्तुत शोध पत्र में इसी तथ्य का विवेचन किया गया है।

गढ़वाली लोकगीतों का एक बहुत बड़ा भाग स्त्री गीतों से सम्बन्धित है। श्रम साध्य गढ़वाली समाज में स्त्री की भूमिका महत्वपूर्ण है। अनेक प्रकार की पीड़ाएं उसे सहन करनी पड़ती हैं और इन्हीं पीडाओं से, अनुभूतियों से लोग कण्ठ में स्वर लहरी फूट पड़ती है।1

खै जौली मांजी पहाड़ू की बेरी।
कनी किस्मत रै हवैली मेरी।
केकु बाबा न इण्टर पढाई।
केकु बाबा न राठ विवाई।
मैन न बाबाजी सैसर नि जान।
बांज की डाली मां फांस लगाण।

गढ़वाल हिमालय के बहुत कम क्षेत्र गांव ऐसे हैं जहां भौतिक सुख सुविधाएं उपलब्ध है। अगर कुछ क्षेत्र गांव में सुख सुविधाएं हैं भी तो उसका लाभ स्त्री को नहीं मिलता है। गढ़वाल का राठ क्षेत्र श्रम साध्य जीवन के लिए प्रसिद्ध है।2 यहां रात दिन परिश्रम के बल पर ही जीवन यापन किया जा सकता है परिश्रम का सबसे अधिक भार परिवार की बहू को उठाना पड़ता है। परिवार में खाना बनाने की जिम्मेदारी से लेकर बच्चों की देखभाल, गाय भैंस की देखभाल, मीलो दूर से उनके लिए चारा पानी लाना मीलों दूर से खाना बनाने के लिए लकड़ी लाना, खेती का काम और पीने का पानी भी कहीं किलोमीटर दूर से पीठ पर लाद कर लाना, दिन-रात के इस परिश्रम में उसे न सूर्य उगने का पता चलता है और न सूर्य ढलने का। ऐसी श्रम साध्य जिंदगी को देखकर नव विवाहित युवती के कण्ठ से सहसा निकलता है कि हे मां मेरी कैसी किस्मत रही होगी मुझे पिताजी ने इण्टर तक क्यों पढ़ाया होगा? और इण्टर पढाने के बाद मेरा विवाह राठ में क्यों किया होगा? मैं पिताजी अब सैसर नहीं जाऊंगी मैंने बांझ के पेड़ पर फांसी लगानी है।

एक कण्ठ से निकला यह स्वर हजारों कण्ठ का स्वर बन जाता है। गीत में अनुभूति की तीव्रता दिखाई देती है मायके विषयक स्मृतियां और ससुराल के दुख गीतों में वर्णित होते हैं। मायके का सुख ही याद नहीं आता वरन वह मायके को देखना चाहती है और कहती है कि-

मैं छऊं वैणी निरदया नगरी।
लोक बोली देंदा भारी नऊं देदाधरी।
बर्छियों की मार देंदा तलवारियों का घौं।
तेल मेरी सासु त्वे तनी मेरो भाग।
उंची डांड्यों तुम नीसी जावा
घणी कुलायों तुम छांटी होंता देखण देवा मैत का देश।

गढ़वाली लोकगीतों में प्रकृति के प्रति अपार ममता का भाव दिखाई देता है। गीतों में बसंत की छवि, फूलों के रंग, कफ्फू हिलांश फ्योंली के प्रति अत्यधिक आत्मीय भाव दिखाई देते हैं। यहां के धार्मिक गीत भावों की दृष्टि से अत्यधिक समद्ध दिखाई देते हैं। प्रेम और वीरत्व की अद्भुत व्यंजना इन लोकगीतों में दिखाई देती है। डॉक्टर गोविन्द चातक कहते हैं कि जागर पवाडे प्रेमाख्यान खुदेड़ गीत लिखित साहित्य की भक्ति वीर श्रृंगार और करुण रस की परंपराओं को भी मात करते हैं। जागरों में देवी-देवताओं की अर्चना और स्तुति में अपूर्व रसमयता दिखाई देती है। बसंती गीतों में प्रकृति का अपार वैभव वर्णित है।[3]प्रकृति के प्रति मानव की आत्मीयता और एक सूत्रता के दर्शन सम्पूर्ण गढ़वाली लोकगीतों में दिखाई देते हैं। यहां प्रणय गीतों में जो रसात्मकता और सौन्दरयानुभूति दिखाई देती है वह अन्यत्र नहीं दिखाई देती है।

तैंकी मुखडी मां सुरीज पीठी मां चन्दा।
वीं का रंग मां मैलो होंद घुमैलो सुरीज।
भ्वां नी घरें दी वा हाथुं नी लियेंदी।

उसके मुख में सूरज के समान तेज तेज है पीठ चंद्रमा के समान उसके तेज से सूर्य भी धूमिल हो जाता है उसे न तो जमीन पर एक रखा जा सकता है और न ही उसे हाथों में लिया जा सकता है। यद्यपि रूप वर्णन इनका मुख्य विषय नहीं है लेकिन सौन्दर्य और अनुभूति की रसात्मकता से रूप वर्णन मुख्य विषय बन जाता है प्रेमिका को भक्त की गीता और बातू की रामायण कहकर ऐसे भाव उत्पन्न किए जाते हैं कि हिंदी साहित्य में भी वह नहीं मिलते हैं। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि इसकी एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ मुग्धाएं खंडिताएं और धीराएं न्यौछावर की जा सकती हैं। प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी होकर भी निष्प्राण हैं। रूप के प्रति आसक्ति दिखाई देती है लेकिन इसके बाद भी काव्य में अन्य भाव सम्मिलित होने के कारण उसकी महिमा कम नहीं हुई है। प्रेम के साथ-साथ पतिव्रत दाम्पत्य गृहस्थ के प्रति आस्था की भावना लोकगीतों में विभिन्न रूपों से वर्णित हुई है। प्रेमाभिव्यक्तियों के साथ अनेक लोकगीतों में यौवन की अस्थिरता के भाव भी दिखाई देते हैं। समसामयिक घटनाओं से सम्बद्ध और ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित अनेक लोकगीत मिलते हैं। लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर लोग कर्तव्य की ओर प्रेरित करती है। यही कारण है कि सामान्य से सामान्य पंक्ति भावपूर्ण लगती है। काव्य के समान ही लोक काव्य में सरसता और रसवत्ता दिखाई देती है। कुछ विघन ही इनमें अन्तर मानते हैं। डॉक्टर रघुवंश कहते हैं कि काव्य और लोक काव्य की भावभूमि मौलिक अन्तर दिखाई देता है।[4]रस की स्थिति लोग जीवन की वास्तविक भावनात्मक प्रक्रिया में निहित है। लोक जीवन में जिस प्रकार विभिन्न भावों और संवेगों के कारण रस की अनुभूति होती है यही अनुभूति लोककाव्य में भी दिखाई देती है। यहां के लोकगीतों में श्रृंगार करुण और वीर रसों का समावेश ही अधिक दिखाई देता है, अन्य रस इन लोकगीतों में नहीं दिखाई देते हैं। बाजूबंद, छूडा, लामण, छोपती, चौफुला , चांचर, में श्रृंगार, झुमैलो

और खुदेड गीतों में करुण और पवाडों में वीर रस की निष्पत्ति होती है। इन रसों के अतिरिक्त वात्सल्य के भाव भी गढ़वाली लोकगीतों में दिखाई देते हैं। मांगल खुदेड गीतों में वात्सलय की सुन्दर अभिव्यक्ति दिखाई देती है।शिशु की मृत्यु को लेकर रचे गये गीतों में भी वात्सल्य और करुणा का अपूर्व संयोग दिखाई देता है अपनी बेटी की मृत्यु की से अनजान मां कहती है कि-

मेरी उनाड्या माडी बीजी जादी।
लाडुली बेटुली हे बीजी जादी।
तेरी कैसी नींदरा हे बीजी जादी।
सिरवाणी को घाम हे बीजी जादी।
भौरेला पंछी हे बीजी जादी।
बासण लैन हे बीजी जादी।
त्वै वाच न सान हे बीजी जादी।
तेरा बोलांदा पराण हे बीजी जादी
को देव लीणे हे बीजी जादी

इस लोकगीत में करुण और वात्सल्य की निष्पत्ति हुई है। यह कहा जा सकता है कि लोकगीतों में वात्सल्य भाव भी सर्वाधिक व्यक्त हुआ है बुरांश का फूलना, आग का मरमराना, कफ्फू का बासना यह शब्द मात्र नहीं है। इन शब्दों से सम्पूर्ण लोकमन का उल्लास स्वयं उद्घाटित होता है ऐसे अनेक शब्द लोक साहित्य में मिलते हैं।लोकगीतों में कथ्य प्रमुख होता है। लोक काव्य की शैली सरल होती है शैली में पुनरावृति की प्रवृत्ति दिखाई देती है। भावों को सघन और सजीव बनाने में भी इन पुनरावृति प्रवृत्ति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। कई गीतों में कथा की अपेक्षा जीवन चरित्र अधिक वर्णित होता है। लोक की लोक साहित्य में वर्णित होनी चाहिए। डॉ, सत्येंद्र कहते हैं कि सुरुचि भी लोक साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। प्रतीक लोक भाषा में दिखाई देते हैं किसी शब्द का प्रतीक रूप में विकसित होने के लिए उस क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना का सहायक दिखाई देती है।[5]

झंगोरा की बाली सुवा उडी परदेस गैरे पिंजरी खाली।
खाई जालो खाजो कै अनाडी का हाथ पडे हारमुनी बाजो।
गेऊं जौ का कीस।
ज्यों ज्यों ठण्डो पाणी त्यौं त्यों ज्यादा तीस।

लोकगीतों में संगीत तत्व की प्रधानता होती है। ध्वनि सौन्दर्य जो लोकगीतों में दिखाई देता है वह लिखित साहित्य में नहीं दिखाई देता है। लोकगीतों में अलंकार स्वतः प्रविष्ठ हो जाते हैं। अलंकार केवल शैली के बाहय उपकरण नहीं उनका आधार मानव मनोविज्ञान है। लोक काव्य में अभिजात साहित्य के अलंकार मिलते हैं लेकिन उनका लोककाव्य में समावेश जानबूझ नहीं किया जाता है वरन लोकानुभूति की तीव्रता के कारण वह स्वतः ही सम्मिलित हो जाते हैं।

बनलो बसंत आलो।
तू उड्यांयु पंछी मैं विव्यांदु मौर ।
छवा सी हलकी पाणी सी पतली।
रूप को रौजिहया होलु फूलु कु हौंजिया।
बज सी अरेंडी देखी दई सी तरेंडी।
तेरू नौं लीक प्रभु विपदा बैरन्दी संकट करेन्दी।
चिलमी को सूट।
कांठा की जुन्याली छुमा उजाला सी मूठ।

अनुप्रास के साथ यमक और श्लेष भी गढ़वाली लोकगीतों में दिखाई देते हैं।

कूडा की रैणी।
डांडू की फ्यूंली छई धार मां सी गैणी।
अखाडु की सांई।
तेरी ज्वानी इनी लौंखणी छोटी जनी बार की कुलाई।
दोतारी को तार
अमर हवै जाया सुवा तू धरती की चार

लोक काव्य में मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार की उपमाएं दिखाई देती हैं। उपमा के अतिरिक्त रूपक के भी कई उदाहरण लोकगीतों में दिखाई देते हैं। प्रेमी और प्रेमिका के पारस्परिक सम्बन्धों को अनेक रूपकों में व्यक्त किया गया है।[6] अतिशयोक्ति लोककाव्य में प्रयुक्त होने वाला प्रमुख अलंकारों में से एक दिखाई देता है। अधिकांश वीर काव्य में अतिशयोक्ति अलंकार दिखाई देता है।लोकगीतों में छंद की रचना उक्ति के साथ साथ अनायास ही होती है। लोकगीतों में स्वर और लय छंद का आधार होता है और गढ़वाली लोकगीतों में यही दिखाई देता है। लोक साहित्य स्वतः स्फूत होता है मात्राएं गिनकर लोक साहित्य रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है लोकगीत मौखिक होते हैं इसलिए उनमें वर्णों की गिनती सम्भव नहीं अतः यहां छंद वर्ण की अपेक्षा ताल और लय पर आधारित होता है।

पोखरी का हीत जय जश दे।
तेरी जाति आयोजन जश दे।
भैदली क्या लायो जय जश दे।
सैवन धुपाणी जय जश दे।

उपरोक्त के अतिरिक्त अनेक गढ़वाली लोकगीतों में नपी तुली वर्ण योजना मिल जाती है किन्तु यह वर्ण योजना समास नहीं है वरन वर्णो की संख्या ताल और लय से समाहित होने के कारण समान होने का वाहय है तुम और छंदों की अपेक्षा लय ही लोकगीतों का आधार होता है।

निष्कर्ष:लोकगीत मानव की सामूहिक अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं। उनमें लोक का अनुभूत ज्ञान व्यक्त होता है। यहां का लोक काव्य काव्यशास्त्र के बंधनों से मुक्त है। भाषा भेद के कारण लोक काव्य की रसात्मकता में बाधा उत्पन्न होती है अनुवाद से लोक काव्य का प्राण जीवित नहीं रहता उसके प्राण तत्व को ग्रहण करने के लिए उस लोक काव्य की भाषा को आत्मसात करना पड़ेगा। यहां का लोक काव्य श्रमशील परिस्थितियों का परिणाम है। लोक का हर्ष उल्लास आदि सभी कुछ वर्णित होता है। यहां के लोकगीतों में प्रकृति के प्रति अपार स्नेह भाव व्यक्त हुआ दिखाई देता है। लोकगीतों का एक बड़ा भाग नारी वेदना से सम्बन्धित है। यहां के लोक काव्य में प्रेम वात्सल्य की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। भावनाओं की तीव्रता और सौन्दर्यानुभूति इस लोक काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है।

****

संदर्भ :-

1.डॉक्टर गोविंद जातक गढ़वाली लोकगीत के सांस्कृतिक अध्ययन तक्षशिला प्रकाशन पृष्ठ संख्या 345
2.डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका पृष्ठ संख्या 106
3.डॉक्टर गोविंद जातक गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ 34
4.डॉक्टर रघुवंश हिंदी अनुशीलन धीरेंद्र वर्मा विशेषांक पृष्ठ 503
5.डॉक्टर सत्येंद्र ब्रिज लोक साहित्य का अध्ययन पृष्ठ 546
6.डॉ नगेंद्र रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ 95

स्वातंत्र्योत्तर आलोचना के आधार स्तंभः नामवर सिंह

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1476

चेतन चंद्र जोशी
शोधार्थी हिंदी
(ल.सिं.म. राजकीय स्ना. महा.
पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड) 263637 मो.9412092340,9690996935

साहित्य में आलोचना का कुछ वैसा ही स्थान है जैसा हमारी स्कूली शिक्षा में गुरुजनों का। जैसे एक अच्छा शिक्षक उस छात्र की तकदीर और तस्वीर दोनों बदल देता है, ठीक वैसे ही एक संतुलित आलोचना भी साहित्यिक रचनाओं के वातावरण को एक नयी ऊर्जा प्रदान करती है। गुण और दोषों का संतुलित विवेचन किसी भी परिदृश्य का अत्यावश्यक तत्व है, जिसके बगैर उस वस्तु की कसौटी को जाना नहीं जा सकता। हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग से चली यह परंपरा द्विवेदी और शुक्ल युग में अपने प्रौढ़ावस्था को प्राप्त करती है। आचार्य शुक्ल की आलोचनात्मक कृतियां हिंदी साहित्य में मील का पत्थर हैं, जो हर उस राहगीर को साहित्य का भान कराती हैं जब भी वह भटकाव की स्थिति में होता है। विश्वनाथ त्रिपाठी अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'हिंदी आलोचना' में लिखते हैं-

"कहने का तात्पर्य यह है कि पं. रामचंद्र शुक्ल ने अपने समय में उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी हासिल की थी। अनेक साहित्येतर विषयों का गंभीर अध्ययन करके उन सबके प्रकाश में साहित्य की समीक्षा की थी या यों कहिए कि जीवन की संगति मैं साहित्य को बिठलाया था। इस पृष्ठभूमि के बिना यथार्थ को देखने की निराविल एवं अचूक दृष्टि की प्राप्ति असंभव थी।"1वस्तुतः आलोचन के मूल कर्म को जिस तरह आचार्य शुक्ल ने उद्घाटित किया उसी का परिणाम था कि यह परंपरा आगे जाकर मील का पत्थर साबित हुई। इसी परंपरा से छनकर निकले समीचीन आलोचकों में नामवर सिंह का भी नाम आता है जिनकी आलोचनाएं स्वातंत्र्योत्तर युग का आधार स्तंभ मानी जाती हैं। नामवर सिंह के रचना कर्म पर प्रो0 सुभाष चंद्र लिखते हैं-

"नामवर सिंह ने हिंदी आलोचना में जब से (57-58 वर्ष पहले) कदम रखा तभी से वे इसके केंद्रीय किरदार रहे हैं। इस दौरान साहित्यकारों की पीढ़ी बदल गई। हिंदी-साहित्य में कई आंदोलन आए और गए। आलोचक और रचनाकार आए और गए, लेकिन इस मायने में नामवर सिंह एक अपवाद ही हैं कि इतने लंबे समय बाद भी न तो आए-गयों की सूची में शामिल हुए न ही पुराने पड़े। एक तो हिंदी-आलोचना की यह विडम्बना रही है कि आमतौर पर इसके महत्वपूर्ण आलोचक भी विशेष समय के बाद के साहित्य के भावबोध को सही नहीं पहचान पाए और नये लेखन को पुराने विचारों व साहित्यिक मानदंडों के आधार पीटते रहे और खारिज करते रहे।"[2]नामवर सिंह का आलोचनात्मक कर्म इतना सुव्यवस्थित और संतुलित है कि किसी भी परिस्थिति में वह अपने सिद्धांतों के साथ समझौता करता नहीं दिखता। मूलतः तब जब विचारों की टकराहट समकालीन रचनाकारों में आमबात होती थी जिसमें किसी तीसरे को आकर उसे सुव्यवस्थित करना पड़ता था। इस संदर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं-

"कहना न होगा कि काव्य-मूल्यों की शुद्धता के बारे में मुक्तिबोध को उतनी ही आस्था है जितनी अज्ञेय को; फिर भी दोनों दृष्टियों में यदि अंतर है तो जाहिर है कि उसका स्रोत कहीं और होगा। अज्ञेय के लिए जो लेख 'दूषित दृष्टि' और 'द्वेषभरी मनोवृत्ति' का परिचायक है, उसे मुक्तिबोध व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखते हुए कहते हैं कि "सामजिक प्रतिष्ठा के जोर से साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के जो आडंबरपूर्ण दृश्य हमें यत्र-तत्र दिखाई देते हैं, उनसे विचलित होकर वह आलोचना प्रस्तुत की गई है। इसीलिए भगवतशरण जी के लेख का अपना अतिरिक्त महत्व है।" अज्ञेय जिसे एक व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक व्याधि समझकर संतोष कर लेते हैं, मुक्तिबोध उसी को सामाजिक व्याधि के रूप में देखकर मूल्य-निर्णय देते हैं।"[3]नामवर सिंह की आलोचनात्मक प्रकृति असाधारण है फिर चाहे वो कविताओं के संदर्भ में हो, कहानियों के संदर्भ में हो अथवा इतिहास के संदर्भ में हो। हिंदी साहित्य की आलोचनात्मक प्रकृति में काव्य-समीक्षा ही मूलतः आलोचकों के केंद्र में रही है, लेकिन इन सबसे इतर नामवर सिंह ने गद्य विधा में भी अपनी असाधारण प्रतिभा को साधा। वे अपनी रचना 'कहानीः नई कहानी' की भूमिका में इस संदर्भ में लिखते हैं-"यह कहानी-चर्चा कुछ काव्य समीक्षकों को पसंद नहीं आई। उन्हें इस बात पर एतराज था कि हिंदी में कहानी चर्चा को खामखाह इतना तूल दिया जा रहा है। उनकी नजर में कहानी इस लायक है ही नहीं कि उसे गंभीर समस्या का विषय बनाया जाय।"[4]इसी में आगे वे लिखते हैं-"यह नजीर दूसरों के लिए भले ही पर्याप्त न हो किंतु इससे मेरी इस धारणा को बल मिला कि हिंदी आलोचना जो अभी तक मुख्यतः काव्य-समीक्षा रही है, कविता से इतर कथा-नाटक आदि साहित्य रूपों को विधिवत विश्लेषण करके ही अपने को सुसंगत एवं समृद्ध बना सकती है। कहानी समीक्षा संबंधी ये निबंध इसी दिशा में विनम्र प्रयास है। इसीलिए मेरे निकट इनका महत्व केवल कहानियों की समीक्षा तक सीमित न होकर एक व्यापक समीक्षा-पद्धित के निर्माण की दिशा में है।"[5]समीक्षा करना आसान नहीं भले लोगों की मूल प्रवृत्ति कमियाँ निकालने की रही हो लेकिन गुण और दोषों का तात्विक विवेचन बौद्धिकता के आधार पर ही किया जा सकता है ना कि व्यर्थ के बकवादी वाचाल से। आलोचक लीक से हटकर ही यह कर्म करने की ओर प्रवृत होता है, क्योंकि वह जानता है कि मिथ्यारूपी मिठास कहीं ज्यादा बेहतर होती है रचनाकारों के लिए; मुख्यतः आज के परिदृश्य में बजाय तिक्ताहटरूपी यथार्थ से। यह तिक्ताहटरूपी यथार्थ भले उनकी जड़ों को दुरुस्त करता हो लेकिन तत्समय विरले ही उससे संतुष्ट हो पाते हैं। आज आलोचन कर्म जिस तरह अपने मूल सिद्धांतों से भटक चुका है उसका एक बड़ा कारण यह मिथ्यारूपी मिठास ही है जिसमें रचनाकारों के अनर्गल रचनाओं का कीर्तिगान आलोचकों द्वारा बखूबी किया जा रहा है। आज के दौर में जहाँ रचनाकर्म स्वांतःसुखाय के केंद्र पर ही अपनी रचनाओं को गुनता-बुनता है, ऐसे में आलोचना का कार्य और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह रचनाकारों के मूलधर्म को भावनाओं की अतिरंजना से बचाने के लिए उनका पाथेय नये सिरे से प्रशस्त करे। इस कार्य को नामवर सिंह ने जिस तरीके से किया है वह हमेशा याद किया जाता है और जायेगा। वे लिखते हैं-

"इस बात को हम इस प्रकार कह सकते हैं कि लेखक अपने व्यक्तित्व के माध्यम से समाज को साहित्य का रुप देता है। जो लेखक समाज के प्रति कुछ जागरुक हैं वे तो इस तथ्य को स्वीकार करते हैं; लेकिन कुछ लेखक इतने फक्कड़ होते हैं कि वे अपने व्यक्तित्व के माध्यम से समाज की अभिव्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति समझते हैं। कोई जरूरी नहीं कि ऐसे लेखक हमेशा समाज से कटे हुए सर्वथा व्यक्तिवादी ही हों। साहित्य-रचना की भावाकुलता में लेखक अक्सर सबकुछ भूल जाता है। उसके भीतर प्रसव-वेदना की तरह केवल एक ही अनुभूति उमड़ती रहती है कि अपने को यथासंभव पूरा का पूरा अभिव्यक्त कर दे।"[6]इसी में वे आगे विकृत होती आलोचना और आलोचकों को लताड़ लगाते हुए कहते हैं-"लेकिन ऐसे भी आलोचक हैं जिन्हें न तो विवेक से कोई मतलब है और न

वास्तविकता से। उनकी बिगड़ी मति के अनुसार आलोचना के सामने 'असली सवाल सामाजिक यथार्थ का नहीं है, बल्कि उस यथार्थ की विकृतियों के अध्ययन का है। यथार्थ की विकृतयों का अध्ययन करते-करते भृंगकीटन्याय से उनका मस्तिष्क इतना विकृत हो गया है कि आलोचना, कविता, कथा आदि सभी क्षेत्रों को वे अपनी मानसिक विकृतियों से विकृत कर रहे हैं। कोई जरूरी नहीं है कि जो सवाल इनके लिए असली हों, वह सारे साहित्य का भी असली सवाल हो जाये। लेकिन विकृत मस्तिष्क की यही तो बीमारी है कि सारी दुनिया विकृत मालूम होती है! फिर भी यह निश्चित है कि दो-चार लेखकों के इस साहित्य-बिगाड़ काम से सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति नहीं रुक जायेगी। मुर्गे की तबीयत, बांग न दे लेकिन सुबह का होना नहीं रूकेगा। समाज अपनी वास्तविक अभिव्यक्ति के लिए हमेशा की तरह व्यक्ति और व्यक्तित्व पैदा कर लेगा!"[7]नामवर सिंह की समीक्षात्मक दृष्टि इतनी सूक्ष्म है कि वह काव्यात्मक चमत्कार से लेकर गद्यात्मक विस्तार तक अपना विशेष प्रभाव हर बार दर्ज कर जाते हैं। छायावादी महाकाव्य 'कामायनी' में मनु और श्रद्धा के साहचर्य को जिस तरीके से आज के आधुनिक परिदृश्य में रखते हैं वो उन्हें एक विशेष दर्जे का समीक्षक बना देता है। वे कहते हैं-

"इस प्रथम परिचय में धीरे-धीरे साहचर्यजन्य प्रगाढ़ता आने लगती है; फिर भी एक-दसूरे के प्रति एक तरह का रहस्य अनुभव होता है। परस्पर समीप आते हुए भी कहीं कुछ कमी मालूम होती है। जितना ही एक-दसूरे को जानते जाते हैं, उतने ही अज्ञेय प्रतीत होते हैं। सामान्य परिचय में एक नए ढंग के रागात्मक कुतहूल का उदय होता हैः

नित्य परिचित हो रहे तब भी रहा कुछ शेष;
गूढ़ अंतर का छिपा रहता रहस्य विशेष।
दूर जैसे सघन वन-पंथ अंत का आलोक;
सतत होता जा रहा हो, नयन की गति रोक।

यह रहस्य मध्युगीन और प्राचीन कवि के लिए सर्वथा अपरिचित है। इस तरह की गूढ़ता दुष्यंत और शंकुतला के प्रथम परिचय में भी नहीं है। यह आधुनिक युग के विकसित मन की क्रिया है और इसलिए आधुनिक युवकों और युवतियों के प्रणय-संबंध अथवा परिचय के विकास-क्रम में ही मिल सकती है।"[8]

नामवर जी का रचना संसार जिस तरह काव्य में पड़ी सिलवटों को दूर करता है ठीक उसी तरह गद्य की गिरहों को भी वह बड़ी बारिकी से सुलझाता है। वे अपने रचनाकर्म के दायरे को किसी ख़ास विधा तक ही सीमित नहीं रखना चाहते वरन् वह हर विधा के सत्य-सौंदर्यबोध को अपनी पूर्ण आस्था के साथ परखते हैं। वे कहते हैं-

"साहित्य के रूप केवल रूप नहीं है बल्कि जीवन को समझने के भिन्न-भिन्न माध्यम हैं। एक माध्यम जब चुकता दिखाई पड़ता है, तो दसूरे माध्यम का निर्माण किया जाता है। अपनी महान् जययात्रा मे सत्य-सौंदर्य-द्रष्टा मनुष्य ने इसी तरह समय-समय पर नये कलारूपों की सृष्टि की ताकि वह नित्य विकासशील वास्तविकता को अधिक से अधिक समझ और समेट सके। हमारी इसी ऐतिहासिक आवश्यकता से एक समय कहानी भी उत्पन्न हुई और अपने रूप सौंदर्य के द्वारा इसने हमारे सत्य-सौंदर्य-बोध को भी विकसित किया। कहानी की इसी ऐतिहासिक भूमिका की माँग है कि वर्तमान परिस्थिति में उसकी सार्थकता की परीक्षा व्यापक संदर्भ में की जाय।"[9]

नामवर सिंह के कहानी विषयक आलोचन कर्म पर प्रो0 सुभाष चंद्र विस्तारपूर्वक लिखते हैं-"नामवर सिंह ने कहानी की आलोचना में उसकी रचना-प्रक्रिया पर जोर देते हुए नामवर सिंह ने तत्कालीन कहानियों की इस ढंग से व्याख्या की कि कहानी के अध्ययन में एक नई स्फूर्ति का संचार हुआ। यद्यपि यह भी सही है कि उनकी इस रचनात्मक हरकत से उस समय के बहु प्रतिष्ठित कहानीकारों के अहं को चोट पहुँची, जिसकी अभिव्यक्ति जब-तब लेखों में, भाषणों, गोष्ठियों-सेमिनारों और पत्रिकाओं के संपादकियों में होती रही है। अनुभव को ही प्रमाणिक मानकर रचित कहानियाँ जिस तरह मध्यवर्गीय कुंठा, निराशा, घुटन व पराजय बोध की विकृतियों का शिकार हुई वह आज भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। नामवर सिंह का हिंदी कहानी पर अपनी कलम चलाना शुभ संकेत था जिसने हिंदी कहानी को एक नई दिशा दी थी। हिंदी में शायद ही कोई आलोचक हो जो रचना को इस तरह प्रभावित कर सका हो।"[10]

यह हर दौर में मनुष्य की प्रकृति का एक अहम हिस्सा रहा है कि किसी भी नई चीज की शुरुआत में उसने या तो उपहास किया है या आलोचना लेकिन आलोचना भी अगर संतुलित ढंग से हो तो उसके कुछ माने होते हैं लेकिन आलोचना मे दोषरूपी विकृती ही दिखाई पड़े तो उसे फिर आलोचना नहीं कहा जा सकता। आलोचना का मूल अर्थ ही गुण और दोषों का विवेचन करना है, लेकिन जब किसी भी एक तत्व की अधिकता इसमें होने लगे फिर इसे आलोचना तो बिल्कुल नहीं कहा जा सकता ना ही यह उसकी कसौटी पर खरी उतर सकती है। नामवर सिंह इस विधा के मूलधर्म का जिस ढंग से नेह-निबाह करते हैं वही उन्हें अद्वितीय कोटी के आलोचकों में स्थान दिलाता है और वही उनके समकालीनों के भीतर उनके अंह को कचोटते हुए उनके लिए ईर्ष्या का भाव भी पैदा करता है। लेकिन नामवर सिंह ने कभी अपने इस मूलधर्म में कोई छेड़छाड़ नहीं की जो दुर्लभ था उसे सुलभ किया और जो अव्यवस्थित था उसे सुव्यवस्थित किया। मशहूर आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी इस संदर्भ में अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'हिंदी आलोचना' में लिखते हैं "डॉ.नामवर सिंह समसामयिक साहित्य-रचना का महत्व मानकर आलोचना कार्य में प्रवृत्त रहने वाले आलोचक हैं। जो लोग केवल महान साहित्य पर ही कलम चलाते हैं, वे बहुत जल्द जड़ हो जाते हैं। यदि आप अपने समसामयिक साहित्य का अध्ययन नहीं करते, उसमें रुचि नहीं रखते और उसे माँजकर अपनी दृष्टि निर्मल नहीं रखते तो आप किसी युग के साहित्य को नहीं देख सकते। यह सोचना कि आज जो कुछ लिखा जा रहा है, वह उपेक्षणीय है, आलोचक के 'महंथ' बन जाने का लक्षण है जो उसकी जड़ता घोषित करती है कि आलोचक प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन भी अपनी समसामयिक दृष्टि अर्जित करने के बाद ही कर सकता है। पं. रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी, सूर, जायसी की समीक्षा अपने युग के भावबोध से की है। डॉ. नामवर सिंह समसामयिक रचना-जगत के संदर्भवान आलोचक हैं।"[11]

साहित्य के आलोचनात्मक विधा में नये प्रतिमान स्थापित करने के लिए नामवर सिंह हमेशा याद किये जाते रहेंगे। नामवर सिंह का आलोचन कर्म हर दौर हर ठौर के लिए एक मिसाल है जो मशाल की तरह साहित्य की सभी विधाओं को आलोकित कर उनके लिए बेहतर मार्ग प्रशस्त करता है या फिर मेहतर की तरह वह उन साहित्यिक विकृतियों को साफ़ करने का बीड़ा उठाये हुए है, जिसमें कोई दूसरा अपने हाथ गंदे नहीं करना चाहता।

****

संदर्भ :-

1. हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2021 पृ.सं.-55
2. नामवर सिंहः हिंदी आलोचना के 'मेहतर', प्रो0 सुभाष चंद्र
3. कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, सं-2021, पृ.सं.67-68
4. कहानीः नयी कहानी, नामवर सिंह, भूमिका लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2019
5. वही
6. इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.42-43
7. वही, पृ.सं.44
8. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 58-59
9. कहानीः नयी कहानी, नामवर सिंह, भूमिका लोकभारती प्रकाशन, सं-2019, पृ.सं.20
10. नामवर सिंहः हिंदी आलोचना के 'मेहतर', प्रो0 सुभाष चंद्र
11. हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2021 पृ.सं-202

'वीमा' नाटक में व्यक्त विविध समस्याएँ

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1482

डॉ. भुरे बालाजी श्रीपती
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
शिवजागृती वरिष्ठ महाविद्यालय,
नलेगाँव ता.चाकुर जि.लातूर

आधुनिक काल में हिंदी साहित्य के विकास में अन्य विधाओं की तरह नाटक विधा का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समाज मध्यमों में दृक-श्राव्य माध्यम हमेशा प्रभावी रहे हैं। दृश्य-श्राव्य माध्यम होने के कारण नाटक विधा की भी श्रोता एवं पाठकों को प्रभावित कर उन्हें विकासात्मक दिशा में ले जाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी नाटककारों ने समाज में प्रचलित विविध समस्याओं को यथार्थता के साथ अपने नाटकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। नाटककार समाज में जो कुछ देखता है या अनुभव करता है उसे अपनी बौद्धिक एवं तार्किकता की कसौटी पर कसकर संवादात्मक और अपनी कुशल अभिव्यक्ति क्षमता से नाटक की सृजना कर समाज के सामने यथार्थ को रखते हुए सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। रत्नकुमार सांभरिया भी ऐसे ही नाटककारों में से एक हैं।

अपने सृजनात्मक जीवन में दलित, पीडित, विकलांग तथा निशक्तजनों की वाणी को मुखरित करनेवाले मेधावी प्रतिभा के धनी रत्नकुमार सांभरिया का जन्म हरियाणा के रेवाड़ी जिले के भाडावास गांव में06 जनवरी 1956 को हुआ। रत्नकुमार सांभरिया ने कहानी, एकांकी, नाटक, लघुकथा, आलोचना, अनुवाद आदि विधाओंपर लेखनी चलाकर हिंदी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके नाटक अभिनेता एवं मंचीयता की दृष्टि से पूरी तरह से सक्षम एवं सफल रहे हैं। उनके नाटकों की कथावस्तु, पात्र एवं उनके संवाद बिल्कुल हमारे जीवन से जुड़े हुए या अपने आसपास के परिचित लगते हैं। अतः पाठक बड़ी आसानी और सहज स्वाभाविक रुप से उनकी रचनाओं के साथ जुड़ जाता है।नाटककार ने अंबेडकर जी के शिक्षा, संघर्ष तथा संघटन के मूलमंत्र को केंद्र में रखकर इस' वीमा' नाटक की सृजना की है। इस नाटक में विकलांग के जीवन संघर्ष को अंकित करते हुए समाज में प्रचलित जातिप्रथा, विकलांगों की उपेक्षा, उच-नीच का भेदभाव, नेताओं की दोगली नीति, अंतरजातीय विवाह की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, रुढ़िवादी सत्ता ,सरकारी योजनाओं की धांधली, मीडिया का दोहरा चरित्र, पुलिस का रवैया, भ्रष्टाचार आदि विविध समस्याओं का चित्रण किया है। इस नाटक में व्यक्त समस्याओं को समझने के लिए हमें निम्नलिखित बिंदुओं को देखना होगा। जैसे -

विकलांगों की उपेक्षा-: रत्नकुमार सांभरिया ने अपने वीमा नाटक में विकलांग तथा निशक्तों की समाज द्वारा किस प्रकार उपेक्षा होती है या हो रही है इसका चित्रण नाटक के पात्र जमन वर्मा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जमन वर्मा दलित होने के साथ-साथ विकलांग तथा नेत्रहीन भी है। वह नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी की संस्था में म्यूजिक टीचर के रुप में कार्ययत है। वह नेत्रहीन वीमा की गुंडो से रक्षा तो करता ही है। साथ ही साथ श्यामाजी की सलाह से उसके साथ विवाह भी करता है। लेकिन जब श्यामाजी को पता चलता है कि वीमा अपनी बिरादरी में से हैं तब वह उसे अगवाह कर उसके पिताजी के पास भेज देता है और जमन वर्मा से वीमा को भूलकर उसकी ही जाति की किसी लड़की के साथ शादी करने की सलाह देता है लेकिन जमन वर्मा उनकी बात मानता नहीं। तब उसे धमकाते हुए वीमा को भूलने की बात करता है। इस बात को लेकर जमन वर्मा का वीमा को यह कहना कि, " जो नि:शक्त या गरीब होते हैं। उनका तो भगवान भी नहीं होता है, वीमा। वहां भी सब गोल है। यहां भी सब गोल है। शोषण की सरगमें हैं, यहां-वहां ँ"[1] हर जगह दिखाई देती है। यह विकलांगों के प्रति सामाज की उपेक्षा को ही व्यक्त करता है।

जाति-प्रथा का प्रचलन :- भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही जाति प्रथा का प्रचलन चलता आ रहा है, जो समाज एवं मानवता के लिए एक भयावह बीमारी की तरह है। आज आधुनिक काल में भी विज्ञान की तरक्की के बावजूद और पढ़े-लिखे, शिक्षित और समानता का पक्षधर माननेवाले समाज ने भी इस कुप्रथा को अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए बरकरार रखा है। नाटककार ने इस नाटक में इसे सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। जब श्यामाजी विकलांग जमन वर्मा को कहते हैं कि तुम्हारी जाति का वीमा को पता लगने से उसने अपने एक परिचित के हाथों अपने पापा और भाई को बुलाकर इस नरक से निकालने की बात की है। इसी कारण वह तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहती। तब श्यामाजी से जमन वर्मा स्पष्ट रुप से कहता है कि "जातिभेद जैसा ओछापन आपको शोभा नहीं देता। वीमा में बड़प्पन है। वह नहीं मानती जात-पाँत ,छुआछूत।"[2] और रही बात उसे धोखा देने की, तो "कोर्ट मैरिज के आवेदन पत्र के कॉलम में मैंने अपनी जाति भर दी थी। वीमा को साफ साफ बता दिया था, मैं अनुसूचित जाति से हूँ।"[3] तब उन्होंने ने कहा भी था कि जाति नहीं, आदमी को इंसान होना चाहिए। लेकिन जाति प्रथा के प्रचलन को बढावा देनेवाले श्यामाजी जैसे लोगों की संख्या समाज में कम नहीं है।

उच्च- नीच का भाव-: समाज में जाति पाति के भेदभाव के कारण ही उच्च नीचता का भाव दिखाई देता है। इस नाटक मे श्यामाजी जमन वर्मा को अपने बेटे के समान मानकर अपनी संस्था में नौकरी देते हैं। वे जमन वर्मा की शादी वीमा से भी करवाते हैं लेकिन वीमा को अपनी बिरादरी का जानते ही बौखला जाते हैं। क्योंकि उन्हें यह अपनी प्रतिष्ठा पर आयी आँच की तरह लगता है। अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बचाये रखने के लिए जमन वर्मा पर वीमा से तलाक लेने का दबाव डालते हुए उनका यह कहना कि "वह वीमा, तुम जमन वर्मा। वह जमींदार, तुम फाफाकार। वह सिर, तुम चरण। शर्म आनी चाहिए तुम्हें।"4 यह उनके उच्च-नीचता से भरे विचार को ही व्यक्त करता है। जाति की कुप्रथा को माननेवाले ऐसे ही लोगों के कारण आज भी समाज में उच्च नीचता का भेदभाव दिखाई देता है।

नेताओं का दोहरा चरित्र-: धर्म ,राजनीति या समाज हो विविध क्षेत्रों में आज भी ऐसे नेताओं की कमी नहीं है, जो मंच से तो स्वयं आदर्शवादी तथा सत्यवादी बनने का स्वांग करते हैं। लोगों को सहानुभूति दिखाते हैं। लेकिन अपना स्वार्थ के लिए या जब कोई आँच अपने पर आने लगती है, तो उसी समय तुरंत अपना विचार बदलकर अपने ही कहे गए विचारों का विरोध करने लगते हैं। 'वीमा' नाटक में श्यामाजी तथा आका ये दोनों पात्र दोमुँहे नेताओं के चरित्र को व्यक्त करते हैं। जहां श्यामाजी जमन वर्मा का विवाह वीमा के साथ करते हैं वहाँ जैसे ही उन्हें पता चलता है कि वीमा अपने रिश्तेदार से है, तो तुरन्त जमन वर्मा का विरोध करने लगते हैं। वही आका भी जमन वर्मा का साथ न देकर श्यामाजी का ही पक्ष लेते हैं। इसी दोहरे चरित्र को लेकर जमन वर्मा को मित्र देवत सिंह का यह कहना कि," जमन, ये आका हैं न ,दोमुंहे है। उनको अपने चाहेते चाहिए। ऐसे चाहेते पैर चाटते रहे, पूछ हिलाते रहे। नि:शक्तों की पीड़ा से, उनकी समस्याओं से, उनका दूर-दूर तक लेना-देना नहीं है।"[5] यह दोमुँहे चरित्रवाले नेताओं को व्यक्त करता है।

अनमेल विवाह की समस्या :- जहां विवाह करनेवालों की आयु में मेल नहीं होता या किसी कम आयु की लड़की का विवाह प्रौढ़ या

वयस्क पुरुष के साथ होता है, तो उसे अनमेल विवाह कहा जाता है। समाज में इस अनमेल विवाह जैसी कुप्रथा का प्रचलन बहुत था। भले ही आधुनिक शिक्षा के कारण या कानून के कारण इसमें आज कमी आ गई हो, लेकिन समाज में कहीं-कहीं आज भी इस कुप्रथा का पालन किया जाता है, जो समाज तथा मानवता के लिए घातक है। 'विमा' नाटक में रत्नकुमार सांभरिया ने अनमेल विवाह की समस्या का भी संकेत किया है। अपने अनमेल विवाह से बचने के लिए जब विमा अपने ही परिवार को छोड़कर भाग निकलती है और कोई गुंडा बदमाश उसपर अत्याचार करने लगता है, तब जमन वर्मा उस गुंडे के चंगुल से वीमा को बचाकर अपने घर ले आता है। जब दोनों में वार्तालाप होता है तब अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए वीमा बताती है कि हमारा एक खाता-पीता, नामी- गिरामी घर है। जमीन है। जायदाद है। मां नहीं तो क्या हुआ। बाप है, दो भाई हैं। दोनों सर्विस में हैं। दो भावजे हैं। एक टीचर है। दूसरी घर संभालती है। दो रोटियों के लिए बर्तन-भांडे धोना, बच्चों को नेहलाना धुलाना, स्कूल भेजना जितना बनता मैं करती। इतना करके भी " मेरे घरवाले मेरी शादी एक अधेड़ से करना चाहते थे। जिनके साथ वे मेरी शादी करना चाहते थे। उनकी पत्नी की कोख पाट रह गई। दूसरी बेवी होती मैं उनकी। हाँ जमींदार हैं वे। धान की खेती होती है। उपजाऊ जमीन की भांति वे मुझे रखते" [6] अच्छा हुआ यह ना कहकर भाग निकली। यहाँ बेमेल विवाह की समस्या का संकेत नाटककार ने दिया है।

अंतर्जातीय विवाह की समस्या :-स्वातंत्र्य और समता के आधारपर कानून ने आज भले ही अंतर्जातीय विवाह को मान्यता दी हो लेकिन समाज में कुछ रुढीवादी परंपरा को लेकर चलनेवाले लोग अंतर्जातीय विवाह का अपने स्वार्थानुरुप विरोध करते दिखाई देते हैं। इस नाटक में जमन वर्मा और वीमा दोनों का अंतर्जातीय विवाह होता है। जमन वर्मा अनुसुचित जाति से हैं, तो वीमा उच्च वर्णीय ब्राह्मण परिवार से हैं। दोनों अंधे हैं, निशक्त है। श्यामाजी स्वयं को मानवतावादी कहनेवाले नेता इन दोनों को कोर्ट मैरेज करने के लिए प्रेरित करते हैं। कोर्ट मैरेज करवाते भी है लेकिन जब उन्हें पता चलता है कि वीमा अपनी बिरादरी से रिश्ते में से हैं, तो इस विवाह का विरोध करने लगते हैं। यहां तक कि श्यामाजी तथा आकाजी दोनों जमन वर्मा से कहते हैं कि तुम " वीमा को भूल जाओ। नि:शक्तों के सामूहिक विवाह में तुम्हारी जात-बिरादरी की किसी विकलांग लड़की के साथ तुम्हारा विवाह करा देंगे।"7 यह अंतर्जातीय विवाह में रोडे डालनेवाली बात है। अंतर्जातीय विवाह का समर्थन करनेवाले अपनी ही बिरादरी या रिश्ते से संबंधित विमा को देखकर अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बचाये रखने के लिए तुरंत अंतर्जातीय विवाह का विरोध करने लगते हैं यह बड़ी विडंबना है।

सामूहिक विवाह :-नाटककार ने 'वीमा' नाटक में सामूहिक विवाह का भी चित्रण ही किया है। सामूहिक विवाह यह एक आधुनिक अवधारणा सामने आ रही है। जिसमें विविध जाति, धर्म, संप्रदाय के युवक-युवतियोंका एक साथ सामूहिक विवाह किया जाता है। ताकि गरीब तथा निर्धन लोगों को आर्थिक समस्या से छुटकारा मिल सकें। इस नाटक में जमन वर्मा का विवाह वीमा के साथ हुआ है। लेकिन अपनी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए श्यामाजी ने वीमा का अपहरण किया है क्योंकि वह उसकी बिरादरी के रिश्तेदार की बेटी है। वे जमन वर्मा पर तलाक के लिए दबाव डालते हैं और कहते हैं कि, "निःशक्तों के सामूहिक विवाह के लिए हमने आवेवेदन आमंत्रित किए हैं। तुम अपनी अर्जी लगा दो। हां, जाति के कॉलम में अपनी जाति जरूर लिख देना साफ-साफ।"[8]यहाँ तक कि जमन वर्मा जब आका के पास जाते हैं, तो वे भी जो बात श्यामाजी ने कही थी वही कहते हुए कहते हैं कि, "वीमा को भूल जाओ निःशक्तों के सामूहिक विवाह में तुम्हारी जात-बिरादरी की किसी विकलांग लड़की के साथ तुम्हारा विवाह करा देंगे।"[9]यहाँ सामूहिक विवाह का समर्थन तो किया गया है लेकिन स्पष्ट रुट से अंतर्जातीय विवाह का विरोध किया हुआ दिखाई देता है, जो बिलकुल स्वातंत्र्य और समता के खिलाफ है।

रुढिवादी सत्ता :- कहा जाता है यथा राजा तथा प्रजा। राजा का प्रजा अनुकरण करती रहती है। ऐसे समय समाज या सत्ता को चलानेवाले बड़े-बड़े नेता अगर सड़ी गली रूढ़ियों को लेकर चलते रहें, तो समाज का क्या होगा। आज अगर देखा जाए, तो धर्म और जाति का स्पष्ट प्रभाव सत्ता पर पडा हुआ हमें दिखाई देता है। कई राजनेताओं को लगता है भले ही धर्म पर आंच आए लेकिन जाति पर कोई आंच नहीं आनी चाहिए। इतने विकसित और उन्नत समाज में भी जाति पांति के भेदभाव को लेकर चलनेवाली सत्ता हो, तो उस राष्ट्र का विकास कैसे हो सकता है ? अर्थात सत्ता पर भी जाति का प्रभाव स्पष्ट रूप से आज भी हमें दिखाई देता है, जो समाज और राष्ट्र के विकास के लिए निश्चित ही हानिप्रद है। इस नाटक में श्यामाजी को जब यह पता चलता है कि वीमा अपने बिरादरी के रिश्तेदारों में से है तब उसे जमन वर्मा के साथ उसका विवाह होना अपमान एवं आपत्तिजनक लगता है। वे वीमा का अपहरण कर जमन वर्मा से वीमा को अलग करते हैं और जमन वर्मा को उसकी जाति को लेकर धमकाते हुए कहते है कि, " हम सालों-साल, उम्र भर, बिना धर्म जी सकते हैं, बिना जात पल भी नहीं रह सकते। पक्षी भी अपनी हैसियत के मुताबिक पंख फडफडाता है। उड़ता है। तुमने अपनी औकात का अतिक्रमण किया है, वर्मा।"[10] यह रुढिवादी सत्ता की मनोवृत्ति को ही दर्शाता है।

सरकारी नेतांओं की धांधली :-हम भ्रष्टनके भ्रष्ट हमारे यह आज के नेताओं का सूत्र बन गया है। अन्याय, अत्याचारी दूसरे अन्याय, अत्याचारी का साथ दे रहा है। अच्छी गुणसंपन्न संस्थाओं को या व्यक्ति को कभी पुरस्कार नहीं मिलता। जहां हमेशा भ्रष्टाचार होता है, अन्याय होता है ऐसे ही व्यक्ति या संस्थानों को आज पुरस्कार मिल रहा है। आज कल पुरस्कार या सम्मानों में भी धांदलि हो रही है। इसके पीछे सरकारी नेताओं की आपसी मिली भगत होती है। वे प्रशासकीय व्यवस्था के जरिए एक दूसरों की सहायता करते रहते हैं। इस नाटक में आका के आशीर्वाद से ही श्यामाजी की नेत्रहीन संस्था को पुरस्कार मिलता है। श्यामाजी की शिकायत लेकर जमन वर्मा जब आका के पास जाता है तब आका का श्यामाजी के ही समर्थन में यह कहना कि, " श्यामाजी जैसे सज्जन और संवेदनशील इंसान की इज्जत पर अंगुली उठा रहे हो, तुम। वे नेक ,हरदिल अजीज इंसान है। नि:शक्तों के लिए तो देवरुप हैं। क्यों ? क्या नहीं है सच ? विश्व विकलांग दिवस पर उनकी संस्था को पचास हजार रुपये का पुरस्कार मिला है।" [11] यह सब सरकारी नेताओं की धांधली को ही दर्शाता है। क्योंकि यह पुरस्कार गुणवत्ता के आधारपर न मिलकर आका की ही देन थी।

मीडिया का दोहरा चरित्र-: जमन वर्मा का मित्र देवत सिंह अखबार पर विश्वास करता है क्योंकि वह लोकतंत्र का चौथा खंबा है और हमारा समाज उसके बिना सुरक्षित नहीं रहता। वह राजनीति से लोकतंत्र को बचाए रखता है। लेकिन आज वर्तमान युग में मीडिया का दोहरा चरित्र हमारे आंखों के सामने आ रहा है। वह राजनीति की कठपुतली बनकर चल रहे हैं। इस नाटक में भी श्यामाजी तथा आका जैसे नेताओं के दबावतले मीडिया, समाचार पत्र के संपादक आ गये हैं। समाचार पत्र के संपादक सी.सी.झा हैं, जो जमन वर्मा की पीड़ा सुनकर श्यामाजी पर दबाव डालने की कोशिश तो करते हैं लेकिन श्यामाजी के कहने पर कि, "बेटे, आपकी शिराओं में भी उसी जाति का रक्त है, जो मेरी शिराओं में बह रहा है। झा बेटे, दुर्योग रहा लड़की मेरी रिश्तेदार निकल आई। नीची जाति का जमन वर्मा मेरे स्कूल में टीचर !"[12] यह सुनते ही अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए संपादक झा इस अवसर का लाभ उठाते हुए कहता है" श्यामाजी आका के दफ्तर में अपने एक आदमी का ट्रांसफर करवाना है। सेवक है, अपना। काम होना चाहिए।"[13] और वह जमन वर्मा पर हुए अन्याय का

समाचार न छपवाकर उसके उल्टा श्यामाजी के पक्ष में छपवा देता है। यहाँ मीडिया का स्वार्थी और दोहरा चरित्र हमारे सामने आता है।

पुलिस का भ्रष्ट रवैया :-

पुलिस समाज की सुरक्षा के लिए होती है। उसके जरिए समाज में अन्याय तथा अत्याचार को रोका जाता है तथा न्याय की रक्षा की जाती है। लेकिन जहां पुलिस का रवैया ही भ्रष्ट हो वहां न्याय की रक्षा कैसे हो सकती है। इस नाटक में अन्याय से पीड़ित जमन वर्मा अपने मित्र देवत सिंह की सहायता से श्यामाजी के खिलाफ पुलिसथाने में अर्जी देता है, तो पहले न्याय दिलाने की बात कहनेवाला थानेदार श्यामाजी की रिश्वत लेकर और आका के दबाव में आकर जमन वर्मा को ही गुंडा कहकर उसे डांट लगाते हुए कहता है कि, "ये कम दया है क्या, तुम दोनों विकलांग हो। और होते, अन्दर ले जाकर ऐसी पिटाई करता, ऐसी पिटाई करता, ऐ-बे सब भूल जाते। स्सालों, विकलांग हो या उचक्के ? स्साले, अंधे, लंगडे-लूले भी बडे घरों की लड़कियों को धोका देकर उनसे शादी रचाने लगे। ज्यादती करने लगे। गुंडे कहीं के।" [14] इतना ही नहीं थानेदार जमन वर्मा को डांटते हुए और उसे झूठा करार देते हुए कहते हैं कि" ले ये तेरी अर्जी पकड़ और भाग जा यहाँ से। विकलांग हो दोनों। और होते, सीधा अन्दर कर देता। आइंदा झूठी शिकायत लेकर थाने मत चले आना।" [15] यह पुलिस के भ्रष्ट रवैये को दिखाता है।

संस्थाओं में भ्रष्टाचार-:

आज समाज में विभिन्न संस्थाओं में रिश्वत एवं भ्रष्टाचार दिन-ब-दिन बढ़ते जा रहा है और इसी की आड़ में ईमानदार और सत्य को लेकर चलनेवालों का शोषण हो रहा है। नाटक में श्यामाजी निःशक्तों एवं विकलांग छात्रों को शिक्षा देने के नाम पर संस्था चलाते हैं। उनकी संस्था में अंधा जमन वर्मा म्यूजिक टिचर के रुप में कार्य करता है। श्यामाजी वहां के शिक्षकों को थोड़ी सी तनख्वाह देकर बाकी हडप लेते हैं। संस्था की आड में करुणा, दया और निःशक्तों के प्रति सहानुभूति दिखाकर वे भ्रष्टाचार करते रहते हैं। जमन वर्मा का वीमा को यह कहना कि, "वीमा यह संस्था है न ,सरकार के अनुदान से चलती है। अब मुझे तो दिखता नहीं है। पेन पकड़ कर साइन करा लेते हैं, मेरे। रोकड ! साइन तो ज्यादा पर ही कराते बताए। मेरी हथेली पर एक हजार रख देते हैं, बस।" [16] यह संस्थाओं में चल रहे भ्रष्टाचार को ही तो दर्शाता है।

ईमानदार संघटनों का अभाव :-

अन्याय, अत्याचार को नष्ट करने के लिए संघटध की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। नाटक का पात्र देवत सिंह निःशक्तों तथा विकलांगों के संगठन का अध्यक्ष है। उसकी सहायता से जमन वर्मा को न्याय मिलता है। संगठन के सभी सदस्य एक होकर श्यामाजी तथा आका के खिलाफ मुर्दाबाद, मुर्दाबाद के नारे लगाते हुए अपना आंदोलन तीव्र करते हैं। आखिर में श्यामाजी और आका को हार माननी ही पड़ती है और जमन वर्मा को उसकी पत्नी वीमा मिल जाती है। यहां संगठन का यश दिखाया गया है। लेकिन आज समाज में ऐसे संघटनों का अभाव दिखाई देता है।

निष्कर्ष-:

इस प्रकार रत्नकुमार सांभरिया जी ने विमा नाटक में विकलांग एवं निःशक्तों के जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त करते हुए जमन वर्मा और वीमा के माध्यम से समाज में प्रचलित जाति प्रथा, निशक्तों की उपेक्षा, नेताओं की दोगली नीति जैसी विविध समस्याओं को प्रस्तुत किया है। इस नाटक की कथावस्तु से निम्नलिखित बिंदु हमारे सामने आते हैं -
समाज में श्यामाजी जैसे दोगली नीति को लैकर चलनेवाले नेताओं की आज भी कमी नहीं है, जो समानता के पक्षधर होने का दिखावा मात्र करते हैं।आज के विज्ञानवादी युग में भी जाति भेद जैसी कुप्रथाओंका प्रचलन समाज में दिखाई देता है, जो मानवता के लिए बहुत घातक बीमारी के समान है।समता तथा मानवता का मुखौटा धारण कर विकलांग तथा निशक्तों की उपेक्षा आज भी की जा रही है।समानता लाने के लिए आज भले ही अंतरजातीय विवाह का अच्छा प्रचलन आरंभ तो हुआ है लेकिन इस प्रचलन में कहीं न कहीं जमन वर्मा और वीमा जैसी घटनाएँ हमें दिखाई दे रही है, जो दुर्भाग्यपूर्ण ।नाटक के माध्यम से संगठनात्मक कार्य की सफलता का संदेश भी दिया गया है।आज स्वतंत्र देश में मीडिया का दोहरा चरित्र हमारे सामने आ रहा है। पुलिस तथा प्रशासन का भ्रष्ट रवैया जो दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है वह समाज के लिए घातक है।

कुल मिलाकर रत्नकुमार सांभरिया द्वारा लिखित' वीमा' नाटक समाज के सामने जाति प्रथा, छुआछूत जैसी कुप्रथाओं का तथा भ्रष्ट पुलिस एवं प्रशासन व्यवस्था, मीडिया का दोहरा चरित्र, नेताओं की दोगली प्रवृत्ति का खुलकर विरोध कर समानता, स्वतंत्रता के पक्ष पर बल देते हुए विकलांग तथा निःशक्तों के प्रति समाज के दायित्व को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह नाटक छोटे-छोटे संवाद, प्रभावी कथावस्तु, चरित्र चित्रण, वातावरण की दृष्टि से सफल साबित होता है।

****

संदर्भ सूची :-

रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण 2020, श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ37 .
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.18
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.19
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.18
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.53
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.40
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.61
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.16
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.61
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.30
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.29
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.68
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.69
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.70
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.73
रत्नकुमार सांभरिया - वीमा - प्रथम संस्करण ,2020 श्री नटराज प्रकाशन,दिल्ली - पृ.38

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में चेतना के विविध आयाम
(दार्शनिक, राजनीतिक, धार्मिक के परिपेक्ष में)

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1481

रश्मि पुशाम
शोधार्थी हिंदी)
पंडित एस. एन. शुक्ला विश्वविद्यालय
शहडोल (मध्य प्रदेश) पंजीयन क्रमांक - 1184010006

सारांश : स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा साहित्य में कृष्णा सोबती का उपन्यास लेखन में महत्वपूर्ण स्थान है। अपने उपन्यासों के माध्यम से सोबती जी एक नए कथ्य और भाषा की विविधता के साथ समाज की हर दशा एवं दिशा को उजागर करने का प्रयास किया है, वैसे तो 19वीं शताब्दी के दूसरे - तीसरे दशक से ही हिंदी गद्य लेखन में महिला लेखिकाओं का पदार्पण हो चुका था । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नारी जागरण और स्त्री शिक्षा के व्यापक प्रचार - प्रसार के फलस्वरूप इस क्षेत्र में महिला कथाकारों कि एक मजबूत पीढ़ी सामने आई है, इसमें प्रमुख स्थान कृष्णा सोबती का है। जिन्होंने बनी बनाई परंपरा से परे हटकर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर समाज में व्याप्त नारी की चेतना को अपने उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से जगाने का प्रयास किया है।

बीज शब्द:- नारी चेतना, उजागर, प्रेरणा।

कृष्णा सोबती की रचनाएं एक समग्र दर्शनिकता का प्रतिफल है। जिसके पीछे भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतन का प्रभाव दिखाई देता है। केवल कलात्मक प्रतिभा और संवेदनशीलता के बल पर श्रेष्ठ साहित्य उत्पन्न नहीं होता है, श्रेष्ठ साहित्य का सृजन साहित्यकार की जीवन दृष्टि और अनुभव पर निर्भर रहती है। यह तो उनकी संस्कृति उनके संपर्क में आने वाले अन्य संस्कृति और चिंतन धाराओं से भी बेहद प्रभावित होता है।
आधुनिक हिंदी साहित्य पर परंपरागत और आधुनिक भारतीय दर्शनों के साथ आधुनिक पाश्चात्य का विचारधाराओं का भी व्यापक असर पड़ा है। इसके साथ प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध भारत का स्वतंत्रता आंदोलन और उन उसका परिणाम आदि घटनाओं से प्रभावित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों में भी भारतीय जनमानस को गहरे रूप से प्रभावित किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास इन सभी विचारधाराओं और घटनाओं से प्रभावित मानसिकता की उपज है। कृष्णा सोबती का साहित्य किसी भी वादों और खेमों से घिरा हुआ नहीं है। कृष्णा जी लिखती हैं - ***"साहित्य किन्ही खेमों में बड़ा हैं।"*** लेकिन उनके साहित्य पर भारतीय परंपरागत चिंतन और आधुनिक पाश्चात्य विचार धाराओं का प्रभाव जरूर पड़ा है। अतः हम कह सकते हैं कि उनकी दार्शनिक दृष्टि भारतीय और पाश्चात्य चिंतन के धनात्मकता को स्वीकार करते हुए विकसित हुआ है। आधुनिक विज्ञान औद्योगिक सभ्यता तकनीकी विकास और दो विश्व युद्धों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न स्थितियां पाश्चात्य देश में अस्तित्ववाद के प्रचुर प्रचार में सहायक सिद्ध हुई। महानगरीय वातावरण की भीड़ में व्यक्ति नितांत अकेला महसूस करता है। वह समाज एवं परिस्थितियों से कटता हुआ स्वयं के लिए भी अजनबी बनता गया, उसके जीवन का वास्तविक आनंद खो गया और जिंदगी एक बोझ की तरह की सिमट कर रह गई है। व्यस्तता, बोध, पराएपन, कुंठा, संत्रास, और विसंगति आदि इस दर्शन से जुड़े शब्द हैं। **'बादलों के घेरे में'** रवि असफल प्रेम से जनित निराशा और कुंठा के कारण अकेलापन का अनुभव करता है। ***"खिड़की के सामने लेटे लेटे अकेलापन से घबराकर जब मैं बाहर देखता हूं तो धुंध भरे बादलों के घेरों में घुंघराले बालों वाला वही चेहरा दिखता है, वही....।***
'तीन पहाड़' की जया प्रेम में असफल होने पर आत्महत्या कर लेती है। कुछ नहीं कोई नहीं पहाड़ों के साए तले और दो बाहें, दो राहें की नायिकाएं इस तरह की जिंदगी में घुटन निराशा अकेलापन और कुंठा का अनुभव करती हैं।
मइस तरह पश्चिमी परिवेश में पनप रहे व्यक्तिवादी साहित्य के भूल में व्यक्तिगत सुख एवं व्यक्तित्व का विकास महत्व रखता है। समाज द्वारा स्वीकृत नैतिकता अनैतिकता की धारणा उन्हें माने नहीं है। क्योंकि वह व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक है। समाज की यह परंपराए व्यक्ति के सुख एवं विकास में बाधक है उसे तोड़ने का साहस करते हुए अहम को संतुष्ट करता है। 'मित्रों मरजानी' की मित्रों और कुछ नहीं कोई नहीं के सिवा 'सूरजमुखी अंधेरे की' रती अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व की रक्षा की छटपटाहट विद्यमान है। वे समाज में स्वयं के होने का बोध कराती रहती है।

अस्तित्ववादियों के अनुसार सारी दुनिया निरर्थक और एब्सर्ड है। यह निरर्थकता मनुष्य पर निराशा तथा अजनबीपन पैदा करती है और सारे संबंधों को जड़ बनाती है। आदमी की आदमियत में उसकी शक्ति और जीवन मूल्यों में विश्वास नहीं रखने के कारण यह वाद विकासशील मानवीय चेतना से युक्त नहीं समझा गया प्रत्येक विचारधारा अपनी पूर्व व्यवस्था के विद्रोह से उत्पन्न होती है और हर विचारधारा में युगानुकूल सत्यांश विद्यमान है। सच्चा साहित्यकार विकृत और झूठे पड़ गए विचारों को त्याग देते हुए अग्रसर होता है वह अपने समय जीवन अनुभव और दृष्टि की कसौटी पर प्रत्येक सिद्धांत को परखता है और उन अंशों को स्वीकार करता है। जो जीवंत और मानवीय हैं। कृष्णा सोबती व्यक्ति की स्वतंत्रता को सबसे महत्वपूर्ण मानती हैं। उनके नारी पात्रों में व्यक्तित्व अस्तित्व की रक्षा की छटपटाहट विद्यमान है। लेकिन उनकी दृष्टि पाश्चात्य विचारधाराओं के अतिवादी रूख से बिल्कुल मुक्त है। इसलिए मूल्यहीन और औचित्यहीन स्वतंत्र व्यक्ति के स्थान पर कृष्णा सोबती के पात्र संस्था और समाज के प्रति अपने दायित्व को स्वीकार करते हैं और समष्टिवादी चिंतन से अपनी स्वतंत्रता को मर्यादित करने को तैयार होते हैं। मित्रों के अंत में अपने पति के पास लौट जाना और रति के दिवाकर के निमंत्रण को ठुकराना इसके उदाहरण हैं। महक बानो अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और आत्मसम्मान की स्थापना करने के बाद वकील साहब के जीवन से अलग हो जाती है। 'ए लड़की' की अम्मू में मैं मैं हूं का बोल हमेशा रहता है। फिर भी पारिवारिक सामाजिक जीवन के महत्व को वह स्वीकार करती है। समय की पात्र आरण्या में नर और नारी की मित्रता को नवीन मान्यता मिली है। अविवाहित और अकेले प्रौढ़ व्यक्तियों के एकाकीपन और व्यर्थ का बोध आज के युग में प्रमुख समस्या है। कामिनी और दमयंती आदि बूढ़ी औरतें निराशा, कुंठा, अवसाद, निरर्थक और मृत्यु संत्रास से पीड़ित है। लेकिन उपन्यास की नायिका आरण्या के स्वभाव में दार्शनिकता और दृढ़ता एवं स्वतंत्र निर्णय की शक्ति है। जीवनभर अकेले रहने का निर्णय उसने स्वयं लिया था वह भविष्य को देखते हुए यह निर्णय लेती है। उसका जीवन समाज से कटा हुआ और घुटन भरा ना रहे इस कारण वह अकेले जीवन निर्वाह का निर्णय करती है। इस सब के बाद भी उसका भविष्य निर्माण का निर्णय वह अंत में अपने दोस्त ईशान के साथ रहने का करती है।कृष्णा सोबती अपने दार्शनिकता के बल पर जहां आधुनिक जागरूक नारी की पहचान को रेखांकित करती हैं, वही व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन और सामंजस्य को बनाए रखने की कोशिश करती हैं।

भयुगानुरूप राजनीतिक परिस्थितियों उलटफेर आदि का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ता है राजनीतिक हलचलों का सामान्य व्यक्ति के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। देश में राजनीतिक स्थिरता से जीवन व्यवस्था में सुख शांति व समृद्धि की स्थापना होती है। राजनीतिक पतन से नैतिक मूल्य नष्ट होते हैं। तो सामान्य जनजीवन में भी अराजकता व्याप्त हो जाती है। इस पूरे तथ्य का उदाहरण जिंदगीनामा उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है। जिंदगीनामा में विभाजन पूर्व और विभाजन पश्चात का चित्रण मिलता है। जिसमें राजनीतिक खोखलेपन में इंसानी जिंदगी जिंदा लाशों में किस तरह तब्दील हो जाती है, यहीं दर्शाया गया है। गांव वालों के मददगार बनने वाले शाहजी स्वयं इस खोखली राजनीति के उदाहरण है। फतेह अली सरकार की इस गंदी राजनीति को उजागर करता है - ***"शाहजी सरकार अंग्रेजी घोड़े पर कागज बूत भी बिठा दे तो कानून के जोर जबरदस्त में यह बोलने लगेगी।"***

भ्रष्ट राजनीतिक परिवेश में भ्रष्टाचार नीचे से ऊपर तक व्याप्त है। ऐसी स्थिति में बिना रिश्वत और चमचागिरी के काम पूरा होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। बख्शी कहता है -***"जो लक्ष्मी के जोर से इस कलयुगी देवी को रिझायेंगे भेंट चढ़ाएंगे वही खुश किस्मत मुरादे भी पाएंगे....।"*** जिंदगीनामा में सरकारी कर्मचारी अपने अधिकारों का प्रयोग करके खला भ्रष्टाचार करते हैं- ***"हर घर से एक बंदा पुत्तर नहीं हो तो चंदा"*** एक तरफ जहां देश को निकल जाने वाले भेड़िए हैं। तो वहीं दसरी तरफ प्राणों की बलि देने वाले देशप्रेमी भी हैं। जिंदगीनामा में पंजाब परे अनेक आक्रमणों के बावजूद उसका बस जाना जहां लोगों के देश प्रेम का ही उदाहरण है। विभाजन पश्चात राजनीतिक कार्यकलापों ने जहां देश को गतिशीलता दी है, वहीं लोगों को भ्रष्ट भाग्यवादी भी बना दिया है। जिंदगीनामा में राजनीतिक वातावरण और उसके प्रभाव का प्रत्यक्ष चित्रांकन हुआ है। **'समय सरगम'** में कथानक में प्रसंगवश कहीं-कहीं पर कृष्णा सोबती को राजनीतिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। धोबी रामखेलावन के शब्दों में राजनीतिक अशुद्धता की पीड़ा मुखर हो उठी है। ***"साहिब ऊंची जात बिरादरी ने भी कम घृणा नहीं फैला रखी है। अपने को संस्कारी जातियां कहकर पुकारते हैं और दलितों पिछड़ों को असंस्कारी संस्कार विहीन नीचे पिछड़ा आरक्षण को लेकर कभी मनुवादी उबलते हैं और कभी दलित और कभी कमजोर वर्ग धंधे की राजनीति है। जाने कब तक खेला जायेगी यह सिलसिला कब तक चलता रहेगा।"*** कृष्णा सोबती ने अति संवेदनशीलता के साथ कश्मीर मुद्दे पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं, कृष्णा सोबती ने पुरुष उपन्यासकारों की अपेक्षा राजनीतिक विचार कम ही व्यक्त किए हैं, हालांकि जिंदगीनामा **'डार से बिछड़ी'** आदि में विभाजन का जिक्र है किंतु विशुद्ध राजनीतिक परिवेश का चित्र नहीं है। कृष्णा सोबती के संपूर्ण साहित्य का अध्ययन करने पर राजनीतिक चर्चा कम ही मिलती है, लेकिन जितनी है वह प्रभावी है। कृष्णा जी ने अपने उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश में परिवर्तन की आवश्यकता की ओर संकेत किया है।

भारतीय समाज में धर्म का विशेष महत्व रहा है। भारतीय परिवेश में जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य का जीवन धर्ममय माना जाता है। संविधान के अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। लेकिन जब देश का विभाजन ही धर्म के आधार पर हुआ तो मनुष्य की भावना धर्म से उठने लगी। हम यह नहीं कह सकते कि आज मनुष्य का विश्वास भगवान और उसकी भक्ति पर से बिल्कुल उठ गया है। लेकिन इस विश्वास की भावना से व्यक्त जरूर हुआ है। आज धर्म की परिभाषा मनुष्य ने अपने समय और सुविधा के अनुसार निर्धारित किया है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज में ही जीता एवं विचार करता है। समाज के माध्यम से ही व्यक्ति ज्ञान कला नैतिकता प्रथाओं मान्यताओं का विचार करता है और समाज की यही विरासत संस्कृति है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश में सांस्कृतिक परिवर्तन तेज गति से हो रहे हैं। परंपरागत भारतीय परिवेश को नवीन चेतना प्राप्त होती जा रही है जिसके परिणाम स्वरुप व्यवहारिक जीवन में भी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। भारत एक विशाल देश है यहां अनेक जातियों धर्मो संस्कृतियों और भाषाओं का संगम है। पंजाबी में मुख्य रूप से हिंदू सिख और मुस्लिम तीनों धर्म के लोग रहते हैं। हिंदू और सिखों में अनेक उपजातियां समान है। उनके रहन-सहन के नीति- नियम भी बहुत कुछ समान रूप से मिलते जुलते हैं। इन उप-जातियों के बीच विवाह संबंध भी होता है। उपन्यास में साह परिवार हिंदू है, चाची म्हारी सिख परिवार की है जिसका प्रेम गणपत शाह से हो गया था। शादी के बाद गणपत शाह की मृत्यु हो गई चाची म्हारी अभी साहों के परिवार में इज्जत के साथ रहती है। गांव में हिंदू और मुसलमान सदियों से दो भाइयों के समान रहते हैं यह सही है कि गुरु गोविंद सिंह ने मुगलों से कई बार लड़ाई की थी। लेकिन यह राजनीतिक लड़ाईया थी। उनका बैर अत्याचारी महाराजा रणजीत सिंह के वजीरों में मुसलमान भी शामिल थे। उपन्यास में शाह के मजलिस से इसका जिक्र होता है। ***"महाराजा रणजीत सिंह के वजीरों के नाम तो सुने होंगे खलीफा नरूलद्दीन फकीर अजीजुद्दीन और ऐसे ही बेहिसाब अमीर उमरा और सरदार जागीरदार।"*** हिंदू और मुसलमान शताब्दियों से पंजाब के गांव में साथ साथ रहते हैं पारस्परिक सहयोग और एकता का जीवन व्यतीत करते हैं। गुजरांवाला में हिंदू और मुसलमानों के रहन-सहन और रीति-रिवाजों में समानताएं हैं साहनी अपनी गोद भरने के लिए बाबा फरीद से मन्नत मांगती है गरीब नवाज आपके नवाज आपके हुकुम बंदी आप के दरबार में शीश झुकाने आए है। मेहरा वाला तेरी नजरें हो सीधी तो साहों के घर में भी झंडा फिरे" गांव के हिंदू मुसलमानों के धार्मिक विचारों में अंतर होता है, लेकिन सामाजिक सांस्कृतिक और विचार में अंतर दिखाई नहीं देता। काशीराम कहते हैं – "यह तन सी में फिर से डारिया तो बाद की बातें हैं। मनुष्य ने खुद बनाई है, रब रसूल और करता करण हार सब एक ही है। कर्म स्लाही जी को कुछ सूज गया। बादशाहो इधर पंच पीर उधर पंच पांडव इधर पंचोलिया उधर पंच प्यारे।"अंग्रेज सरकार ने अपने शासन को बनाए रखने के लिए पहले पहल जनता में फूट डालने की शुरुआत की मुसलमानों को समर्थन करके उन्हें हिंदुओं के विरुद्ध भड़का कर जन आंदोलन को दबाने की कोशिश की सांप्रदायिक दृष्टिकोण उत्पन्न हो गया और दोनों धर्म के लोगों में अलगाव बढ़ गया अभी तक तो चौधरी जी इतना ही आया है ना कि मुसलमान 3000 सालाना आमदनी पर मामला भरे तो चोन का हकदार बने। उधर हिंदू तीन लाखा सालाना पर मामला दे तो लो पर्ची डाल सके अब आप ही अंदाजा लगा तो लो बादशाहो की अपनी हालत क्या होने वाली है। "शताब्दियों से भाई-भाई के समान मिलजुल कर रहने वाले हिंदू मुसलमानों के परंपरागत संबंधों में इस तरह संघर्ष बढ़ने लगा। हिंदू हिंदी में अंग्रेज सरकार की राजनीतिक राष्ट्रीय चेतना और देश विभाजन के कारणों और परिणामों को प्रतिपादित करने वाले अनेक उपन्यास रचे गए। जिंदगीनामा विभाजन के समय सांप्रदायिक दंगों पर लिखा गया उपन्यास नहीं है। इसमें विभाजन से पूर्व पंजाब के ग्रामीण जीवन में हिंद और मुसलमानों के बीच धरण मूल भाईचारे का चित्रण हुआ है। साथ हीं साथ इन परिस्थितियों और कारणों का संकेत भी हुआ है जिसके फलस्वरूप ग्रामीण जीवन में सांप्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न हुआ था.

****

संदर्भ ग्रंथ सूची: -

I. कृष्णा सोबती, सोबती एक सोहबत, पृष्ठ 398
II. कृष्णा सोबती, बादलों के घेरे, पृष्ठ 29
III. कृष्णा सोबती जिंदगीनामा पृष्ठ संख्या - 17
IV. वही " " पृष्ठ संख्या - 39
V. कृष्णा सोबती, सोबती एक सोहबत, पृष्ठ संख्या - 402
VI. कृष्णा सोबती जिंदगीनामा पृष्ठ संख्या - 338
VII. कृष्णा सोबती समय सरगम पृष्ठ संख्या - 120
VIII. कृष्णा सोबती जिंदगीनामा पृष्ठ – 201

'छत पर दस्तक' कहानी का मूल्य -बोध

Doi-https://doi.org/10.56716/4/1465

डॉ.सुषमा चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली Mo.-9811911763

परंपरावादी और प्रचलित रूढ़ियों को तोड़ने का साहस लेखिका मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी में दिखाया है क्योंकि हमारा भाव-बोध हमारी अनुभूति पर द्वारा ही निर्मित नहीं होता ,बल्कि हमारे अध्ययन मनन से बनती बिगड़ती विचारधाराओं और जीवन दर्शन का भी लगातार इस पर घात- प्रतिघात होता रहता हैं। मृदुला गर्ग की यह कहानी वैश्विक परिदृश्य को लिए हुए है। मनुष्य का दायरा रोज़ी रोटी कमाने के लिए कितना विस्तृत हो गया है कि वह सब कुछ दांव पर लगाकर पश्चिम देशों में जाने का भरसक प्रयास करता है क्योंकि वे विकसित देश है। आधुनिक परिवेश में स्वयं को फिट करने के लिए व मानवीय संवेदना से परे और मशीनीकरण युग में यंत्रवत् चलते हुए ऐसे फंस जाता है कि वह प्रायः संवेदनहीन हो कर जीना प्रारंभ कर देता है। एक कठपुतली की तरह, जिस की डोर जिस दिशा में खींचती है, वह वैसे ही उपक्रमों को करने लग जाता है। ऐसा जीवन व्यतीत करते हुए मूल्यों का विघटन तो होता ही है ,साथ ही वह उपभोक्तावादी संस्कृति का हिस्सा बन जाता है। इस कहानी में हमें इसी पुनः स्थापना के बारे में बताया गया है कि विश्व हमारे लिए एक गांव बन गया हैं पर जिन सम्बन्धों से हमारा संसार सजा है वहीं हम से दूर होते जा रहे हैं। भारतीय ,अमेरिका में जाकर किस तरह बदल गए अपनी संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं।इसी दर्द को परिभाषित करते हुए लेखिका कहती है, "माँ- बाप की नागरिकता, सदियों की विरासत, खून और नस्ल, सब धरे रह जाते हैं और आदमी बिला गर्भ में आए, बिला मदद या परवरिश, नया जन्म ले लेता है"1। उसकी दृष्टि में अब तक के सभी मूल्य धराशायी हो जाते हैं या घिसे पुराने लगने लग जाते हैं। वह वहीं की संस्कृति का ,सभ्यता का , अंधानुकरण करने लग जाता है कि कहीं वह डॉलर की इस रेस में पीछे न दिखाई देने लग जाए। बाहर का रूप - रंग ही उसका भारतीय दिखाई देता है। बिना पुनर्जन्म लिए वह पूर्णतः पश्चिमी संस्कृति में ढल चुका होता है। वे बच्चों के गीत जो चंदा मामा दर के थे। अब परिवर्तित होकर ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार बन चुके हैं। आज की आधुनिक पीढ़ी को यह पता भी नहीं चला कि जिन रिश्तों में आत्मीयता थी। जहां चांद भी मामा था। उसकी जगह पर न जाने कौन से बिम्ब आ गये।

आज मध्यमवर्गीय स्त्री अनेक उतार चढ़ाव से गुजरकर विभिन्न स्थितियों से सामंजस्य बैठाकर अपने पुत्र को इस योग्य बनाती है कि वह सिलिकॉन वैली में डॉलर कमा सकें। इसके लिए वह अपने प्रॉविडेंट फंड के तमाम रुपयों को उसके हाथ में रख देती है ताकि बेटे का भविष्य उज्ज्वल हो सकें। उसके सभी सपने सुहाने हो सकें। बेटे के ऐसे ही सुविधा संपन्न घर को देखने के लिए, जब वह अमेरिका जाती है, तो अपने और बेटे के बीच एक प्राइवेसी को खड़ा हुआ देखती है। यह प्राइवेसी इतना विशाल रूप धारण कर लेती है कि माँ नलिनी के कदम बेटे के कमरे में जाने से डरने लगते हैं। वह दबे पांव सारे काम करने लगती है। पूर्णतः यंत्रवत् , उनके बीच संवाद होता है तो केवल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए। माँ के हाथों का खाना अर्थात परांठा तो उसे अच्छा लगता है पर उनकी बढ़ती हुई उम्र उसे दिखाई नहीं देती। एक तरह से वह दायित्वहीनता से ग्रस्त हैं। मूल्यों का ऐसा विघटन कई बार कहानी में देखने को मिलता है। जहाँ भौतिकतावाद हम पर इतना हावी हो जाता है कि उससे रिश्तों की आत्मीयता के मिठास को खत्म कर दिया। इन अपार्टमेंट्स की भव्यता के बारे में बताते हुए लेखिका कहती है, "ऊँचा खूबसूरत, सवाल- जवाब से खरा, बाहर इतना खुला- खुला और भीतर एकदम कैदखाना"[2] कैदखाने में ही हम दूसरों की भावनाओं को समझने का प्रयास नहीं करते क्योंकि वहां हम समय व्यतीत करते हैं। जीवन जीते नहीं है। तभी तो जिस बेटे के लिए उसने अपने जीवन की हर खुशी को न्योछावर कर दिया। बार-बार आग्रह करने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया। अपने जीवन की सारी जमा पूंजी उसकी शिक्षा दीक्षा पर खर्च करती है ,ताकि वह सुखी और आनंदित हो। दूसरी ओर ससुर ने भी मरते वक्त दिल्ली के घर को देवर के नाम पर कर दिया कि उसका बेटा तो डालर कमाता है ऐसे कई घर बनवा देगा। स्त्री यदि शिक्षित हैं तो उसका शोषण नहीं होगा ऐसा नहीं है।उसका स्वरूप और आकार बदल जाता है। यहां ममता की दुहाई देकर या सामाजिक मान मर्यादा के नाम पर छलावा देकर , उसे अधिकारों से वंचित किया जाता है। पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री के अधिकारों और उसकी अस्मिता की बात करना और उसे पाने के लिए चिन्तन ही आज स्त्री विमर्श है। लेखिका ने नलिनी के माध्यम से उस अनसुने स्वर को शब्द देने का प्रयास किया है। वह कहीं भी अपने अधिकार के लिए संघर्ष नहीं करती है। क्योंकि उसकी खुशी तो सम्बन्धों की आत्मीयता में है। वही बेटा इस बात से बिल्कुल बेखबर है कि मां रिटायर्ड हो चुकी है और उसके पास जीवनयापन का कोई अन्य मार्ग भी नहीं है। वही बेटा जब पूछता है कि, "तुम्हारी छुट्टी कब तक हैं ? 'छुट्टियाँ' ?अचकचाकर उसने दोहराया"[3] ।यह मध्यवर्गीय परिवार का एक सामाजिक यथार्थ है। जो अब तक अनकहा है। मां बाप अपने त्याग को अपना कर्तव्य समझकर निभाते हैं यही कारण है की बच्चे अपने दायित्व बोध से अनभिज्ञ हैं जाते हैं क्योंकि यही सबसे सुविधाजनक है ।शमशेर बहादुर सिंह ने इसी यथार्थ की व्याख्या की है, "सबसे बड़ा यथार्थ वह है जो हमारे अंदर है जिसे शब्दों में नहीं रखा जा सकता। वह तो शब्दों में आकर कभी -कभी बदल जाता है ,ग़लत हो जाता है , कभी कभी तो अपना मतलब ही खो देता है"4 उपभोक्तावादी संस्कृति में रहने के कारण वह अपने दायित्व- बोध, कर्तव्यबोध से पलायन करना उसे बेहद सुविधाजनक लगता है। उसे भौतिकता से जुड़े सभी सुख तो चाहिए पर आत्मीयता के कुछ क्षण भी वह अपनी माँ को नहीं दे पाता बल्कि अपनी निजता में खलल न पड़े। ऐसी प्राइवेसी की अपने और माँ के संबंधों के बीच में खड़ा कर देता। तभी तो उसे ना अपने खर्च किए हुए रुपयों का अंदाजा है और ना ही माँ के सेवानिवृत्त होने का बोध। वह पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित इस युग में केवल अपने सुख के लिए जी रहा है। भारतीय संस्कृति की विशेषता है कि सबके सुख में ही अपना सुख है। उसके लिए यह सब अर्थहीन बनकर रह गया है। यही कारण है कि मां परिस्थिति से तालमेल नहीं बिठा पा रही है। इस खोखलेपन से, इस शून्यता से, इस संवेदनहीनता से ,वह रात के सन्नाटे में भी भीतर के शोर को अनुभव कर पा रही थी। उसके अंदर की इतना शोर है जिसने उसकी आँखों से नींद को भी उड़ा दिया था। उस पर भी छत से पैर की चहलकदमी उसे स्पष्ट सुनाई दे रही थी। उसे शांत करने के लिए वह छत पर दस्तक देनी प्रारम्भ कर देती है। वस्तुवादी दृष्टि होने के परिणाम स्वरुप ही हमारे मानवीय संबंधों का अवमूल्यन होता जा रहा है। जहाँ एक ओर अमेरिका में वैभव के बीच अकेला पड़ा वह निस्सहाय बूढ़ा पुरुष , जिसे अब कोई नहीं चाहता और दूसरी तरफ भारत में भी भरे- पूरे पर अभावग्रस्त मध्यमवर्गीय परिवार में हाशिए पर पड़ी वह अधेड़ उम्र की विधवा स्त्री। बाकी सारे संसार के लिए दोनों की कोई उपादेयता

नहीं है, नगण्य मात्र है। पर हर रात उसकी चहल कदमी और नलिनी के ठक -ठक से ही उन्हें आत्मीयता अनुभव होती और दोनों सो जाते। दोनों के बीच यही छत की दस्तक का ही रिश्ता था। जिसमें उन्होंने अपनापन ढूंढ लिया। उसने सोचा भी की एक दिन जाकर मिल लेंगी । पर अचानक उसी रात छत की दस्तक की आवाज ना आयी। घबराहट में उसने अपार्टमेंट इमरजेंसी पर कॉल किया । दरवाजा खोलकर देखा रॉबर्ट घिसे- पिटे कालीन पर बेहोश पड़ा था। पश्चिमी संस्कृति के अनुसार वृद्ध व्यक्ति को वृद्धाश्रम में रहना चाहिए। जहाँ उसकी सेहत ,सुख -सुविधा का ध्यान रखा जाता है। पर उन चारदीवारी में अपनत्व ही तो नहीं मिलता। शायद इसी अपनेपन को ढूंढने की चाह में रॉबर्ट अकेले उस घर में रह रहा था। जहाँ उसका ध्यान रखने वाला कोई नहीं था। पर दोनों हाशिए पर पड़े लोगों में आपसी संपर्क था । तभी तो वह जब पर्स से निकाल कर अपने कंघे से मेज पर टक टक करती है तो वह तुरंत पहचान लेता है न-लि-नी यही तो है सामाजिक यथार्थ ,जिससे परिभाषित किया है लेखिका ने। मानव सदैव आत्मीयता ,प्रेम ,स्नेह , वात्सल्य की चाह में जीवन व्यतीत करना चाहता है। अपार सुख वैभव भी नितांत अकेलापन उसे बेबस कर देता है उसके जीने की इच्छा को कम कर देता। दूसरी तरफ हम भारतीय खोखलेपन को अपनाना चाहते हैं । क्योंकि वहाँ सांसारिक सुख तो सामने दिखाई देता है। जबकि भारतीय संस्कृति में कुटुम्ब की अपनी महत्ता है। यही कारण है कि भारत में आज भी वृद्धाश्रमों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता है।इस पूरी कहानी में नलिनी ही एक ऐसा पात्र है जो अपने मर्म की पीड़ा को पहचानती और दूसरे के भावों को भी पोषित करती है। माँ और बेटे के बीच एक अलग -सी खामोशी है या कहिये प्राइवेसी है । जिसके कारण वह अपनी शादी की बात को भी माँ से इस तरह कहता है, "मैं शादी कर रहा हूँ"। वह उठकर बैठ गई 'मुबारक' अमरीकन लड़की है"[5]

विवाह जैसे महत्वपूर्ण मुददे पर भी वह माँ की पसंद, उनकी इच्छा को कोई महत्व नहीं देता। ऐसा वह अकेला नहीं है। यह सब संक्रांत संस्कृति का प्रभाव है। जबकि भारतीय संस्कृति में विवाह संस्था सबसे सुदृढ़ है ।पर पाश्चात्य संस्कृति को ओढने, पहनने और अपनाने में भारतीय कहीं भी पीछे नहीं रह गए हैं। उसी तरह चर्च में शादी करना चाहते हैं। माँ बाप को केवल बता देना चाहते हैं। उन्हें उपभोक्तावादी संस्कृति ने जैसे ग्रस्त कर, मूल्यविहीन कर दिया है। नलिनी अब बेटे के विवाह की मंगलकामनाएं करने लगती है और सोचती है कि उससे पैसे मांगना तो नामुमकिन है। उसके पास थोड़े जेवर हैं जिन्हें बेचकर ,वह खाना बनाकर ,दफ्तरों में टिफिन भरकर भेजने का काम कर सकती है।वह उम्र की इस ढलान पर भी इस काम को ममत्व के कारण तत्पर हैं। इस तरह इस कहानी में नलिनी ही एक आदर्शवादी पात्र हैं। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के अनुसार, "आदर्शवाद हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय पवित्र होते हैं ,जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं ,जो साधु प्रवृत्ति के होते हैं यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार कुशल नहीं होते हैं, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है, लेकिन काइंयापन से ऊबे हुए प्राणियों तथा ऐसे सरल और ऐसे व्यवहारिक ज्ञानविहीन चरित्रों के दर्शन से एक विशेष आनंद मिलता है"[6] ऐसे चरित्र ही हमें जीवन जीने का मार्ग दिखाते हैं।

1. इस कहानी में लेखिका उस वर्ग से प्रत्यक्ष से जुड़ी हुई दिखाई देती है जो वैश्विक धरातल पर बदलते हुए युग बोध से प्रभावित होकर पश्चिमी देशों में रोजगार की आपा- धापी में गुजर बसर करने के लिए घर से निकल पड़ता है। जिसके कारण ये प्रभाव पड़ता है कि हम बिना सोचे समझे पूर्णतः अमेरिकन संस्कृति में ढल जाते है। समाज के उस वर्ग के यथार्थ को अपेक्षाकृत अधिक गहराई से देख समझकर पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। लेखिका ने नारी मनोविज्ञान को भी अच्छी तरह से समझा है, इसलिए नलिनी की मन की दुर्बलताओं, सफलताओं -असफलता को, पीड़ा और नितांत एकांत को बहुत ही अच्छे से चित्रित किया है। बदली हुई स्त्री की अस्मिता की पहचान से नलिनी के माध्यम से हमें परिचित करवाया है। इस तरह नारी की चिरपरिचित साया से उसे मुक्त कर नये रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है। बेटे के औपचारिक व्यवहार से माँ के कोमल अंतर्मन की कुंठा को हमारे सामने रखा है। उनकी कहानी कहने का तरीका, उसे संभालने ,संजोने का तरीका उनकी क्षमता का परिचय करवाता है ।साथ ही बेहद अपनेपन से आज की पीढ़ी के लिए एक उदाहरण बन कर पाठकों के सामने आई है।इस तरह लेखिका वैश्विक पटल पर अपने सांस्कृतिक मूल्यों के पक्ष में खड़ी हुई प्रतीत होती है। इसीलिए डॉ नगेंद्र के अनुसार, "साहित्य का मूल उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति होता है ,यहाँ यह कहना भी प्रासंगिक होगा कि साहित्य समाज का दर्पण होने के कारण एक ओर जहाँ समाज की तस्वीर दिखाता है ।वहीं दूसरी ओर समाज को दिशा देने का पथ-प्रदर्शक कर गुरु कर्तव्य भी निभाता है। यदि साहित्यकार या रचनाकार इन दोनों लक्ष्यों में सफल हो जाता है। तो यह उसके लिए सबसे बड़ी उपलब्धि होती हैं"[7] मृदुला गर्ग की इस कहानी ने हमें उस सच से परिचित करवाया है। जहाँ मानवीय संवेदना शून्य होती जा रही है। व्यक्ति निरंतर मूल्यों के विघटन के कारण उपभोक्तावादी संस्कृति का गुलाम बनता जा रहा है। आत्मीयता , निजता और संवेदना के स्थान पर अहम आ कर खड़ा हो गया है। मूल्यों का संत्रास और विघटन इतनी तेजी से हो रहा है कि संबंधों में अब प्राइवेसी आकर खड़ी हो गई है । इस शब्द का दायरा इतना बढ़ रहा है कि बाकी सब तो तुच्छ होता जा रहा ।कमाल की बात यह है कि यह शब्द ही भारतीय नहीं है। हमारे यहां तो सम्बन्ध प्रेम से पनपते हैं ।इसी के प्रति सजग करना लेखिका का कर्तव्य है, ताकि एक बार फिर से हम अपने विश्वास, विचारधाराओं और संवेदना के धरातल को परख सके।

****

संदर्भ सूची

1.मृदुला गर्ग, समागम, पृष्ठ 45

2. वहीं पृष्ठ 51

3.वही पृष्ठ 54

4. डॉ पूनम शर्मा,शोध दिशा, पृष्ठ 89

5.मृदुला गर्ग, समागम पृष्ठ 66

6. सुभाषिनी शर्मा , उपन्यासकार प्रेमचंद, पृष्ठ 69

7. पानेरी, जयदेव ,मृणाल पांडे के कथा साहित्य में यथार्थभिव्यक्ति डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू गूगल.कॉम

अमृतलाल नागर का 'महाकाल' उपन्यास : प्राकृतिक आपदा कोरोना के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

डॉ. बोबडे जयंत ज्ञानोबा
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग
श्री शिवाजी महाविद्यालय, परभनी

प्रास्तावना :-प्रेमचंदोत्तर हिंदी साहित्य को जिन साहित्यकारो ने अपनी रचनाओं से संवारा है, उनमें अमृतलाल नागर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है. किस्सागोई के धनी अमृतलाल नागर ने कई विधाओं से साहित्य को समृद्ध किया. अमृतलाल नागर ने कहानी और उपन्यास के अलावा नाटक, रेडियो नाटक, रिपोर्ताज, निबंध, संस्मरण, अनुवाद, बाल साहित्य आदि के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है. साहित्य जगत में उपन्यासकार के रूप में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त इस साहित्यकार का हास्य-व्यंग्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है. अमृतलाल नागर का जन्म एक गुजराती परिवार में १७ अगस्त, १९१६ ई. को गोकुलपुरा, आगरा, उत्तर प्रदेश में हुआ था. आगरा में इनकी ननिहाल थी. इनके पितामह पंडित शिवराम नागर १८९५ में लखनऊ आकर बस गए थे. पिता पंडित राजाराम नागर की मृत्यु के समय नागर जी सिर्फ १९ वर्ष के थे. पिता के असामयिक निधन के कारण जीवकोपार्जन का दबाव आन पड़ा और इस कारण अमृतलाल नागर की विधिवत शिक्षा हाईस्कूल तक ही हो पाई. विद्या के धुनी नागरजी ने निरंतर स्वाध्याय जारी रखा और साहित्य, इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों पर और हिंदी, गुजराती, मराठी, बांग्ला एवं अंग्रेजी आदि भाषाओं पर अधिकार हासिल कर लिया. रोजीरोटी के लिए अमृतलाल नागर ने एक छोटी सी नौकरी की और कुछ समय तक मुक्त लेखन एवं १९४५ से १९४७ ई. तक कोल्हापुर में हास्यरस के प्रसिद्ध पत्र 'चकल्लस' का संपादन किया. इसके बाद वे बंबई एवं मद्रास के फिल्म क्षेत्र में लेखन करने लगे. दिसंबर, १९५३ से मई, १९५६ तक वे आकाशवाणी, लखनऊ में ड्रामा, प्रोड्यूसर, रहे और उसके कुछ समय बाद स्वतंत्र रूप लेखन करने लगे. किस्सागोई में माहिर नागरजी के साहित्य का लक्ष्य साधारण नागरिक रहा. अपनी शुरुआती कहानियों में उन्होंने कहीं-कहीं स्वच्छंदतावादी भावुकता की झलक दी है. 'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' जैसे वर्तमान जीवन पर लिखित उपन्यासों में ही नहीं, 'एकदा नैमिषारण्ये' तथा 'मानस का हंस' जैसे पौराणिक-ऐतिहासिक पीठिका पर रचित सांस्कृतिक उपन्यासों में भी उन्होंने उत्पीड़कों का पर्दाफाश करने और उत्पीड़ितों का साथ देने का अपना व्रत बखूबी निभाया है. नागर जी की जिंदादिली और विनोदी वृत्ति उनकी कृतियों को कभी विषादपूर्ण नहीं बनने देती. 'नवाबी मसनद' और 'सेठ बांकेमल' में हास्य व्यंग्य की जो धारा प्रवाहित हुई है, वह अनंत धारा के रूप में उनके गंभीर उपन्यासों में भी विद्यमान है और विभिन्न चरित्रों एवं स्थितियों में बीच-बीच में प्रकट होकर पाठक को उल्लासित करती रहती है. महाकाल यह उनका महत्वपूर्ण उपन्यास है. इस उपन्यास की प्रसंगिकता को ध्यान में लेकर प्रस्तुत आलेख में प्राकृतिक आपदा और आजकी कोरोना आपदा को समानातर रुप में समिक्षनात्मक दृष्टी से विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है. जिससे नागर जी दरदृष्टि को रेखांकित किया गया है.

महत्वपूर्ण शब्द :-प्राकृतिकि, आपदा, परिप्रेक्ष्य, प्रासंगिकता, राजनितिक संबंध, अधोगति, अकाल, समकालीन, अकर्मण्यता, निर्बलता, पूंजीवादी, प्रतिबद्धता, उत्तरदायित्व, मध्यवर्ग आदि.

पध्दति :-प्रस्तुत शोधालेख को लिखने के लिए विवेचनात्मक तथा समिक्षनात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है. जिसमें 'महाकाल इस उपन्यास में चित्रित परिस्थितियों का जायजा लेकर समसामयिक परिस्थितियों का लेखाजोखा प्रस्तुत कर समकालीन कोरोना की विपदा के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है. इस विषय पर विदवानो द्वारा लिखे गए पुस्तकों, लेखों तथा सन्दर्भों का सहारा लिया गया है.

उद्देश्य :-अमृतलाल नागर के कृतित्व को उजागर करना.महाकाल उपन्यास में विश्लेषित परिस्थिति तथा पात्रों का विश्लेषण करना. समकालीन कोरोना की विपदा की भीषणता को विश्लेषित करना. प्राकृतिक आपदा की गंभीरता को विश्लेषित करना.
नागर जी की दूरदृष्टी को विश्लेषित करना. कोरोना के परिप्रेक्ष्य में महाकाल उपन्यास की प्रासंगिकता को विश्लेषित करना.

सार :-अमृतलाल नागर का यह प्रथम उपन्यास है. इस उपन्यास में बंगाल में १९४३ ई० में भीषण अकाल का यथार्थ और जीवंत चित्रण किया है. यह उपन्यास मध्यवर्गीय समाज की घृणा, पीड़ा, संघर्ष और आर्थिक विपन्नता का अंतर्द्वंद्व की यथार्थ करूण गाथा है. इस उपन्यास का नायक पाँचू हैं, जो शिक्षक है, इस उपन्यास में भूख के आगे विवश समाज कैसा रूप ले लेता है इसको दिखाया गया है. यह एक सामाजिक उपन्यास है. नागरजी ने इस उपन्यास में 'भूख' को मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी दुर्बलता के रूप में दिखाया है. इस उपन्यास का एक और नाम है और वो है- भूख. पाँचू एक आदर्शवादी और ईमानदार शिक्षक है. इस गाँव में अकाल पड़ जाने के कारण लोग भूख से तड़प रहे है. दाने-दाने के लिए लोग इधर-उधर भाग रहे है. मास्टर पाँचू को भी अपने पापी पेट को भरने की चिंता है. इस उपन्यास में भूख के कारण एक आदर्श और सच्चे शिक्षक का किस प्रकार इन सब चीजों से धीरे-धीरे मोहभंग हो जाता है. इस पर नागरजी गंभीरता पूर्वक दिखाया है. भूख के कारण पाँचू की सारे आदर्श और संस्कार धीरे-धीरे यथार्थ की कटुता से टकराकर भयानक रूप ले लेती है. भूख के कारण रिश्तों के बीच में दरार तो हो गई लेकिन इन रिश्तों के खोखलेपन भी दिख गया. अन्न के अभाव में लोग मर रहे हैं, चीख रहे है, चिला रहे है, लेकिन मदद के लिए कोई नहीं है. सब अपने स्वार्थ साधने में व्यस्त है. इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नागरजी अकाल के बहाने लोगों की इंसानियत को भी टटोलने का प्रयास किये है और उसमें वे सफल भी रहे. प्रस्तुत उपन्यास की यथार्थता के परिप्रेक्ष्य में २०२० में आयी प्राकृतिक आपदा कोरोना को ध्यान में लेकर इस उपन्यास का विश्लेषण नये सिरे से करने का प्रयास किया है.

अमृतलाल नागर सृजक के रूप में :-अमृतलाल नागर हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकारों में से एक थे. उन्होंने एक लेखक और पत्रकार के रूप में अपने करियर की शुरुआत की, लेकिन वे सात साल तक भारतीय फिल्म उद्योग में एक सक्रिय लेखक बने रहे. उन्होंने दिसंबर १९५३ और मई १९५६ के बीच ऑल इंडिया रेडियो में एक ड्रामा प्रोड्यूसर के रूप में काम किया. उन्होंने नाटक, रेडियोनाटक, रिपोर्ताज, निबन्ध, संस्मरण, अनुवाद, बाल साहित्य आदि के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है. उन्हें साहित्य जगत् में उपन्यासकार के रूप में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई तदापि उनका हास्य-व्यंग्य लेखन कम महत्वपूर्ण नहीं है. उन्होंने पहली बार दिसंबर १९२८ में पाक्षिक आनंद में एक कविता प्रकाशित की थी. यह कविता साइमन कमीशन के विरोध से प्रेरित थी जिसमें अमृतलाल को लाठी चार्ज के दौरान चोट लगी थी. अमृतलाल नागर एक लेखक और पत्रकार के रूप में अपने करियर की शुरुआत की,कुछ समय तक मुक्त लेखन एवं १९४० से १९४७ ई. तक कोल्हापुर में हास्यरस के प्रसिद्ध पत्र 'चकल्लस' के सम्पादन का कार्य किया. इसके बाद बम्बई एवं मद्रास के फ़िल्म क्षेत्र में लेखन का कार्य किया. उसके कुछ समय बाद स्वतंत्र लेखन का कार्य किया. उनके प्रमुख उपन्यासों में महाकाल से 'भूख' शीर्षक प्रकाशित

हुई, बूँद और समुद्र – १९५६ , शतरंज के मोहरे – १९५९, सुहाग के नुपूर – १९६०, अमृत और विष – १९६६, सात घूँघट वाला मुखड़ा –१९६८, एकदा नैमिषारण्ये –१९७२, मानस का हंस –१९७३ , नाच्यौ बहुत गोपाल –१९७८, खंजन नयन – १९८१, बिखरे तिनके –१९८२, अग्निगर्भा – १९८३, करवट –१९८५, पीढ़ियाँ –१९९० आदि. इसके आलावा भी कहानियाँ तथा अन्य विधाओं में उन्होंने योगदान दिया है. **अमृतलाल नागर की सामाजिक दृष्टी:-**अमृतलाल नागर सामाजिक जीवन के रचनाकार थे, इसलिए उनके साहित्य में समाज का जो रूप उभरकर आता है, वह आज के समाज के लिए बहुत ही उपयोगी है. आपसी स्वार्थ और मतभेदों की लड़ाई में पिसता मानव जीवन कब तक अधोगति को प्राप्त होता रहेगा, यह चिंता नागरजी के सम्पूर्ण साहित्य में ध्वनित होती है. वे व्यक्ति को समाज से और समाज को व्यक्ति से अलग करके देखने के अभ्यस्त नहीं हैं. उन्हें दोनों एक दूसरे के पूरक लगते हैं. उनके प्रसिद्ध उपन्यास नागरजी ने अपने उपन्यास 'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' में इन समस्याओं को बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है. 'अमृत और विष' उपन्यास में नागरजी स्वाधीनता आंदोलन के समय और आज के समय की राजनीति में अंतर करते हुये कहते हैं, 'सन् ४२ में हम लोग जेल क्या गये कि हमारा सारा नैतिक बल और सत्य के लिए हमारा साहस, संगठन और कर्मशूरता ही अंग्रेजों के साथ भारत छोड़ो नारे को मानकर चली गई. आजादी के बाद आया कूट, असंगठन, विलास, व्यभिचार, लूट, डाके, खून और काले बाजार का जमाना. " 'बूंद और समुद्र' उपन्यास में वे लिखते हैं, 'इतना बड़ा राजनैतिक आंदोलन और त्याग करने के बाद भी खास गांधी जी के चेले आर्थिक, सामाजिक आंदोलन चलाने के बजाय मखमली कुर्सियों और मातहतों हुज़ूर सरकार सुनने की लालच में बैठे रहे. स्वाधीनता आंदोलन और स्वाधीन भारत के राजनेताओं में जो अंतर है, वह नागरजी जैसे लेखक को बहुत सालता है. जिस त्याग और संयम को लेकर हम साम्राज्यवाद से टकरा रहे थे, वह अब सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया. चारों ओर एक अराजकता सी छा गई है. विकास पर छाई यह धुंध निरंतर फैलती जा रही है, जिसमें आदमी की चिंताएं ढक गई हैं. नागरजी अपनी चिंता को व्यक्त करते हुए लिखते हैं, 'जिस व्यक्ति की पीड़ाओं का सामूहिक रूप में दर्शन कर ये राजनीतिक सिद्धांत बने हैं, उसकी अनुभूति, उसकी तड़प अब हमारे मन से निकल गई है. हमारी नजर अब सिर्फ पोलिटिकल रह गई है, सिर्फ पोलिटिकल कोल्हू के बैल की तरह आदत के कारण चक्कर काटते चले जा रहे हैं, काम कुछ भी नहीं हो रहा. नागरजी सामाजिक जीवन के उपन्यासकार हैं, अतः स्पष्ट है कि उनके साहित्य में वर्णित घटनायें सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएं ही होंगी. जीवन परिचय और साहित्यिक संस्कार के अंतर्गत जिन महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है, उनमें यह स्पष्ट किया गया है कि पितामह, पिता और आगरा लखनऊ के संस्कार नागरजी को विशेषत्व से प्रभावित करते हैं. कम उम्र में विवाह और उसके बाद पूर्णतया लेखक बनने का निर्णय, नागरजी की सामाजिक प्रतिबद्धता और साहित्य के प्रति अटूट आस्था का परिचायक है. लेखक बनने के लिए वे हिंदी ही नहीं बंगला, गुजराती, मराठी और न जाने किस-किस भाषा के साहित्यकारों से मिलते घूमते रहे. यह घूमना तफरी के लिए नहीं था, वरन् वे उन सूत्रों की तलाश कर रहे थे, जिनके कारण वे लेखक अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण लेखक बन सके. उनके मन में यह बात विशेषत्व से घर कर गई थी कि यदि लेखक ही बनना है तो अपने क्षेत्र और अपनी भाषा का महत्त्वपूर्ण लेखक ही बनना चाहिये. प्रेमचंद से उन्होंने सामाजिक प्रतिबद्धता ली, निराला जी से फकड़पन और जीवन में फकीरी के सुखों को अपनाने की हिम्मत, शरत्चंद्र से नारी जीवन के करुण पक्षों को समझने और उन पर लिखने का साहस तथा अपने अनन्य मित्र डॉ. रामविलास शर्मा से अपनी बात पर दृढ़ रहने का साहस. इन सबके गुणों को लेकर नागरजी साहित्य के मैदान में निर्भय होकर कूद पड़े.

प्राकृतिक आपदा कोरोना के परिप्रेक्ष्य में 'महाकाल' की प्रासंगिकता :-नागरजी के उपन्यासों में सामाजिकता का जो स्वरूप उभरकर आता है, वह शोषणविहीन समाज की संरचना का है. अपने पहले उपन्यास 'महाकाल' में वे भूख से बिलबिलाती जनता के मुंह की रोटी छीनने वाले जमींदार और साहूकार की कुटिलताओं और उनकी दुष्टताओं को उजागर करते हैं. बंगाल में अकाल पर लिखा गया उनका यह उपन्यास उस समय की दयनीय स्थिति के साथ शोषणकारी शक्तियों की जन-विरोधी नीतियों को भी स्पष्ट करता है. अब तो यह स्पष्ट हो गया है कि बंगाल के अकाल के समय अनाज आदि जीवनोपयोगी वस्तुओं की उतनी कमी नहीं थी, जितनी कि जमींदार और साहूकार ने बना दी थी. कोरोना वायरस संक्रमण के कुछ इक्के-दुक्के मामले सबसे पहले चीन में सामने आए और उसके कुछ माह बाद ही देखते-देखते इसने वैश्विक महामारी का रूप धारण कर लिया. इस महामारी के कारण वैश्वीकृत दुनिया की एक दूसरे के साथ मजबूती से जुड़ी हुई प्रणालियां पूरी तरह से बदल गई है. इस वायरस के प्रकोप पर काबू करने के प्रयास के तौर पर अलग-अलग देशों की सरकारों ने आने-जाने तथा सामाजिक मेल-जोल पर बंदिशें लगा दी जिसके कारण दुनिया की ७.८ बिलियन की आबादी में से एक तिहाई से अधिक आबादी इस समय इस महामारी के कारण एक तरह से अपने घरों में बंद रहने को मजबूर है. कोरोना के दरिमियाँ भी यही हुआ एक ओर लौकडाउन तो दूसरी ओर दूकानदार ग्राहकों से दुगनी कीमत में वस्तु बेचने का घटियो काम कर रहे थे. वस्तु बेचने का यह सिलसिला गरीबों के जीवन को झकझोर देता है. जीवन जीने की अनिश्चितता मनुष्य प्रत्येक दिन पर अनुभव कर रहा था. ऐसे में व्यापारियों के द्वारा ऐसे व्यवहार करना गैर मानवीय था. एक तरफ नागर जी के उपन्यासों में उच्च वर्ग बहुत कम मात्रा में है. जहां गरीबी के कारणों और उनके नियामकों को जनता के सामने नंगा करने की स्थिति बनती है, वहां वे उच्च-वर्ग के पात्रों की क्षुद्र-वृत्ति का वर्णन करते हैं. इस वर्णन में उनकी घृणा भी सम्मिलित होती है. अपने उपन्यास 'महाकाल' में वे दयाल जमींदार और मोनाई महाजन को महाकाल के समय में भी दुष्टता करते दिखाते हैं और बताते हैं कि महाकाल के ईश्वरीय कारण जो भी रहे हों, लेकिन मानवी कारण भी कम नहीं है जो मोनाई और दयाल जैसे नर-पिशाचों की देन हैं. यह अकाल उतना प्रकृतिजन्य नहीं था, जितना मनुष्य-निर्मित. कोरोना के दरमियान ऐसा ही अनुभव मिला. जन्हा एक ओर मृत्यु से जूझने वाला सामान्य मनुष्य और दूसरी ओर इस समय का गैरजिम्मेदाराना फायदा उठानेवाले व्यापारी तथा वैद्यकीय क्षेत्र के गिनेचुने लोग. जब मजदूर, किसान, दलित वर्ग रोटी के लिए अपना ईमान धर्म तक ताक पर रखने के लिए विवश थे, तब व्यवसायी और सामंत अपनी तिजोरियां भरने में लगे हुए थे. बड़े बड़े शहरों में गरीबों के हाथ के लिए काम नहीं था. परिणाम लाखो लोगों ने एक समय का खाना खाकर गुजारा किया. कई लाख लोग एक शहर से दुसरे शहर को जाने के लिए गाडी न मिलने के कारण पैदल जा रहे थे. दुनिया में यह सब पहली बार हो रहा था. हमारा सामाजिक परिवेश कितना गंदा और लिललिजा है, इसमें खुलकर सांस लेना भी असंभव हो गया है. 'महाकाल' उपन्यास का पांचू गोपाल मुखर्जी मध्यवर्गीय पात्र है. इस उपन्यास के द्वारा नागरज ने महाकाल के समय समाज की स्थिति व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण और जीवन जीने की अदम्य इच्छा शक्ति को व्यापक फलक पर उभारा है.जो कोरोना आपदा के साथ प्रासंगिक दिखाई देता है. उपन्यास बंगाल के छोटे से गांव मोहनपुर की कथा कहता है, जिसमें ऐंग्लो बंगाली स्कूल का अध्यापक पांचू गोपाल मुखर्जी सारी विपत्तियों के बावजूद अपने परिवार का जैसे-तैसे भरण-पोषण कर रहा है, लेकिन एक दिन उसे लगता है कि अब वह अधिक दिन और इस नारकीय जीवन में नहीं रह सकता. इसलिए घर से भाग

जाता है. जंगल में उसे एक मृत महिला के वक्ष से जीवित बालक चिपटा दिखाई देता है. उसका मन एकदम बदल जाता है. उसमें जीवन के प्रति अदम्य लालसा उत्पन्न हो जाती है. वर्तमान समय के कोरोना ने भी हमें जीवन जीने के लिए प्रेरणा दी है ऐसा हम कह सकते है. वह निर्णय लेता है कि अब घर लौट चले. बच्चे को साथ लेकर अब वह इस बच्चे के लिए जियेगा. वह सोचता है- 'घर से भाग आना मेरी कायरता है. मैं अपने कर्त्तव्य से भाग आया, भूख शर्म की बात नहीं, सबको लगती है. अपनी पत्नी मंगला को बच्चे को देते हुए वह कहता है, जो होना था, वह हो गया. अब इसे संभालो, इसे बचाओ, इसे बचाने के लिए हम तुम जियेंगे. जंगल में मिला बच्चा पांचू गोपाल की जिजीविषा का कारण बनता है. उसे लगता है कि यह बच्चा जीवित रहेगा तो संतति का विकास होगा. संकट से जूझ-जूझकर हारे-थके, पलायन कर चुके पांचू के लिए जीवन-संघर्ष में लौट आना मायने रखता है. जिन स्थितियों में उसने पलायन किया था, वे स्थिति सिर्फ अपने वर्तमान के जीने तक की थीं, लेकिन लौटते समय की स्थितियों में उसकी चिंता भविष्य को जीवित रखने की है. हम सबको अपने-अपने घरों में बंद रखने वाला यह वायरस जो सरकार के साथ, बाहर की दुनिया के साथ और यहां तक कि एक दूसरे के साथ हमारे संबंधों को बदल रहा है हो सकता है कि यह महीनों तक रहे. आने वाले महीनों और सालों के दौरान हम जो परिवर्तन महसूस करेंगे उनसे हम अपरिचित हो सकते हैं और ये परिवर्तन हमारे लिए मुश्किल हो सकते हैं. क्या विभिन्न देश बंद रहेंगे? क्या स्पर्श वर्जित हो जाएगा? रेस्तरांओं और यात्राओं का क्या होगा? स्वास्थ्य क्लबों में किस व्यवहार का प्रदर्शन किया जाएगा? वैसे रेस्तरां स्थाई तौर पर बंद हो सकते हैं जहां लोग बैठकर खाना खाते हैं क्योंकि वहां कम संख्या में लोग जाएंगे. यह संभव है कि दुनिया भर में ऐसे रेस्तरां कम हो जाएं. पांचू की आस्था आदि सामाजिक जीवन में असंख्य बुराई होने के बाद भी उसमें परिवर्तन के प्रति विश्वास जगाती है. यही विशेषता इस उपन्यास को जिजीविषा से जोड़ती है और मध्यवर्ग की अदम्य जीवनेच्छा का प्रतीक बनती है.

आज इस बात को लेकर आम सहमति है कि अगले डेढ़ से दो साल तक पूरी दुनिया किसी न किसी रूप से संभवतः कोविड के तात्कालिक खतरे से ही जूझती रहेगी और उसके बाद भी पुनर्निर्माण और इसके स्थाई प्रभाव निःसंदेह कई वर्षों तक महसूस किए जाते रहेंगे. दुनिया के कई हिस्सों में, सीमाएं बंद हैं, हवाई अड्डे, होटल और व्यवसाय बंद हैं, और शैक्षणिक संस्थान बंद हैं. ये अभूतपूर्व उपाय कुछ समाजों के सामाजिक ताने-बाने को तोड़ रहे हैं और कई अर्थव्यवस्थाओं को बाधित कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर लोगों की नौकरियां छूट रही है और व्यापक पैमाने पर भूख की छाया बढ़ रही है.जैसे-जैसे यह महामारी दुनिया में बंद की स्थिति पैदा कर रही है वैसे-वैसे दो समान पहलू उभर रहे हैं. पहला तो यह कि यह सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल है जिसके दो साल तक जारी रहने की संभावना है. जब तक इसकी वैक्सीन विकसित नहीं होगी तब तक यह वायरस एक खतरा बना रहेगा क्योंकि अलग-अलग देश इस वायरस के नए संक्रमणों के चक्र पर काबू पाने के लिए संघर्ष करते रहेंगे और इस तरह से उनकी स्वास्थ्य प्रणालियों पर दवाब बना रहेगा. वैक्सीन के विकास, इसके उत्पादन और न्यायसंगत वितरण की बाधाओं को दूर करने के लिए सामूहिक प्रयास की भी आवश्यकता है. गहन चिकित्सा की आवश्यकता वाले तेजी से बढ़ रहे रोगियों का इलाज करने के लिए मास्क से लेकर वेंटिलेटर तक की जरूरी सामानों के उत्पादन एवं उनकी आपूर्ति के लिए अंतर्राष्ट्रीय आपूर्ति श्रृंखलाओं को युद्ध स्तर पर तैयार रखा जाना चाहिए.

बहुत से लोग जब पीछे मुड़कर देखेंगे तो पाएंगे कि उनके जीवन की कई चीजें बदल गईहमारे जीवन में बहुत कुछ आदतन है और हमारी ये आदतें हमें काम करने में, हमारे परिवार की देखभाल करने में और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में काफी प्रभावी तरीके से मदद करती हैं. इस व्यवस्था को जब झटका लगता है तो हमारी आदतें बदलती हैं. लोगों के काम करने एवं आने-जाने के तौर-तरीके बदल जाते हैं, उनकी रोजमर्रे की दिनचर्या और उनके जीवन की लय बदल जाती है. उनके खाने-पीने और अपने परिवार के साथ संवाद करने के तरीके बदल जाते हैं. जब लोग चीजों को अलग तरीके से करने को मजबूर होते हैं तो नई आदतें जन्म लेने लगती हैं.

निष्कर्ष :-

निष्कर्षत: हम कह सकते है की प्राकृतिक आपदा कौनसी भी हो उसमें मनुष्य ही प्रभावित होता रहा है, चाहे महाकाल हो चाहे कोरोना मनुष्य ने अपने आपको प्रकृति के अनुरूप ढालने का काम किया है. महाकाल के पांचू का संघर्ष प्रकृति के साथ साथ दुकानदारो, व्यापारियों तथा पूंजीवादियों के साथ था परन्तु वर्तमान परिवेश में प्राकृतिक आपदा के साथ अनेक स्तरों पर मनुष्य लड़ रहा है. महाकाल का चित्रण आज के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है. आखिरकार संघर्ष ही केंद्रबिंदु में है. संघर्ष करना मनुष्य का सदियों का प्राकृतिक गुण है. अमृतलालजी मनुष्य के कालजयी संघर्ष को चित्रित किया है. यद्यपि महाकाल यह उपन्यास आजादी के बाद कुछ ही वर्षो में लिखा गया हो लेकिन यह उपन्यास आज ही प्रासंगीक लगता है.

****

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. महाकाल : अमृतलाल नागर
2. हिंदी उपन्यास : डॉ.शिवनारायण श्रीवास्तव
3. आस्था और सौंदर्य : डॉ. रामविलास शर्मा
4. www.hindisahitya.com
5. www.gadyakosh.com
6. www.hindinotes.com
7. www.liturateinhindi.com

हिंदी कहानी में चर्चित वृद्ध समस्याएँ

डॉ. एन.लावण्या
सहायक प्राध्यापिका एवं विभागाध्यक्ष
एतिराज़ महिला महाविद्यालय चेन्नई - 600008 मो - 9551781799

कथाएं अपने समय को शब्द देते हैं,काल का प्रतिनिधित्व करती हैं। काल विशेष की समस्याएं कहानियों का विषय बनते हैं, कालान्तर में ये सामाजिक परिवर्तन का कारण बनतीं हैं जब किसी एक समस्या को लेकर कई लोग देखने लगते हैं तब विशेष विमर्श का नामकरण होता है। जैसे- दलित विमर्श,जनजातीय विमर्श, स्त्री विमर्श, विकलांग विमर्श आदि-आदि। परिणामस्वरूप उनकी स्थिति में व्यापक परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। विश्व की लगभग आधी आबादी की विभिन्न समस्याओं ने समकालीन कथा साहित्य में अपना स्थान बनाया है। वृद्धजन की पहली समस्या है शारीरिक अक्षमता,उम्र बढ़ने के साथ इस मरणधर्मा देह की कार्य क्षमता घटती जाती है। यौवन काल की अपनी शक्तियों को याद करके उनका हृदय अंदर ही अंदर आकुल व्याकुल रहता है। हिंदी साहित्य में ऐसी बहुत सारे कहानियां है जो वृद्धावस्था की समस्याओं पर केंद्रित है। प्रस्तुत लेख में मैंने हिंदी कहानी साहित्य में चर्चित वृद्ध समस्याओं पर आधारित है।

बीज शब्द - वृद्ध अवस्था , समस्याएं , समकालीन कहानियां , तनाव ग्रस्त जीवन, परिवार से प्यार न पाना ,

एक मनुष्य के जीवन काल को चार अवस्थाओं में बाँट सकते हैं – शैशवावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। वृद्ध जीवन के अतिरिक्त अन्य सभी अवस्था में वह अपना काम खुद कर सकता है और परिवार की भी देखभाल कर सकता है। इसलिए सभी लोग उन्हें भी पसन्द करते हैं और उनका आदर भी करते हैं। लेकिन वृद्धावस्था में पहुंचते ही मनुष्य को दूसरों की सहायता अनिवार्य होता है। ऐसी हालत में कुछ दिनों के बाद लोग उन्हें नफरत करते हैं। धीरे धीरे वह समाज से तथा परिवार से अन्य और अकेला बन जाता है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका के अनुसार Old Age also called senescence in human beings, the final stage of the normal life span. इस अवस्था को मनुष्य जीवन का आखिरी पायदान कह सकते हैं। वार्धक्य में आते ही शारीरिक तथा मानसिक क्षमताएं विकट होने लगती हैं। वृद्धावस्था को एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे संपूर्ण शारीरिक क्षमताओं में उत्तरोत्तर कमी से आंका जाता है। दरअसल, हमारे समाज में बुढ़ापा जिसे आमतौर पर निष्क्रियता, शिथिलता की शारीरिक दशा समझ कर बहुत काम की चीज नहीं समझा जाता है। परंतु वे बचपन से लेकर जवानी तक के जीवनानुभवों का कोश होता है- ऐसा प्रकाश पुंज होता है, जिसके आलोक में युवा पीढ़ी अपने वर्तमान को संवारते हुए भविष्य का शृंगार कर सकती है। यही कारण रहा है कि प्राचीन और पाश्चात्य दोनों परंपराओं में वृद्ध या वृद्धावस्था के प्रति सम्मानजनक भाव रहा है। इतिहास और साहित्य, दोनों ही इस तथ्य के साक्षी हैं कि बूढ़े-बुजुर्गों के अनुभवों-परामर्शों से लाभ उठाने वाली युवा पीढ़ी ही नव-निर्माण कर पाती है, जबकि इसके विपरीत मार्ग पर चलने वाली युवा शक्ति विध्वंस की वीरानगी छोड़ जाती है। इसके प्रमाणस्वरूप हम 'महाभारत' और 'रामायण' की कथाओं को देख सकते हैं।

हमारे प्राचीन धार्मिक महाकाव्य महाभारत' में एक तरफ भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर जैसे तपे-तपाए, अनुभव-सिद्ध ज्ञानी, तत्वेता की जमात है, तो दूसरी तरफ जवानी की शक्ति और जोश से बरसाती पानी से उफनती नदियों की तरह दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण आदि जैसे युवकों की जमात। वृद्धों, बुजुर्गों की मंडली ने युवा कौरव मंडली को बहुत समझाया कि पांडवों से युद्ध करने में अहित ही अहित है, अहंकार में दुर्योधन और उसके सहायकों ने बुजुर्गों के परामर्श को ठेंगा दिखाते हुए अंतत: युद्ध का मार्ग अपनाया। परिणाम यह हुआ कि महाविनाश- न वृद्ध बचे, न जवान- बचे सिर्फ पांच भाई पांडव और बेशुमार विधवाओं का चहुंओर विलाप। यही नहीं, इच्छा मृत्यु का वरदान पाए हुए भीष्म पितामह का महत्त्व तब अधिक उत्कृष्ट रूप में उभरता है, जब वे मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए अपने अनुभवों के आधार पर युधिष्ठिर को नीति, शांति, अहिंसा, राजधर्म आदि के संबंध में उपयोगी उपदेश देते हैं, जिन्हें युधिष्ठिर पार्थ स्वरूप अंगीकार करते हुए अपने राजधर्म का निर्वाह करते हैं।

महाभारत के विपरीत 'रामायण' में हम देखते हैं कि राम ने वृद्ध पिता की आज्ञा का सम्मान करते हुए वनवास स्वीकार किया। ऐसा करके राम ने अपने परिवार को कलह और विघटन से बचाया, तो दूसरी तरफ अत्याचारियों का दमन कर सार्वजनिक हित के कार्य संपन्न किए। इसी रामकथा का एक पात्र श्रवण कुमार अपने वृद्ध माता -पिता की अनन्य सेवा करके आदर्श पुत्र का प्रतिमान रच गया। हमारे यहां की पौराणिक तथा लोक-कथाओं में ऋषि-मुनियों, साधु-संतों से संबंधित जो कथाएं मिलती हैं उनसे ज्ञात होता है कि उन सबने कठिन तपस्या, साधना करते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त किया था, जहां पहुंच कर वे लोक, समाज और राज्य के नियमन तथा संचालन हेतु नीतियों का प्रतिपादन करने में सक्षम हो पाते थे। तबके राजा या शासक उन ऋषि सेवित तपोवनों में जाकर उनसे राजधर्म, लोकधर्म के निमित्त नीति निर्देशक तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर अपने राजकीय दायित्वों का निष्पादन करते थे। 'पंचतंत्र' की कहानियों से पता चलता है कि वृद्ध, अनुभवी विष्णु शर्मा ने अपने अनुभवों के आधार पर पशु-पक्षियों की कहानियों का वाचन कर राजा के मूढ़ राजकुमारों को बुद्धिमान और व्यवहार कुशल बना दिया ।भारतीय इतिहास यह भी बताता है कि वृद्ध चाणक्य के साथ मिल कर युवा चंद्रगुप्त ने स्वेच्छाचारी नंद के कुशासन का अंत कर दिया। सिद्धार्थ ने जीवन की चरितार्थता की खोज में अपनी जवानी खपा दी, तब जाकर वे 'बुद्ध' बन सके। बीसवीं सदी ने भी देखा कि कैसे लाठी टेक कर चलने वाले बूढ़े महात्मा गांधी के नेतृत्व में संगठित होकर पूरे देश ने अहिंसा के मार्ग को अपनाकर पराधीनता के जुए को उतार फेंका। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि अब तक का मानव-विकास बुढ़ापे से प्राप्त पाथेय-पोषण का ही परिणाम है- इस सत्य को नकारने वाली युवा शक्ति आत्मघाती दिशा में ही प्रयाण कर सकती है।

दरअसल, देखा जाए तो वृद्ध और युवा, जिसे पुराना और नया भी कह सकते हैं, के बीच जो संबंध रहा है वह परस्पर संवाद का रहा है। वृद्धावस्था को परंपरा और युवावस्था को प्रगति मानें तो परंपरा से सकारात्मक पाथेय ग्रहण करके ही प्रगति सही दिशा प्राप्त करती है। युवा या नए के जोश में पुराने को पूरी तरह नकारना तात्कालिक दृष्टि से राजनीतिक-सामाजिक आंदोलनों में कुछ हद तक अपेक्षित हो सकता है, पर साहित्य के क्षेत्र में वह वांछनीय नहीं होता। साहित्य में वृद्ध और युवा या फिर पुराने-नए का जो परिदृश्य होता है वह आमने-सामने अवस्थित दो विरोधी शिविरों के बजाय पूर्वापर संबंधों के सह-अस्तित्व का होता है। नया रचने के उपक्रम में युवा या नए रचनाकार पुराने अनुभवों का पुन: सृजन करते हैं, बदलते युग-संदर्भ में उन्हें नवीकृत करते हैं। बूढ़ों या पुराने के अनुभवों से बहुत कुछ श्रेष्ठ, सकारात्मक मूल्यों को आत्मसात करके प्रकट होने वाली

रचनाशीलता ही भविष्य की दीपशिखा प्रज्जवलित करने में सक्षम होती है। तभी तो अंग्रेजी की आधुनिक नई समीक्षा के पुरोधा टीएस इलियट भी होमर से लेकर वर्तमान तक चली आ रही परंपराओं में स्नात होने की बात करते हैं। जहां तक भारत की बात है, यहां पुरातनता या वृद्धावस्था का अनादर नहीं किया गया। तभी तो आज का भी भारतीय मानस और चित्त जितना आधुनिक युग में जीता है, उतना ही वह अपनी पूजा-उपासना की विधियों, विविध रीति-रिवाजों आदि के जरिए बहुत कुछ पुरातन काल से भी जीवंतता प्राप्त करता है और यह सब उसका दोष नहीं, खूबी है। पुरानी मसल है- 'पुराना चावल ही पथ्य के काम आता है।' गांवों में बुखार ग्रस्त व्यक्ति को बुखार उतरने पर सुपाच्य आहार के रूप में पुराने चावल का ही भात दिया जाता था और इस चावल को बड़े जतन से संभाल कर रखा जाता था। आज की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं, असीम इंद्रिय-सुख की चाहत से बीमार होती जा रही मानव-आत्माओं को वाल्मीकि-व्यास से लेकर अब तक के मानवतावादी साहित्य तथा वृद्ध समझे जाने वाले लोगों से नाता जोड़ कर ही नीरोग किया जा सकता है। साथ ही आज के वृद्धों का दायित्व बनता है कि वे अपने अनुभवों के उजाले से युवा-पीढ़ी का प्रगति-पथ आलोकित करें।

जीवन सुरक्षा और संरक्षण पाने और देने के प्रयासों में बीत जाता है और सांध्य बेला में आकर हम पाते हैं कि सब कुछ बंद मुट्ठियों से फिसल चुका है। यह प्रावधान भी है, नियम भी और नियति भी। बुढ़ापा जीवन की प्रत्येक उत्पाद्य शक्ति सोख लेता है। भारतीय धर्म और दर्शन (मनुस्मृति) संन्यास और वानप्रस्थ के भूमंडलीकरण को जब महत्व देता है, तो सारी आचार संहिता स्पष्ट हो जाती है। जिंदगी भर मरते-खपते रहो, कमाते-जोड़ते रहो, संजोते- बनाते रहो, दूसरों के लिए हर पल क्रियाशील रहो और जीवन के अंतिम दिनों में इंद्रियों के दुर्बल और निष्क्रिय पड़ जाने पर जंगलों में ठेल दिए जाओ। निःसंदेह दीर्घ जीवन दीर्घ अभिशाप का ही पर्याय है।

हिन्दी कहानी में वृद्धों की समस्याओं को अनेक परिप्रेक्ष्यों में चित्रित किया गया है। परिवार में वृद्ध/वृद्धाओं की अवमूल्यित स्थिति का चित्रण अनेक संदर्भों में मिलता है। वृद्धों की जायदाद हड़पने का रिवाज इस देश में नया नहीं है। इस विसंगति पर कहानी यात्रा के आरम्भिक दिनों में कई कहानियों में वृद्धों की समस्या को निरूपित किया गया है। प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' की वृद्धा के लिए जिव्हा स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी ।समस्त इंद्रिया- नेत्र , हाथ और पैर जवाब दे चुके थे ।पृथ्वी पर पड़ी रहती थीं ।घरवाले उनके खाने – पीने के समय का ध्यान नहीं रखते थे।और चीजों के प्रति वे उतना आकर्षण या तीव्रता नहीं जताती थी। मगर भोजन का समय टल जाता या उसका पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो ये रोने लगती। उनका रोना – सिसकना साधारण रोना न था, वे गला फाड़ – फाड़कर रोती थी । बूढ़ी काकी कहानी के बुद्धिराम और रूपा का विचार है कि बूढ़ी काकी का काम ही उत्पात मचाना है। समस्या न काकी के स्वास्थ्य की है, न उसके पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन की, समस्या उसकी स्वादेंद्रिय की है। इस समस्या का जन्म उसी दिन हो गया था, जिस दिन इस अमीर विधवा बुढ़िया ने बेटों की मृत्यु के बाद सारी जायदाद भतीजे बुद्धिराम के नाम लिख दी थी।

संपत्ति हस्तांणतरणोंपरान्त मूल जैविक जरूरतें यानी भोजन भी समस्या बन जाता है। वे फालतू तो हैं ही, उनसे पागलों सा व्यवहार भी किया जाता है। बेटा बहू अपमानित करते हैं और बच्चे चुटकियां काटते हैं, उन पर पानी की कुल्ली कर देते हैं। काकी सिर्फ गालियां दे सकती है, कृपाण सी जिह्वा चला सकती है या आर्त्तनाद कर सकती है, बिलख-बिलख कर रो सकती है। काकी की संपत्ति हड़प कर उसी से घर में पोते का तिलक समारोह हो सकता है, शहनाइयां बज सकती हैं, भाट विरदावलियां गा सकते हैं, मेहमानों की सेवा एवं आव-भगत के लिए नाई बुलाए जा सकते हैं, हलवाइयों से तरह-तरह के पकवान एवं पूरियां बनवाई जा सकती हैं। भूखे कुत्ते की तरह काकी पोते के संस्कार समारोह में हलवाई के पास क्या आ बैठती है कि बहू भरी सभा में अपमानित करती है। बुद्धिराम घसीटते हुए कोठरी में पटक आता है। कारण- 'जिसकी कोठी दाने उसके कमले (मंदबुद्धि) भी सयाने।' इसी कारण यह क्षुधातुर, हतज्ञान बुढ़िया कूड़े से जूठन बीन कर खाने को अभिशप्त है। प्रेमचन्द ने भी बार-बार बूढ़ी काकी की स्वादेंद्रिय की बात कर उसके साथ न्याय नहीं किया। जैसे- बुढ़ापा तृष्णारोग का अंतिम समय है, जब सम्पूर्ण इच्छाएं एक ही केन्द्र पर आ लगती हैं।

संपूर्ण परिवार मे यदि काकी से किसी को अनुराग था तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाड़ली थी ।लाड़ली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई – चबैना बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाया करती थी।यही उसका रक्षागार था।कई बार काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत महंगी पड़ती थी , तथापि भाइयों के अन्याय से सुरक्षा कहीं सुलभ थी तो बस यहीं ।इसी स्वार्थानुकूलता ने उन दोनों में सहानुभूति का आरोपण कर दिया था। वैसे भी बच्चे अपने बुजुर्ग अर्थात नाना – नानी , दादा – दादी ,या अन्य कोई बुजुर्ग जो उनके प्यार का, दैनिक प्रवृत्तियों का तथा उनके खेल का सहभागी हो , उन्हें बहुत प्रिय होता है और अन्य किसी के अधिकार से पहले वे उनपर अपना अधिकार समझते है तथा उससे बहुत प्यार करते है।

बुजुर्गों और बच्चों की अक्सर आपस में खूब बनती है। मां-बाप के कटु अनुशासन और बड़े भाई-बहनों की मारपीट से छुटकारा दादा-दादी, नाना-नानी ही दिलाते हैं। वे बच्चों के लिए मित्र और सलाहकार की भूमिका निभाते हैं। बुजुर्ग बच्चों को शिष्टाचार, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों से परिचित कराते हैं। उन्हें पारिवारिक इतिहास से अवगत कराते हैं। उनके मानसिक विकास में सहायक बनते हैं और हमारे प्रवासी भारतीय बच्चों को इसकी बहुत जरूरत है।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी की वृद्धा शामनाथ की माँ है ।शामनाथ अपनी तरक्की के लिए माँ को जरिया बनाता है । माँ वृद्ध हैं बाल बिखरे है, आँखों से धुंधला दिखाई देता है, कानों से सुनाई नहीं देता । रात – दिन माला जपती रहती है और प्रभु के नाम का रटन करती है। तीर्थ यात्रा पर जाने की इच्छुक माँ मन की अभिलाषा व्यक्त नहीं कर पाती है ।.बेटे की तरक्की के लिए लोकगीत गाकर चीफ को खुश करती है। फुलकारी के काम में निपुण माँ ,आँखों से कम दिखाई देने पर भी बेटे की तरक्की के लिए चीफ को फुलकारी बना देने के लिए तैयार हो जाती है ।.आज मनुष्य बहुत स्वार्थी हो गया है।. समर्थ होने पर भी बूढ़े माँ – बाप उसे बोझ लगते है। पाश्चात्य सभ्यता की अंधी दौड़ में वह अपने कर्तव्य और संस्कारों को भूलता जा रहा है। जो माँ शामनाथ को हीन,तुच्छ और हँसी का पात्र प्रतीत होती थी, जिसको व्यवहार कुशलता और आधुनिकता का ज्ञान नहीं था। वही माँ अंत में चीफ की दावत में चार चाँद लगा देती है और उसकी फुलकारी ही उसकी पदोन्नति का रास्ता खोल देती है. मन्नू भंडारी की 'अकेली' कहानी की सोमा बुआ अकेली है, वृद्ध है।पति छोड़कर चले गए है । पुत्र की मौत और पति के हरिद्वार चले जाने के पश्चात सोमा बुआ अकेली रह जाती है। उनके पति वर्ष के ग्यारह महीने हरिद्वार में और सिर्फ एक महीना अपने घर में बीतता था। इस एक महीने में वे बुआ से दो मीठे बोल भी नहीं बोलते थे । इसके बजाय उन्हें अलग – अलग कारणों से दिन भर डांटते रहते थे। अतः वह अपने आपको समाज को सौंप देती है अर्थात सामाजिक कामों में अपना मन रमा लेती है।पति के न होने पर बुआ आस - पड़ोस के लोगों के भरोसे अपना समय काट लेती थी। किसी के घर कोई भी कार्य वे करती,उनकी रोक – टोक पर वे कहतीं :– 'इन्हें तो नाते – रिश्तेवालों से कुछ लेना – देना है नहीं ,पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है .' हमारे समाज में सोमा बुआ जैसी वृद्ध

महिला भी है जो अपने तनाव भरे जीवन से परे होकर सामाजिक जीवन की ओर अग्रसर होती है।

उषा प्रियंवदा की वापसी वृद्ध पुरुषों का दर्द प्रस्तुत करने वाली प्रथम सशक्त कहानी है। पैंतीस साल परिवार का पोषण करने वाले, स्वयं छोटे-छोटे स्टेशनों पर रहकर उनके लिए शहर में हर सुविधा जुटाने वाले गजाधर बाबू को रिटायरमेंट के बाद कमाने वाले पुत्र से लेकर पढ़ने वाले पुत्र तक, बेटी से लेकर बहू तक, यहाँ तक कि पत्नी भी परिवार का हिस्सा मानने से इनकार कर देती है। उनके आने से हंसते-खेलते परिवार में शोक की लहर सी दौड़ जाती है। उनके लिए न घर में जगह है, न दिलों में। रोक-टोक तो बर्दाश्त से बाहर है। बड़े बेटे अमर का सिहांसन हिल जाता है। कहता है- बूढ़े आदमी हैं, चुपचाप पड़े रहें, हर चीज मे दखल क्यों देते हैं।वह अलग होने की सोचता है । नरेन्द्र पढ़ाई की दुहाई देता है। बसंती मुंह लपेटे पड़ी रहती है। पत्नी के पास सिर्फ शिकायतें हैं। इतना फालतूपन, इतनी असंगति, इतना व्यर्थता बोध-मानो कल तक धनोपार्जन का आधार गजाधर बाबू फालतू सामान में बदल जाते हैं। उनकी स्थिति की प्रतीक उनकी चारपाई है, जो कभी ड्राईंग रूम और कभी रजाइयों, अचार के मर्तबानों के बीच पहुंच जाती है। बाजारवादी, उपयोगितावादी सोच ने रिश्तों का कायाकल्प कर दिया है। चन्द्रकिशोर जायसवाल की मानबोध बाबू में गाड़ी में मिले दो बुजुर्ग यात्रियों के संदर्भ में वृद्धों की पारिवारिक - सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। जायदाद वाले वृद्ध अगर गांव में रहें तो वहाँ जीवन की मूलभूत जरूरतें भी पूरी नहीं हो पाती। सब बेचकर बेटों के पास महानगरों में चले आए तो सारी राशि उनकी हथेली पर रखनी होगी। यदि ऐसा नहीं करते तो उन्हें घाटी बाप, पापी बाप, कठ बाप कहा जाएगा। बीच बाजार में अगर कोई गिरकर बेहोश हो जाए तो कोई अस्पताल पहुँचाने वाला तक नहीं मिलेगा।

बुजुर्ग पेड़ भले ही फल न दे, उसका साया तो रहता ही है। सुषम बेदी की झाड़ में अमेरिका में जन्मे सात वर्षीय समीर को भारतीयता से अवगत कराने, अमेरिका में रहकर भी भारतीय जीवन से थोड़ा बहुत परिचित कराने, घरेलू जीवन के स्नेह-ममत्व से सराबोर करने के लिए उसकी मम्मी अन्विता समीर की नानी मालती सक्सेना को भारत से बुलाती है। लेकिन इस बच्चे को नानी से कहीं अधिक सुविधाजनक बेबी सिटर लगती है। उसके पास दिल लगाने के लिए टी० वी० है, वी० डी० ओ० गेम्ज़ हैं, बेसबाल, फुटबाल, बास्केटबाल की गेम्ज़ हैं, खाने के लिए फास्ट फूड है, कंपनी के लिए बेबी सिटर है। उसके लिए नानी दूसरी दुनिया की चीज़ है। उसे न उसके बनाए खाने में रुचि है, न उसकी ड्रेस सेंस जँचती है, न रोक-टोक, न स्नेह के आवेग-क्योंकि वह कहीं से भी नानी की तरह इमोशनल या कमजोर नहीं है। सात समंदर पार से नानी का आना नानी को भावुक कर सकता है, दौहित्र तो मात्र नानी को झेल रहा है।

सुषम बेदी की गुनाहगार की रत्ना पूरे परिवार के जोर देने पर भी इस गुनाह के लिए अपने को तैयार नहीं कर पाती। उसे अकेलापन मंजूर है, लेकिन अमरीक सिंह दीप की तीर्थाटन की बेटों, बेटियों, नाती-नातिनों वाली तिरपन-चौवन वर्षीय विधवा सुदेश पर पुरुष के साथ वृन्दावन तीर्थाटन के लिए क्या जाती है कि बेटे साँपों की तरह फुंफकारने लगते हैं। घर की एक-एक ईंट गुस्से में बेहया, कुलटा, कुलच्छिनी चीखने लगती है। एक ही गूँज अनुगूँज बन जाती है-मार डालो, काट डालो, फूँक डालो। कहते हैं कि वृद्धों को सुबह-शाम सैर करनी चाहिए। पुस्तकें-पत्रिकाएं पढ़नी चाहिए। बागवानी में रुचि रखनी चाहिए। संगीत या कम्प्यूटर से मन बहलाना चाहिए, लेकिन इस देश में बेटों वाली विधवा को अपने ढंग से जीने का कोई अधिकार नहीं। क्योंकि बेटों को बुढ़िया, बीमार, पुरखिन, संजीदा, झुर्रियोंदार चेहरे वाली माँ चाहिए। सफेद, बुझे, धूमिल रंगों की साड़ियां पहनने वाली, घंटों पूजा-अर्चना करने वाली, तीज त्योहार पर व्रत रखने वाली, मंदिर में प्रवचन सुनने वाली, मृत्यु को अपनी प्रिय सहेली समझने वाली बुढ़िया माँ चाहिए। उन्हें न मार्निंग वॉक पर जाने वाली, न योगा करने वाली, न जगजीत-चित्रा, नुसरत फ़तेह अली खान की स्वर लहरियां सुनने वाली माँ चाहिए और न रामायण में पुरुष मित्र के पत्र संभालकर रखने वाली माँ चाहिए। बेटे बहुएं यह सब पता चलते ही म्यान से निकली वह तलवार बन जाते हैं, जो खून पीकर ही वापिस म्यान में जाती है। वृन्दावन गई जीती जागती मम्मी का दाह संस्कार कर दिया जाता है। छत के ठीक बीचों-बीच मम्मी की सारी किताबें, पत्रिकाएं, इश्किया कैसेट्स, डायरी, प्रेमपत्र, कविताएं, ग्रीटिंग्ज इकट्ठी करके उन्हें मुखाग्नि दी जाती है हो। ममी की अशोक वाटिका उजाड़ी जाती है। सारे फूल नोच डाले जाते हैं, पौधे उखाड़ फेंके जाते है, गमले तोड़ दिए जाते हैं। वृद्धा/प्रौढ़ा और वह भी बेटों वाली-अमरीक सिंह दीप स्पष्ट करते हैं कि वह अपने लिए कोई पल जी ले यह बेटे-बहुओं को पचेगा नहीं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की प्रेत कामना में मुंबई के समुद्र के तट पर बने तीन कमरों के बड़े फ्लैट में रिटायर्ड विधुर पिता टूटी दीवार से झरते सीमेंट सा भुरभुरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं और बेटा महीनों बाद कभी खबर लेने आ जाता है। कभी वे जे० एन० यू० में एंथ्रोपोलॉजी के विभागाध्यक्ष थे। विदेश के चक्कर लगाते रहते थे और अणिमा जैसी शोधार्थी उनके विद्वता के कारण उन पर मरती थी। आज बेटा इसी शहर में अलग रहता है। बेटी कलकत्ता में है। पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। उनके ईद-गिर्द न समाज है, न परिवार, न प्रतिष्ठा। ऐसे में अमेरिका से प्रवासी सप्ताह के लिए पुरानी छात्रा अणिमा लौटती है और डॉ० पंत के प्रेत जीवन में कामनाएं ऐसे लहराती हैं कि दोनों में शारीरिक संबंध कायम हो जाता है। पापा की इस नई दुनिया को देख बेटे के पैर दस-दस मन के भारी हो जाते हैं। सारी श्रद्धा, प्यार और मोह निथर आते हैं।

संबंधगत अकेलापन वृद्धों को गोद-गोद कर खा रहा है। कृष्णा अग्निहोत्री की यह क्या जगह है दोस्तो की संगीतकार ऋतु के पास न पति है, न प्रेमी, न बच्चे। यह औरत प्रेमी की अय्याशियों को ढोती रही है। पति की मृत्यु के बाद बच्चे उसके मूवी या टी० वी० देखने, संगीत सुनने या रियाज करने, रेडियो प्रोग्राम देने या फोन करने, किसी शादी-विवाह में जाने तक पर पाबंदी लगा देते हैं। यहाँ तक कि उसे साज बेच कम्प्यूटर खरीदने के लिए कहा जाता है।

एक रिपोर्ट के अनुसार एक रिटायर्ड बूढ़ा आदमी सप्ताह में ९१ घंटे और एक बूढ़ी औरत ७२ घण्टे खाली रहती है। यह समय बिताना वृद्धों के लिए समस्या है। भारतीय स्त्री तो घरेलू कामकाज में अपने को व्यस्त रखने के ढंग जानती है, ज्यादा समस्या पुरुषों के लिए है। सुषम बेदी की नाते में वर्षों पहले बेटा राज अमेरिका में जाकर सेटल हो गया था। धीरे-धीरे दोनों भाइयों को भी उसने बुला लिया। उसका लांग आईलैंड के हरे भरे इलाके में पाँच बेडरूम वाला दो एकड़ का घर है। जब-जब राज माला इंडिया आते हैं, नाते रिश्ते के सारे लोग माँ-बाप को ले जाने पर जोर देते हैं। अमेरिका में रह रही माला को भी लगता है कि बच्चों के पास दादा-दादी होने ही चाहिए। वे पहले माँ और फिर पिता को ले जाते हैं। माँ बहू के साथ छोटी मोटी झड़पें हो जाने के बावजूद वहां खुश हैं। वह बेटे, बहू, बच्चों के साथ ही रहना चाहती है। चंडीगढ़ की कोठी बेचने या किराए पर चढ़ने का सोचती है। जबकि ६७ वर्षीय अड़ियल पिता अनुकूल न कर पाने के कारण भारत लौट आते है। आज भले ही विश्व जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा बूढ़ों ने घेर लिया हो। सबसे वृद्ध का नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में लिखा जा रहा हो, परिवारों में वृद्ध त्रासद जीवन ही जी रहे हैं। ७० से १०० वर्ष के बुजुर्गों पर बर्लिन एजिंग स्टडी की एक रिसर्च के अनुसार आंकड़े कहते हैं कि १५ : वृद्धों में जीवन के प्रति उदासीनता और थकावट है। आधुनिक दौर संतानों की अपेक्षाओं और वृद्धों की उपेक्षाओं का दौर है। भारतीय संस्कृति की

पाश्चात्य संस्कृति से मुठभेड़ है ।यह देश राम और श्रवणकुमारों का रहा है ।मगर वर्तमान में व्यक्तिवादी सोच के बढ़ने के कारण भारतीय वृद्ध परिवार हाशिये पर है । युवाओं में भारतीय संस्कारों का अभाव है । परम्पराओं को दक़ियानूसी मानकर कथित आधुनिकता की दौड़ में माता – पिता को घर से बाहर का रास्ता दिखाने से ये नहीं चूकते । नई पीढ़ी पाश्चात्य दिखावे की शिकार होने के कारण बुरी तरह भटक रही है। इस दौर में जब मूल्यों पर व्यक्तिवादिता और दिखावा हावी हो चला है तब वृद्धों के लिए क्या वृद्धाश्रम ही अंतिम शरण स्थली है ?

मनुष्य यह सोचता नहीं कि हरेक व्यक्ति बूढा बन जाता है और उन्हें विविध समस्याओं को भोगना पड़ता है। इस अवस्था में सभी शारीरिक विकारों पर काबू पाना आवश्यक है। आहार और व्यायाम में कुछ ध्यान दें तो, एक हद तक इन कमजोरियों को दूर कर सकता है। एक समय में पूरा भोजन लेने के बजाय दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा खाना खाये तो अच्छा ही होगा। उसे मांस, मछली तथा तली हुई वस्तुओं के बजाय फल, खरी सब्जियाँ, खनिजों युक्त आहार को भी खाना है। शरीर को तंदरुस्त रखने के लिए व्यायाम करना बहुत आवश्यक है। अपनी क्षमता और शारीरिक शक्ति के अनुसार विविध प्रकार के व्यायाम है जो रोगों को एक हद तक मुक्त करता है। आधुनिक पीढ़ी के लोगों को सिर्फ धन या अपना कामों में ध्यान देते वक्त कुछ समय इन वृद्धजनों की ओर भी मन लगाये तो ये उनके लिए बहुत ही शांति तथा सांत्वना की बात होगी।

****

संदर्भ ग्रंथ :-

1. समकालीन हिंदी कहानी में मानवीय संसक्ति – रवि रंजन
2. मानसरोवर—पृष्ट ५५ , प्रेमचंद सरस्वती प्रेस , इलाहाबाद
3. प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियाँ – इंद्रनाथ मदान हिंदी पाकेट बुक्स
4. भीष्म साहनी – प्रतिनिधि कहानियाँ राजकमल प्रकाशन
5. प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियाँ – इंद्रनाथ मदान हिंदी पाकेट बुक्स
6. वापसी उषा प्रियंवदा भारत दर्शन हिंदी साहित्यिक पत्रिका
7. झाड़ - सुषम बेदी , सुषम बेदी की यादगारी कहानियाँ— पेंगुइन बुक्स इंडिया
8. वृद्ध विमर्श : परम्परा और आधुनिकता का द्वंद्व कमलानंद झा
9. वृद्धावस्था विमर्श और हिंदी कहानी – शिवकुमार शौरिया – अद्वैत प्रकाशन
10. साहित्येतिहास में वृद्ध विमर्श, शिवचंद्र सिंह – दिशा इंटर्नैशनल बुक हाउस

पत्रकारिता के बदलते आयाम:एक दृष्टि

प्रो. दिनेश कुशवाह
शोध निर्देशक हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय
रीवा (म.प्र.)

अमित कुमार गौतम
शोध–छात्र
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय
रीवा (म.प्र.)

किसी भी लेख आलेख को पढ़ने से पहले उसका जो शीर्षक है उसके अर्थ को जानना बहुत महत्वपूर्ण है तो चलिए बात करते हैं कि पत्रकारिता के बदलते आयाम से क्या तात्पर्य है? सर्वप्रथम पत्रकारिता की शाब्दिक अर्थ की बात करते हैं अंग्रेजी में पत्रकारिता के लिए एक शब्द प्रयोग किया जाता है जिसे जर्नलिज्म कहते हैं जोकि शब्द जर्नल का विस्तारित रूप है। सामान्यतः जनरल का अर्थ सामान्य से लगाया जाता है लेकिन यहां 'जर्नल' शब्द का अर्थ 'दैनिक' है जिसमें रोजमर्रा की घटनाओं का विवरण रहता है।

अब बात करते हैं आयाम की जिसका सीधा सा अर्थ विस्तार करना यह सीमा बढ़ाना होता है अर्थात जैसे पहले पत्रकारिता जो है मात्र पत्रों और अखबारों के माध्यम से की जाती थी आज वह संचार के माध्यम उसके विस्तारित रूप हैं। इसी संदर्भ में डॉक्टर खाडिलकर का कथन है "छपने वाले लेख समाचार तैयार करना ही पत्रकारी नहीं रह गई। आकर्षक शीर्षक देना, पृष्ठों का आकर्षक बना उठना, जल्दी से जल्दी समाचार देने की होड़, देश विदेश के प्रमुख उद्योग धंधों के विज्ञापन प्राप्त करने की चतुराई, सुंदर छपाई और पाठक के हाथ में सबसे जल्दी पत्र पहुंचा देने वाली त्वरा,ये सब पत्रकार कला के अंतर्गत आ गये।"[1]

पत्रकारिता एक व्यापक अवधारणा है जिसे लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाता है । पहले के समय में पत्रकारिता सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का कार्य करती थी। जैसे-जैसे मनुष्य के रहन सहन में बदलाव हुआ है वैसे ही पत्रकारिता का स्वरूप भी बदलता रहा है। एक सुई से लेकर बड़ी से बड़ी कार्यप्रणाली की सूचनाओं का संप्रेषण पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से ही किया जाता है। पहले के समय में संचार के साधनों की मात्रा नाम मात्र की थी जिसके वजह से पत्रकारिता का बोल बालाथा। वर्तमान समय की स्थिति है की जो कार्य पत्र पत्रिकाएं करती थी वह कार्य आज संचार के साधनों के माध्यम सेसंचालित होता है। समृद्ध जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अर्थ से प्रभावित होता है"[2]

पत्रकारिता कावैश्विक स्वरूप में उदय आर्थिक राजनीतिक और व्यापारिक गतिविधियों संदर्भ में हुआ होगा क्योंकि बिना अर्थ के सब व्यर्थ है ऐसा कहा जाता है। वैसे तो पत्रकारिता का इतिहास कई वर्ष पुराना है लेकिन पत्रकारिता की शुरुआत का जो दौर था वह व्यापारिक और राजनीतिक हुआ करता था। भारत में पत्रकारिता का स्वरूप लगभग विश्व की पत्रकारिता जैसा ही था अर्थात इसका आरंभ भी आर्थिक और व्यापारिक गतिविधियों के संदर्भ में शुरू हुआ था। भारत में पत्रकारिता की शुरुआत हिक्की के अखबार 'हिक्की गजट' अथवा 'कोलकाता जनरल एडवरटाईजर' के रूप में 29 जनवरी सन् 1780 ईस्वी में कोलकाता से हुआ। हिक्की ने अपने पत्र के उद्देश्यों के विषय में लिखा था" व्यापारिक साप्ताहिक सभी पार्टियों के लिए खुला है लेकिन किसी से प्रभावित नहीं है"। [3]हिक्की के इन शब्दों से स्पष्ट होता है की बंगाल गजट का जो देश था वह आर्थिक और व्यापारिक गतिविधियों की सूचना देना। वस्तुतः पत्रकारिता का जन्म सूचनाओं के आदान-प्रदान तथा समाज सुधार के लिए किया गया था लेकिन यह इनके अलावा भी कई गतिविधियों का पोषक बना।

समय के साथ पत्रकारिता के आयाम भी बदलते गएअंग्रेजों का जो व्यापारिक केंद्र था वह कोलकाता था। व्यापार के साथ-साथ उन्होंने भारत में पत्रकारिता की शुरुआत तो की लेकिन उस शुरुआत का सीधा अर्थ उनकी आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाना था। अंग्रेजों द्वारा 'द कैपिटल'

ISSN-1504Naagfani RNI N.-UTTHIN/2010/34408

जोकि एक आर्थिक पत्र था उसका प्रकाशन 1868 में कोलकाता से ही शुरू किया। इस पत्र के संपादक पैटलोवाट और जेकरी टायसन थे जिन्होंने निष्पक्ष रहते हुए इस अखबार को चलाया। समय के परिवर्तनशीलता के साथ-साथ पत्रकारिता भी परिवर्तनशील होती गई जैसे कि शुरू में ही चर्चा हुई है कि जो इसका स्वरूप था वह व्यापारिक आर्थिक तथा राजनीतिक था स्वरूप तो वैसा ही था लेकिन उस चीजों में बदलाव जरूर हुए।

अंग्रेजों द्वारा भारत में की गई पत्रकारिता के पहल का परिणाम यह हुआ कि यह उन पर ही भारी पड़ी क्योंकि उस समय के जो भी आंदोलनकारी और क्रांतिकारी थे उनकी गतिविधियों के आलेख पत्र पत्रिकाओं में छपने लगे। हिंदी का जो प्रथम पत्र प्रकाशित हुआ जिसका नाम था 'उदंतमार्तंड'। प्रकाशन 30 मई 1826 ईस्वी को हुआ। बर्के ने प्रेस को चौथे राज्य की संज्ञा दी। अरुण पुरी पत्रकारिता को इतिहास का प्रथम राष्ट्र मानते हैं। पत्रकारिता के निहितार्थ अशोक भाटिया लिखते हैं "संसद और पुलिस को लोकतांत्रिक सरकारों के मुख्य अंग माना गया है संसद के तो निश्चित तिथियों पर अधिवेशन होते हैं जबकि प्रेस निरंतर गतिमान संसद है पत्रकारिता समाज के मूल्यों का निर्धारण या परिवर्तन भले ही ना कर सके किंतु विभिन्न मुद्दों पर जनता की राय को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह अवश्य करती है।"[4] इन शब्दों से पत्रकारिता का जो अर्थ चरितार्थ होता है वह है कि यह व्यापारिक आर्थिक गतिविधियों के साथ-साथ लोकतांत्रिक मूल्यों में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है। भारत में पत्रकारिता के प्रारंभ से ही उसमें जो क्रांति आई शायद ही किसी देश में आई हो वह पत्रकारिता जो कभी अंग्रेजों के क्रियाकलापों का और उद्देश्यों का कार्य पूर्ण करती थी वह भारत के स्वतंत्र राष्ट्र बनने तक के सफर में अपना अभिन्न योगदान देकरसत्यापित किया कि वह लोकतंत्र का पांचवा स्तंभ है। पत्रकारिता के आयाम समय अनुसार परिवर्तित होते रहे। पत्रकारिता ने समाज के उन सभी मुद्दों में अपना गहरा योगदान दिया जो समाज से अछूते अथवा अनभिज्ञ थे। राजनीतिक कूटनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, व्यापारिक, औद्योगिक सभी क्रियाकलापों का जो भी विज्ञापन लोगों तक पहुंचाना होता है उसका माध्यम पत्रकारिता के अलावाजन संचार के माध्यमरेडियो, टेलीविज़न, इंटरनेट आदि हो गए हैं। पत्रकारिता का एक और पहलू जिसका नाम व्याख्यात्मक पत्रकारिता है उस के माध्यम से पहले तो संवाददाता यहां से वहां सीधे ही उस समाचार का प्रसारण करते थे आजकल स्टूडियो में बैठकर उस समाचार का व्यवस्थित व्याख्यात्मक एक पूरा ब्योरा लोगों तक पहुंचाया जाता है ताकि उससे संबंधित समस्त जानकारियां जो उनसे अछूते हैं उन तक पहुंच जाए। इसी के निहितार्थ एक कथन है कि "पत्रकारिता अभिव्यक्ति की एक मनोरम कला है। इसका कार्य जनता तथा जन नेताओं के समक्ष लोक कल्याण संबंधी कार्यों की सूची प्रस्तुत करना है।"

यह प्रसिद्ध पंक्ति है कि 'जहां न पहुंचे रवि वहां पहुंचे कवि' इसमें एक शब्द और जोड़ दें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि 'जहां न पहुंचे रवि वहां पहुंचे कवि पहुंचाए पत्रकारिता।'

पत्रकारिता जैसा देश वैसा भेष के आधार पर कार्य करती है। क्योंकि बहुत सारे ऐसे मुद्दे हैं जिनमें लोगों का ध्यान कम ही जाता था जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श आदि । पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इन सब विषयों पर लिखा जाने लगा वह लोगों तक पहुंचा और लोगों द्वारा पढ़ा जाने लगा साथ ही साथ उसका जो निहितार्थ है वह है सफल हुआ। एक ओर जहां हम पत्रकारिता को धन्यवाद देते हैं वहीं दूसरी ओर इसकी आलोचना भी करनी चाहिए क्योंकि पत्रकारिता ही एक ऐसा माध्यम है जो लोग कल्याण और विकास पर आधारित था लेकिन आज के इस वैश्विक दौर में पत्रकारिता एकसाध्य के रूप में प्रयोग की जाने लगी जबकि इसका प्रयोग साधन के रूप में किया जाता था। जहां इसका कार्य लोगों को जागरूक करना था वही आज यही एक व्यापार के माध्यम की तरह प्रयोग की जाने लगी है। आज किस वर्तमान समय में ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जिसका संचालन और निष्पादन बिना पत्रकारिता के संभव हो। पत्रकारिता एक रीढ़ की तरह है जिस तरह अगर आपके शरीर में कोई भी एक अंग ना हो तब भी आप गुजर बसर कर सकते हैं लेकिन बगैर रीढ़ की हड्डी आप बेजान और विवश इसी प्रकार इस समाज में पत्रकारिता और संचार माध्यम हो गए हैं जिनके बगैर आप कोई भी कार करने में समर्थ नहीं महसूस करेंगे।जन संचार के जितने भी माध्यम हैं वह सब पत्रकारिता के अभिन्न अंग है जिनके माध्यम से ही पत्रकारिता का कार्य संभव हो पाता है।रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर के अनुसार "ज्ञान और विचार शब्द तथा चित्र के रूप में दूसरे तक पहुंचाना पत्रकारिता है।"[6] इसी संदर्भ में डॉक्टर भँवर सुराणा कहते हैं "पत्रकारिता वह धर्म है जिसका संबंध पत्रकार के उस कर्म से है जिससे वह तत्कालीन घटना व समस्याओं का सबसे अधिक सही और निबंध निष्पक्ष निवारण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करें और जनमत जागृत करने का संधि करें।"[7] इस प्रकार पत्रकारिता के आयामों में समय–समय में बदलाव होते रहते हैं। कभी पत्रकारिता आपको राजनीतिक लगेगी, कभी आर्थिक लगेगी तो, कभी व्यापारिक लगेगी तो, कभी धार्मिक लगेगी। इसका स्वरूप तथा आयाम समय व परिवेश के आधार पर बदलते रहते हैं। पत्रकारिता में आपको सर्व जगत समाचार प्राप्त होते हैं जैसे विज्ञान के क्षेत्र में कोई अनुसंधान हुआ या चिकित्सा के क्षेत्र में कोई खोज। खेल की बात करें तोखो–खो कबड्डी से लेकर क्रिकेट, फुटबॉल, वॉलीबॉल, हैंडबॉल बास्केटबॉल आदि खेलों का विवरण आपको पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही मिलता है जो पत्रकारिता के ही प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र की बात करें तो पढ़ाई लिखाई से लेकर जो सरकारी नौकरियों का विज्ञापन है वह भी पत्रकारिता के माध्यम से लोगों तक पहुंचाया जाता है। साथ ही साथ कृषि संबंधी जो भी जानकारियां हैं वह भी किसान भाइयों तकश्रव्य और दृश्य संचार माध्यमों के द्वारापहुंचायीजाती है। कोई भी सरकारी पैगाम शहर से लेकर गांव तक पत्रकारिता के माध्यम से ही सुचारु रूप से हो पाता है। उसने सरकारी योजनाओं से लेकर निर्देशों तक का जो भी ब्योरा है वह लोगों तक पहुंचाने का प्रयास किया जाताहै। कुल मिलाकर पत्रकारिता बहुआयामी गुणों से सराबोर लोक तंत्र का मजबूत स्तंभ है।

इस प्रकार पत्रकारिता के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि एक तरफ लोकतंत्र का बहुत बड़ा हिस्सा है तो दूसरी तरफ इसमें दोष भी हैं। यह कहना गलत नहीं होगा की जहां पत्रकारिता पहले लोगों के हितों की बात करती थी आज व्यापारिक हो गई है। पहले पत्रकारिता में बाजार हुआ करते थे आज बाजार में पत्रकारिता है।

****

संदर्भ:

1. श्री रा.र.खाडिलकर: आधुनिक पत्रकार कला, पृष्ठ- 2
2. संपूर्ण पत्रकारिता, अर्जुन तिवारी, पृष्ठ- 13
3. संपूर्ण पत्रकारिता, अर्जुन तिवारी, पृष्ठ –13
4. हिंदी पत्रकारिता विकास और विविध आयाम, श्रीमती सुशीला जोशी, पृष्ठ संख्या –1
5. न्यू वेबस्टर डिक्शनरी (संपूर्ण पत्रकारिता अर्जुन तिवारी पृष्ठ संख्या –5)
6. पत्रकारिता के विविध परिदृश्य, संजीव भानावत, पृष्ठ संख्या- 2
7. आधुनिक पत्रकारिता, डॉ अर्जुन तिवारी, पृष्ठ संख्या- 1

मुक्तिबोध की कविता में सत्ता के विरूद्ध संघर्ष

डॉ. सुनीता कुमारी
सहायक प्राध्यापक
विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची मो0: 9470368260

भूमिका-गजानन माधव मुक्तिबोध (**1917-1964**) की गणना प्रगतिवादी कवियों में की जाती है। मुक्तिबोध को पढ़ते हुए हमेशा दोस्तोव्येस्की याद आते हैं दोनों ही मानवमन के रचनाकार हैं। मुक्तिबोध का सम्पूर्ण जीवन विरोधों और संघर्षों से भरा रहा। उनके मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव उनकी कविताओं में भी देखने को मिलता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति कवि सर्वत्र आक्रोशित दिखाई देता है। कवि का विचार है कि वर्त्तमान आर्थिक व सामाजिक ढ़ाँचा पूर्ण रूप से जर्जर हो चुका है, उसकी नींव चरमरा गई है।

बीज शब्द - जर्जर, मार्क्सवादी, चरमराना।

मुख्य अंश- गजाननन माधव मुक्तिबोध की कुछ प्रमुख कविताएँ जैसे- रात, चलते हैं अकेले ही सितारे, बहुत शर्म आती है, शब्दों का अर्थ जब तथा अंधेरे में जिसे इन्होंने अपनी प्रिय कविता बताया है।

मुक्तिबोध की रचना प्रक्रिया का समय छायावाद के समापन से प्रारंभ होकर नई कविता के विखंडनवाद तक गतिशील है। ब्रह्मराक्षस मुक्तिबोध की एक लोकप्रिय व बहुचर्चित कविता है जिसका प्रकाशन 'कवि' नामक छोटी पत्रिका के अप्रैल **1957** के अंक में प्रकाशित हुई थी। स्वतंत्रता के बाद देश जिस भ्रष्ट, शोषक और अन्यायपूर्ण व्यवस्था से ग्रसित था मुक्तिबोध ने अंधेरे में नामक कविता के द्वारा उस व्यवस्था का वास्तविक चेहरा सामने लाया। इस कविता में मुक्तिबोध ने देश की आजादी से पहले और आजादी के बाद की स्थिति का चित्रण गहरी अनुभूति के साथ करते हैं। जिन स्वतंत्रता सेनानियों के प्राणोत्सर्ग के फलस्वरूप देश को आजादी मिली थी वे स्वतंत्रता के पश्चात् कहीं अंधेरे में खो गए तथा वे लोग प्रकाश में आने लगे, जो स्वार्थी और अवसरवादी थे। इनकी कविता 'अंधेरे में' पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम स्वयं अंधेरे से प्रकाश की यात्रा कर रहे हैं। मुक्तिबोध ने कभी समस्याओं से समझौता नहीं किया बल्कि परिस्थितियों का साहस के साथ सामना किया। जीवन में उन्हें पराजय भी देखना पड़ा लेकिन वह टूटे नहीं इसलिए तार सप्तक में कहते हैं-

''पर उसके मैं बैठा वह जो समझौता कर सका नहीं जो हर गया यद्यपि
अपने से लड़ते-लड़ते थका नहीं''

'अंधेरे में' कविता के माध्यम से गंभीर संवेदनाओं एवं भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति मिली है। इस कविता के माध्यम से उन्होंने शासक और बौद्धिक वर्ग के बीच गठबंधन का प्रयास किया है। शासक वर्ग आम जनता का शोषण करता है और जनता क्रांतिकारी बनती जाती है। यह कविता उस समय लिखी गई जब जनता ने स्वतंत्र भारत के शासकों से बड़ी-बड़ी उम्मीद पाल रखी थी, लेकिन बहुत जल्द ही मोहभंग की स्थिति आ गई, साधारण जन के सारे सपने टूट से गए। अंधेरे में कविता का मुख्य विषय देश में कायम फासिस्ट हुकुमत है और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आत्मसंघर्ष। नामवर सिंह ने इस कविता को 'अस्मिता की खोज' की कविता माना। अंधेरा मुक्तिबोध के लिए टेकनीक नहीं था, न ही वह उनके गुप्त पीड़ाओं चिंताओं से उपजा था। वह यथार्थ था, उनके समय और समाज का अंधकार जिसे निराला ने भी देखा था-

''उगलता गगन घन अंधकार
खो रही दिशा का ज्ञान
स्तब्ध है पवन चार''[1]

उस अंधेरे को मुक्तिबोध ने भी देखा -

''चिता हो गई कविता पढ़ते ही
इसमें से अंधेरे का भभकारा उमड़ा''[2]

अंधेरे में कविता में जो कलाकार मारा जाता है उस कलाकार के बारे में रामविलास शर्मा लिखते है- ''यह कलाकार मुक्तिबोध का प्रतिरूप है।''[3]रामविलास शर्मा यहीं नहीं रूकते बल्कि मुक्तिबोध की प्रसिद्ध पुस्तक 'कामायनी एक पुनर्विचार' को पढ़ते हुए भी वे इस तरह की बात भी करते हैं-

''कामायनी के मनू को मुक्तिबोध की निगाह से देखे तो वह स्वयं मुक्तिबोध से काफी मिलते-जुलते दिखाई देते हैं...... मनु वह सबकुछ हैं जो मुक्तिबोध है और होना चाहते हैं।''[4]

अंधेरे में का अनुभव विद्रोह और रचना का संपृक्त अनुभव है। वहाँ अर्थों की वेदना घिरती है मन में और प्रत्येक अर्थ की छाया में अन्य अर्थ झलकता है साफ-साफ। मुक्तिबोध ने भयाक्रांत शोषित वर्ग का चित्रण किया है-

''धरो गोली, दागो स्साले को एकदम
दुनिया की नजरों से हटकर
छूपे तरीके से
हम जा रहे थे कि
आधी रात उसने देख लिया हमको
वह जान गया वह सब
मार डालो उसको, खत्म करो एकदम।''[5]

मुक्तिबोध सत्ता के खिलाफ अकेले खड़े हैं कोई उनका साथ देनेवाला नहीं है। इनकी रचनाओं में समसामयिक समाज को बदलने की प्रतिबद्धता देखी जा सकती है। सांस्कृति विघटन के विस्तृत आयाम को बड़ी आत्मीयता के साथ 'मेरे मित्र सहचर' नायक लम्बी कविता में देखी जा सकती है-

''आज तो हमारी इन आँखों में
मानवीय चाँदनी की प्यारी लौ बनी हुई है
लेकिन इसके बावजूद
भारतीय अँधेरी गलियों में आजकल
सर्दी की भयानक काली-स्याह रातें हैं।''[6]

पूँजीवादी व्यवस्था के आगामी खतरों से अवगत होकर मुक्तिबोध ने अपने जीवन और साहित्य में इस व्यवस्था का विरोध किया। देश में असमानता को व्याप्त करने वाली इस कुटनीति से जनसाधारण को बचाना मुश्किल था। वे सत्ताधारी पूँजीपति वर्ग के विरूद्ध आक्रोश प्रकट करते हुए वे लिखते हैं- भूल (आलमगीर)/मेरी आपकी कमजोरियों के स्याह/लोहे का जिरहबख्तर पहन, खूँखार/हाँ खूँखार आलीजाह/वो आँखें सच्चाई की निकाले डालता/सब बस्तियाँ दिल की उजाड़े डालता/करता, हमें वह घेर/बेबुनियाद, बेसिर पैर/हम सब कैद हैं उसके चमकते ताम-झाम में/शाही मुकाम में।''[7]

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के समझौतावादी चरित्र का पर्दाफाश करते हुए उन्होंने कई कविताएँ लिखी हैं- जिनमें ब्रह्मराक्षस तथा अंधेरे में प्रमुख है। मध्यवर्ग बुद्धिजीवियों की स्वार्थपरता एवं अवसरवादिता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है मुक्तिबोध समझौता परस्ती, अवसरवादिता को पलायनवादी स्वभाव मानते हैं। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के ऐसे रवैये पर चिंता व्क्त करते हुए वे 'अंधेरे में कविता' मे लिखते हैं-

''कविता में कहने की आदत नहीं
पर कह हूँ

वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता
स्वातनय व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को
जन को।''[8]

पूंजीपति ताकतों की जगह यहाँ अब नई साम्राज्यवादी ताकतें अपना हक जमा रही हैं। ऐसे साम्राज्यवादी ताकतों ने मानव-मन पर भी कब्जा जमा लिया है। ऐसे अभिशप्त माहौल में रचनाताकारों में ऊर्जा फूंकने की ताकत मुक्तिबोध की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

''अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे। तोड़ने ही मठ और गढ़ सब
पहुँचाना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको
नील झील की लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल कॉपता रहता
नीली झील की लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरूण कमल एक।''[9]

अर्थात् आलोचक पूँजीवाद के पक्षधर विचारक, मंत्री, कविगण, विद्वान् उद्योगपति सभी षड्यंत्र करते हैं और आम जनता का शोषण व अत्याचार करते हैं। ऐसे अनेक सबाल जो मुक्तिबोध के समय में थे और आज भी हैं, जिसे हम मुक्तिबोध की रचना अंधेरे में देख सकते हैं, पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

''अबतक क्या किया
जीवन क्या जिया
ज्यादा लिया और दिया बहुत कम
मर गया देश, अरे जीवित रह गए तुए...।''[10]

निष्कर्ष - मुक्तिबोध अपनी कविताओं के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में जो परिवर्त्तन आया, उसकी व्यथा-गाथा को अभिव्यक्त करते नजर आते हैं।

****

संदर्भ सूची

1.निराला - सूर्यकान्त त्रिपाठी, अपरा नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 43
2.जैन नेमिचन्द्र, मुक्तिबोध रचनावली-2, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1980, पृ. 25
3.शर्मा रामविलास, संचयिता, सं. मुरली मनोहर प्र0 सिंह, आधार प्र0 2014, पृ. 468
4.शर्मा रामविलास, संचयिता, सं. मुरली मनोहर प्र0 सिंह, आधार प्र0 2014, पृ. 471
5.अस्सी चौराहाः साहित्य विचार-विमर्श की ई पत्रिका, मुक्तिबोध की कविता अंधेरे में पर पुर्नविचार शीर्षक शोध लेख से उद्धृत, लेखक रामज्ञाया शशिधर, 04 सितम्बर, 2014
6.मुक्तिबोध रचनावली-1 पृ. 321
7.मुक्तिबोध रचनावली-2 पृ. 144
8.मुक्तिबोध रचनावली-2 पृ. 350
9.मुक्तिबोध रचनावली-2 पृ. 348
10.मुक्तिबोध गजानन माधव, चाँद का मुँह टेढ़ा है, दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1978, पृ. 25

हरिशंकर परसाई की रचनाओं में व्यक्त व्यंग्य की प्रासंगिकता

डॉ.कृष्ण विहारी राय
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय कन्या महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)
मो.न. 9301238696, 8085011304

सारांश-आज हमारे देश में साहित्यकारों की कमी नहीं है एक से एक उत्कृष्ट साहित्यकार साहित्य का सृजन कर रहे हैं यद्यपि साहित्य के बारे में अनेक विद्वानों ने जो अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं उनमें किसी ने कहा कि साहित्य समाज का दर्पण है तो किसी ने कहा कि ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है समग्रतः यह कहा गया कि साहित्य वह है जिसमें सभी का हित समाहित होता है। यदि साहित्य के उपर्युक्त बातों पर ध्यान दिया जाए तो मुझे हिंदी की एक विधा समझ में आती है वह है व्यंग्य। हिंदी व्यंग्य विधा में सर्वोच्च स्थान रखने वाले व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई जी जिन्होंने अपने व्यंग्य वाणों से साहित्य की सार्थकता को सिद्ध किया है। उन्होंने सही मायने में देश की जनता की आंख खोला और देशभक्त ठेकेदारों, सच्चरित्र सत्यापन करने वाले चरित्रवानों, धर्म के ठेकेदारों की पोल खोलने का महान कार्य किया था, जिस प्रकार से दर्पण हमारे चेहरे की वास्तविकता बताता है उसी प्रकार परसाई जी ने देश में हो रहे गोरखधंधे, रूढ़िवाद, अंधविश्वास, धार्मिक एवं राजनैतिक छलावा जो सामान्य जनता के साथ हो रहा है, अफसर गिरी आज की सच्चाई को सामने रखने का कार्य किया। आज का नवयुवक बस कंडक्टर, सिनेमा थिएटर के गेट पर असहाय दवे कुचले लोगों के प्रति क्रांति कर राष्ट्रभक्ति का स्वांग रचते दिखाई देते हैं। परसाई जी ने व्यंग्य करते हुए कहा था कि जब तक आप बस कंडक्टर और गेटकीपर के विरुद्ध क्रांतिकारी आंदोलन करते रहेंगे, हम सुरक्षित रहेंगे, आप से अपील करता हूं कि आप इन्हीं के खिलाफ आंदोलन करते रहें, जिस दिन आप बुनियादी आंदोलन करने लगेंगे उस दिन हम उखड़ जाएंगे। इसीलिए आप सच्चे क्रांतिकारी बने सच्चा क्रांतिकारी कंडक्टर, गेटकीपर, चपरासी वगैह से ही संघर्ष करता है। मैं कहना यह चाह रहा हूं कि शायद परसाई जी के यह बातें आज भी प्रासंगिक हैं, इसीलिए देश के युवाओं से मेरी यही अपील है कि अपने अधिकारों एवं बुनियादी परिवर्तन के लिए सजग रहने की आवश्यकता है अतः हम यह कह सकते हैं कि परसाई जी आज भी प्रासंगिक हैं उनके व्यंग्य अभी भी पूर्ण रुप से चरितार्थ होते जान पड़ते हैं।

मुख्य शब्द- हरिशंकर परसाई, व्यंग्य, साहित्यकार, सामान्य जनता, छलावा, अंधविश्वास, रूढ़िवाद, धर्मांधता, अफसरगिरी, स्वतंत्रता, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक

जब हरिशंकर परसाई जी लिखना आरंभ किए होंगे तब कई साहित्यकारों एवं पाठकों के मन में यह सवाल था कि व्यंग को एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकारा जाए या नहीं? ऐसे में यह कहा जा सकता है कि एक सार्थक रचना धर्मिता किसी विधा की कायल नहीं हो सकती वह खुद-ब-खुद धारदार शब्दों को गढ़ने का महान कार्य करती है। वह ऐसा मोह नहीं पालते जो लुभावने एवं चारण संगीत रचने का काम करती हो बल्कि वह धरती से जुड़कर रक्त और मांस से अभिसिंचित अक्खड़ भांगड़ा नृत्य करती है, यही कारण है कि वे लोग नाराज होते हैं जो लीक से बंधे विधानों के कलेवर में दिखने वाले होते हैं। किंतु परसाई जी अपने कबिराई अंदाज में काहिली जनों की खूबसूरत समूह गान से बिल्कुल अलग-थलग अंदाज में समय की धड़कती सांसो पर नए ढंग से अपनी स्वर रचना करने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं। परसाई जी के इस नए अंदाज को व्यंग्य विधा नाम दिया जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश की विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्यारियों में विसंगत का सड़न

हमारे देश की संपूर्ण धरा पर किसी रचनात्मक हरित क्रांति के बीज उगाने में सक्षम ना हो सके। कहना न होगा कि परसाई जी ने इस लहलहाती हुई उपज में व्यंग का कटाक्ष अपनी रचना के पात्र इंस्पेक्टर मातादीन से चंद्रलोक पर निवास करने वालों को सभ्यता का प्रशिक्षण दिलवाते हैं, वहीं भोलाराम का जीव का मुख्य पात्र भोलाराम की जो कथा है वह व्यथा को घ्गहराती है। सुदामा के चावल सरकारों के चरित्र की गुफाओं की ओर संकेत करते हैं तो वहीं रामकथा क्षेपक उस चरित्र का पर्दाफाश करते हैं। कहना न होगा कि यह विवशता, टूटन, चरित्र का अवमूल्यन, ढकोसला, रूढ़िवादिता, समकालीन जनमानस के संस्कारों में नए विकारों का हलफनामा के रूप में है।

साहित्यकार के बारे में ठीक ही कहा गया है कि वह युग की आत्मा होता है तथा साहित्यकार का लेखन समय की निहारिका। स्वानुभूति रूपी थर्मामीटर से अपने समय की उस्मा को नापने का कार्य करता है। साहित्यकार अपनी कलम से समय और संपूर्ण वहां के वातावरण या यूं कहें कि माहौल की वास्तविकता का दस्तावेज लिखता है। यदि परसाई जी की बात की जाए तो उन्होंने अपने लेखन यात्रा के दौरान अनेक पड़ाव देखे हैं, उन्होंने जीवन की बदसूरती को एक ओर जहाँ निहारा है तो वहीं दूसरी ओर नग्न यथार्थ का अवलोकन भी किया है, चरित्र की सौदेबाजी किस प्रकार की जाती है और उसकी नीलामी सरे बाजार में किस तरह होती है यह भी उन्होंने बहुत नजदीक से देखा है। तत्कालीन समय के अपने आप को देशभक्त कहने वाले नेता देश सुधार के नाम पर देश की बोली लगाते थे, आजादी के मसीहा 'फाइवस्टार रेस्ट्रां' में शराब की आगोश में मस्ती में बेहोश रहते थे, यह सब भी परसाई जी ने करीब से देखा है। कहना न होगा कि चेतना से भरपूर परसाई जी ने विसंगतियों, शोषण, लूट, भाई भतीजावाद, साहित्यिक एवं राजनीतिक अखाड़े तथा गुटबाजी शिक्षा के नाम पर अनैतिकता, अराजकता को संस्कृत का एक हिस्सा बनते हुए स्वयं महसूस किया था। परसाई जी ने जो महसूस किया था वह आज भी प्रासंगिक जान पड़ता है।

आज नैतिकता एवं मानवता राजनीतिक स्वार्थ के कारण खत्म सी होती जा रही है, जिसे देखो वही राक्षसी हरकतों के दरिंदा रूपी पंजों से मानवता की छाती को चीरने में तुला हुआ है। आज ईमान का पाठ पढ़ाने वाला सुधारक बेईमानी की पीछे वाली खिड़की से पैसा कमाने का निर्लज्जता पूर्ण धंधा करता है, अपने आप को सचरित्र बताने वाला अधिकारी पहले स्त्री के कुंवारे पन का टेस्ट लेना चाहता है और देना चाहता है आदर्श चरित्र का टेस्टिमोनियल। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे सारे आदर्श एवं मानवीय मूल्य मटिया मेट हो गए, यदि सच कहा जाए तो आदर्श थे ही कहाँ ? जो चरित्र, धर्म, संस्कृति थे सब छूमंतर हो गए, बच गया केवल छलावा और धोखा ! एक हसीन लफ्फाजी, एक खूबसूरत फरेब ! देश के सभी पिता प्रत्येक वर्ष अपने-अपने पुत्रों को एक नया नारा थमा देते हैं कि लो नए वर्ष का गिफ्ट लॉलीपॉप की तरह मुख में डाले घूमते रहो तथा भारत के नौनिहाल भारत माता की जय बोल कर सो जाते हैं। समय का कैलेण्डर परिवर्तित होता रहता है और हमारे देश के उद्धारक पुराने रंगीन कैलेण्डरों को अपने प्रिय देशवासियों को भेंट में बांट देते हैं और हमारे देश की भोली-भाली जनता रंगीन तस्वीरों को देख कर मन बहलाने में लगी रहती है। वह पुराने सारे दुखों को भूल जाते हैं और नए वर्ष की इंद्रधनुषी आकांक्षाओं के क्षितिज पर आंखें गड़ाए रहते हैं। कहना न होगा कि यह हमारे देश की विडंबना नहीं तो और क्या है ? सारे देश को आजादी प्राप्त के पश्चात् बीमारी लग गई सभी अनैतिक बनने लगे पगडंडियों का जमाना आ गया और सदाचार का ताबीज बांटने लगे पुरुषार्थहीन, कमजोर दिल इंसानों को शक्ति और सामथ्र्य का अंदाजा देने के लिए अचानक कबीर प्रकट हो गए। सधुक्कड़ी भाषा में कहा 'सुनो भाई साधो'! लेकिन स्वतंत्र भारत के बंदे थोड़ा-बहुत इंटेलेक्चुअल हो गए थे, फिर इतनी सरलता से वास्तविकता को कैसे कबूल कर लेते ? मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि किसी भी व्यक्ति में नैतिकता एवं मानवता नहीं है, है! किंतु उनकी संख्या नगण्य है। या यूं कहें कि उनकी स्थिति ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार शिक्षण संस्थानों में भला आदमी का प्रोडक्शन ही नहीं होता, बल्कि उस भले इंसान को चरस, गांजा, कोकीन, अफीम आदि माफिया का सेवन कैसे किया जाता है, यह सब सिखाया जाता है।

धन किसका है ? कुबेर का! और उसकी मालकिन कौन है ? लक्ष्मी जी ! लक्ष्मी जी की सवारी उल्लू जैसा कि लोक प्रचलित है कि उल्लू को रात में ही दिखाई देता है यही कारण है कि धन कमाने के सारे कार्य रात के अंधेरे में होते हैं, क्योंकि रात में सन्नाटा रहता है और सन्नाटा माल के हेरा-फेरी में बहुत मदद करता है। लोकतंत्र में पुलिस की अहम भूमिका है पर परसाई जी ने जिस इंस्पेक्टर मातादीन की बात की है उससे बढ़कर बिल्कुल नहीं। इस धरा और मिट्टी की कसम खाकर चंद्रमा पर क्रांतिकारी परिवर्तन किए थे पर देश की यह पुलिस बेचारी ! दो नेत्रों वाले तस्करों पर देश की यह अहिंसक पुलिस भला कैसे लाठी बरसाए ? हां इतना अवश्य है कि महाभारत कालीन धृतराष्ट्र की काली करतूतों का बदला लेने के लिए अंधों पर लाठी जरूर चला सकते हैं इतना ही नहीं कैदियों की आंखें फोड़ सकती है। परसाई जी ने इस प्रकार के बहादुर पुलिस वालों पर व्यंग करते हुए लिखते हैं कि ''इसी तरह इनकी बहादुरी की मिसाल में एक दिन मातादीन का सार्वजनिक अभिनंदन किया गया। वे फूलों से लदे खुली जीप पर बैठे थे। आस-पास जय जयकार करते हजारों लोग। वे हाथ जोड़कर अपने गृहमंत्री की स्टाइल में जवाब दे रहे थे।''[1]

कहना न होगा कि परसाई जी का मन तत्कालीन प्रशासनिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से व्यथित हुआ और उन्होंने अपने और देश की असहाय जनता के साथ हो रहे अन्याय अत्याचार एवं शोषण के विरुद्ध पीड़ा एवं दुख की अभिव्यक्ति का माध्यम व्यंग्य विधा को बनाया और स्वयं के व्यंग्य बाणों से काली करतूतों का पर्दाफाश किया। जो कि आज भी प्रासंगिक जान पड़ता है। हम ये नहीं कहते कि देश में न्याय नहीं है या ईमानदारी व मानवता नहीं है, है ! लेकिन उनके लिए जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सक्षम हैं, जिनके सगे संबंधी शासन और प्रशासन में हैं, अन्यथा उनकी कौन सुनता है जो निर्धन, लाचार तथाकथित निम्न जाति के हैं। कानून व्यवस्था भी अधिकाधिक रूप से इन्हीं के लिए है जो निर्धन, लाचार एवं निम्न वर्ग के हैं। हमारे देश में अन्याय, अत्याचार, शोषण, भ्रष्टाचार के साथ ही धर्मांधता भी चरम पर है, किसी ने सही ही कहा था कि धर्म एक चोखा धंधा है। यह धंधा पान, तंबाकू और अन्य बिक्री की जाने वाली चीजों से भी अधिक चमत्कारिक है। हमारे देश में धर्म के नाम पर मिट्टी भी भारी कीमत में बिकती है, परसाई जी ने व्यंग्य करते हुए लिखे हैं कि ''आजकल सब जगह अंधेरा छाया रहता है। रातें बेहद काली होती है, अपना हाथ ही नहीं सूझता। आदमी को रास्ता नहीं दिखता। वह भटक जाता है, उसके पाव कांटो से बिंध जाते हैं, वह गिरता है और उसके घुटने लहूलुहान हो जाते हैं।''[2]

बेशक हमने प्रगति की है, प्रगति ऐसी कि अनेक दिग्भ्रमित करने वाले प्रसाधनों की उमदा वैरायटियों के रिसर्च में हमने बहुत बड़ी क्रांति की है। हमारी महानतम वैज्ञानिक खोज यह है कि मेकअप का आर्ट तैयार किया, जिसमें झूठ और सच एक समान ही दिखते हैं। हमारे देश के चरित्र की शोभा बढ़ाते हैं। मुक्तिबोध जी ने लिखा है कि ''निष्क्रिय ईमानदार और सक्रिय बेईमान मिलकर षड्यंत्र सा बना लेते हैं।''[3]

कहना न होगा कि परसाई जी अपने देश के ऐसे चरित्रवान लोगों पर व्यंग्य किये हैं तथा अपने दुख को व्यक्त करते हैं जो महान ब्रह्मांड की भांति चरित्र बनाना चाहता है, वह अपनी बात का संकेतात्मक प्रमाण इंस्पेक्टर मातादीन का चांद पर बुलाया जाना को मानते हैं।

परसाई जी की पीड़ा कुछ हल्की हो जाती यदि ब्रह्मांड का चरित्र विकसित हो जाता । उन्होंने भारतीय जनता के साथ हो रहे छलावे, अन्याय, अत्याचार एवं शोषण को अपनी व्यंग्य रचना 'शिकायत मुझे भी है' में व्यक्त करते हुए लिखा है कि ''भारतीय दंड संहिता अपना महान महाकाव्य है । एकमात्र क्लासिक है । यह काव्य है और धर्म ग्रंथ भी । खास जातीय जीवन इसी धर्म ग्रंथ से संचालित हो रहा है । इसी की प्रेरणा से हम राष्ट्रीय जीवन की सिर्फ एक ही साधना कर रहे हैं तो उसे 'लॉं एण्ड आर्डर' यानी कानून और व्यवस्था कहते हैं । सारी प्रतिभा हमने कानून और व्यवस्था की साधना में लगा दी, फिर भी भारतीय दंड संहिता को अभी तक नोबेल पुरस्कार नहीं मिला ।''[4]

कहना न होगा कि परसाई जी का मन इस कारण से दुखी है कि जो हमारे देश को व्यवस्थित रूप से संचालित करने वाला ग्रंथ है जिसके कारण सभी लोग अमन-चैन एवं शांतिपूर्ण ढंग से देश को विकसित बनाने में महती भूमिका अदा करता है वह पवित्र ग्रंथ धर्म, जाति, क्षेत्र तथा पूंजी के आगे उपेक्षित सा महसूस करता है, उसे आज तक दुनिया का सर्वोच्च पुरस्कार मिलना चाहिए किन्तु आज तक नहीं प्राप्त हो सका । हमारे देश में शोषणकारी प्रवृति के लोग देश की भोली-भाली जनता को सदैव अनुचित काम को ही उचित बताने का कार्य किया, जिस पर लेखक ने व्यंग्य करते हुए लिखा है कि ''जिस देश में जायज काम भी ना हो सके, उसमें सारे काम ही नाजायज है ।''[5] उनके लिए सोर्स चाहिए इतनी सोर्स प्रेमी जाति दनिया में कोई नहीं है

निष्कर्ष एवं सुझाव-निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रचना वह होती है जो देश को सामाजिक दुर्व्यवहार, अराजकता, स्वार्थपरता, राजनैतिक लोलुपता, धर्मांधता, चरित्रहीनता एवं पाखंड से मुक्त कराकर स्वस्थ एवं सभ्य राष्ट्र का निर्माण करें । हिंदी साहित्य में अनेकानेक ऐसे महान साहित्यकार हुए जिन्होंने अपनी रचना धर्मिता से देश की जनता को तथाकथित बहुरूपिया नेताओं से जहां एक और सचेत किए हैं तो वहीं दूसरी ओर ईमानदारी का चोला पहन ने वाले एवं धर्म का पाठ पढ़ाने वालों की पोल खोलने का महान कार्य किया है। देश की जनता में चेतना जागृत करने के लिए अनेक माध्यम हो सकते हैं किंतु हिंदी साहित्यकारों ने विभिन्न विधाओं जैसे कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध तथा अन्य सुविधाओं के माध्यम से देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना लाने का कार्य किया । हिंदी साहित्य की एक और स्वतंत्र विधा के रूप में है व्यंग्य विधा जो हिंदी गद्य विधा के अंतर्गत मानी जा सकती है और यह समाज को आईना दिखाने का महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है । व्यंग्य के माध्यम से हिंदी के महान व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई जी ने देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, अनैतिकता, अमानवीयता, कदाचार, देशभक्ति के रूप में तेंदए एवं भेड़िया इन सभी पर अपने व्यंग्य बाण चलाया और देश की जनता को सजग करने में अविस्मरणीय योगदान दिया और रही बात मेरे सुझाव की तो मैं यही कहूंगा कि आज भी जरूरत है हरिशंकर परसाई जैसे महान व्यंग्यकारों की किंतु विडंबना इस बात की है कि क्या आज किसी में इतनी हिम्मत है ? कि वह भी खुलकर कह सके कि शिकायत मुझे भी है ? क्या आज वह समस्याएं नहीं है जो परसाई जी के समय में थी ? उत्तर होगा हां थी । लेकिन दुख इस बात का कि आज परसाई नहीं है, है ! लेकिन उस रूप में जिस रुप पर हरिशंकर परसाई जी ने व्यंग्य किया था ।

****

संदर्भ ग्रंथ-

1. हरिशंकर परसाई-शिकायत मुझे भी है, पृष्ठ 46
2. हरिशंकर परसाई-सदाचार का ताबीज, पृष्ठ 35
3. मुक्तिबोध-एक संस्मरण, तिरछी रेखाएं, पृष्ठ 54
4. हरिशंकर परसाई-शिकायत मुझे भी है, पृष्ठ, 11-12
5. हरिशंकर परसाई-शिकायत मुझे भी है, पृष्ठ, 11-12

नयी कविता और प्रयोगवाद

डॉ.गंगाधर ढोके
प्राध्यापक, एवं शोध निर्देशक
हिन्दी विरसिंह पुर पाली

अनिल मेरावी
शोधार्थी, हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह
विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

नयी कविता हिन्दी साहित्य में सन् 1951 के बाद की उन कविताओं कहा गया। जिनमें परम्परागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया। यह प्रयोग के बाद विकसित हुई हिन्दी कविता की नवीन धारा की शुरू आत हुई है। हिन्दी काव्य में प्रयोगवाद का प्रारम्भ सन् 1943 ई. में 'अज्ञेय' द्वारा संपादित तार सप्तक के प्रकाशन से माना जाता है। प्रयोगवादी काव्य में नई संवेदना और नई भाव बोध एवं नई शिल्प का प्रयोग गया है। प्रयोगवादी कवि प्रयोग करने में विश्वास करता है। कवियों ने भाषा की दृष्टि से नए प्रयोग शिल्प की दृष्टि से नये प्रयोग, उपमानों की दृष्टि से नए प्रयोग और काव्य वस्तु की दृष्टि से नए प्रयोग अपनी कविताओं में किए है। अज्ञेय ने प्रयोग अपनी कविताओं में किए है। अज्ञेय ने प्रयोग को साधन मानते हुए लिखा है।

प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं वरन् वह साधन है। प्रयोगवादी कवि ने भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को काव्य में स्थान दिया और जीवन की निराशा कुंठा, को काव्य में अनास्था, जड़ता एवं संघर्ष की अभिव्यक्ति प्रदान की दमित कामवासना के चित्र भी इस काव्य उपलब्ध होते हैं। लघु मानव गरिमा के साथ प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी प्रयोगवादी कवियों को दिया जाता है। प्रयोगवाद का विकास ही कालांतर में नई कविता के रूप में हुआ। डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार-ये दोनों एक ही धारा के विकास की दो अवस्थाएँ हैं। सन् 1945 से 1953 ई. तक कविता में जो नवीन प्रयोग हुए नई कविता उन्हीं का परिणाम है। प्रयोगवाद उस काव्यधारा को आरम्भिक अवस्था है और नई कविता उसकी विकसित अवस्था है। प्रयोगवाद और नई कविता में कोई सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती है। बहुत से अन्य कवि जो पहले प्रयोगवादी रहे बाद में नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर बन गए। इस प्रकार ये दोनों एक ही काव्यधारा के विकास की दो अवस्थाएँ हैं निष्कर्ष रूप में 1943 से 1955 तक की कविता को प्रयोगवाद एवं 1953 के बाद की कविता को नई कविता की संज्ञा दी जा सकती है। हिन्दी की नई कविता का कथ्य परंपरा से भिन्न है। नवीन विषयों की नवीन शैली में अभिव्यक्ति होने के नवीनता को इसकी प्रमुख विशेषता मानी जा सकता है। इसके अतिरिक्त बौद्धिकता, क्षणिकता और मुक्त यथार्थवाद को भी नई कविता की विशेषताओं में सामाविष्ट किया जा सकता है।

प्रयोगवाद का जन्म 'छायावाद' और 'प्रगतिवाद' की रूढ़ियों की प्रतिक्रिया में हुआ। भाव क्षेत्र में छायावाद की अतिन्द्रियता और वायवी सौंदर्य चेतना के विरूद्ध एक वस्तुगत मूर्त और एन्द्रिय चेतना का विकास हुआ है। और सौंदर्य की परिधि में केवल मसृण और मधुर के अतिरिक्त परुष, अनगढ़, भदेश का समावेश हुआ छायावादी कविता में वैयक्तिकता में उदात्त भावना थी। इसके विपरीत प्रगतिवाद में यथार्थ का चित्रण तो था किन्तु उसका प्रतिपाद्य विषय पूर्णतः सामाजिक समस्याओं पर आधारित और उसमें राजनीति की बू थी अतः इन दोनों की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रयोगवाद का उद्भव हुआ। जो घोर अंहमवादी वैयक्तिकता एवं नग्न यथार्थवादी लेकर चला। प्रयोगवाद ने अपने शब्दाडम्बर में बहुत से शब्दों और बिम्बों के गतिशील तत्वों को नष्ट कर दिया था। दूसरे प्रगतिवाद ने सामाजिकता के नाम पर विभिन्न भाव स्तरों एवं शब्द संस्कार को अभिधात्मक का

पव्यक्त करने के लिए न तो शब्दों में सामर्थ्य था और न परम्परा से मिली हुई, शैली में परिणाम स्वरूप उन कवियों को इनसे पृथक में सर्वथा नया स्वर और नये माध्यमों का प्रयोग करना पड़ा क्योंकि भाव स्तर की नई दोनों से सर्वयाभिन्न थी।प्रयोगवाद नाम तार सप्तक में अज्ञेय के इस व्यक्तव्य से लिया गया। ''प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करते आये हैं कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं। आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी हुआ ही नहीं है। जिनको अभेद्य मान लिया गया है। इन अन्वेषणकर्ता कवियों को अपनाया जो किसी एक स्कूल के नहीं है। किसी एक विचारधारा के नहीं है। किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है। अभी राही है राही नहीं राहों के अन्वेषण काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बांधता है। उनमें मतैक्य नहीं हैं सभी महत्वपूर्ण विषय में उनकी अलग-अलग राय है। जीवन के विषय में समाज और धर्म और राजनीति के विषय में काव्य वस्तु और शैली के छंद और तुक में कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है। यहाँ तक की हमारे के ऐसे सर्वमान्य और स्वयं सिद्ध मौलिक सत्यों को भी वे स्वीकार नहीं करते हैं। जैसे लोकतंत्र की आवश्यकता उद्योगों का समाजीकरण, यांत्रिक, युद्ध की अथवा कानन बाला और सहगल के गानों की उत्कृष्टता इत्यादि। वे सब एक-दूसरे की रूचियों-कृतियों और आशाओं और विश्वासों एक-दूसरे के मित्रों पर भी हँसते हैं।

प्रयोगवाद एवं तार सप्तक का प्रकाशन अज्ञेय के संपादकत्व में सन् 1943 में हुआ। इस संग्रह से प्रयोगवादी का आरम्भ माना जाता है। इसमें जिन सात कवियों की रचनाएँ संकलित है। उनके नाम निम्न है। जैसे -नेमिचन्द्र जैन, गजानन, मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय आदि कवि है। तार सप्तक का ऐतिहासिक महत्व इस रूप में है कि इसी संकलन से हिन्दी काव्य साहित्य में प्रयोगवाद का उदय होता है। आज भी अनेक काव्य प्रेमियों में इस संग्रह की कविताएँ आधुनिक काव्य प्रेमियों में इस संग्रह की हिन्दी कविता के उस रचनाशील दौर की स्मृतियाँ जगाएँगीं जब भाषा और अनुभव दोनों में नये प्रयोग एक साथ कर सकना ही कवि कर्म को सार्थक बनता है। तार सप्तक में गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा एवं अज्ञेय सहित सात कवियों की कविताएँ संकलित की गई है। तार सप्तक का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सन् 1943 ई. में किया गया है। इसके बाद दूसरा सप्तक तथा तीसरा सप्तक का प्रकाशन हुआ। प्रयोगवाद 1943 ई. से यो तो प्रयोग हर एक युग में होते आये है। किन्तु प्रयोगवाद नाम कविताओं के लिए रूढ़ हो जो कुछ नये बोध संवेदनाओं तथा उन्हें प्रेषित करने वाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरू-शुरू में तार सप्तक के माध्यम से वर्ष 1943 ई. में प्रकाशन जगत में आई और जो प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती है। ''प्रयोग शब्द का सामान्य अर्थ है। नई दिशा में अन्वेषण का प्रयास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निरंतर चलते रहते हैं।

प्रयोगवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इस धारा के कवियों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं- प्रयोगशील कविता में नए सत्यों नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है। उन सत्यों के साथ नए रागात्मक संबंध भी और उनको पाठक या सहृदय तक पहुँचने यानी साधारणीकरण की शक्ति भी है। प्रयोगवादी कविता में भावना है। किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्न-चिन्ह् लगा है। इसी प्रश्न चिन्ह का आप बौद्धिकता सकते हैं। सांस्कृतिक ढॉचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न चिन्ह् उसी की ध्वनि मात्र है। प्रयोगों का लक्ष्य है व्यापक सामाजिक सत्य के खण्ड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता का नवानुकूल माध्यम देना जिसमें व्यक्ति द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्वमान्य या सर्वबोधगम्य प्रेषण सम्भव हो सके। प्रयोगवाद को प्रतीकों की प्रधानता और नवीन प्रतीकों को अपनाने के कारण प्रतीकवाद नाम से भी अभिहित किया गया। प्रयोग से कुछ लोगों को अभिप्राय 'रूपवाद' अथवा फार्मलिज्म तक सीमित है लेकिन रूपवाद प्रयोगवाद की शाखा मात्र है। क्योंकि प्रयोगवादी केवल रूप विधान या तकनीक पर ही ध्यान नहीं देते उसमें अन्य तत्व भी मौजूद है।

प्रयोगवाद के भीतर ही प्रपद्यवाद या नकेनवाद भी पनपा लेकिन वह प्रयोगवाद की एक छोटी शाखा मात्र बनकर रह गया। नकेनवाद बिहार में प्रचलित हुआ। नलिन विलोचन शर्मा, केशर कुमार और नरेश नामों के प्रथम अक्षर से बना है। नकेनवादी तीनों कवियों ने प्रयोग दश सूत्रों में प्रयोगवाद और शीलता में उतर स्पष्ट किया है ये प्रयोग को ही काव्य का एक मात्र लक्ष्य मानते हैं। प्रयोगवादी कविता का नई कविता का नाम दिया कुछ आलोचक नई कविता और प्रयोगवाद में कोई अंतर नहीं मानते जबकि कुछ का मानना है कि दोनों को एक समझने की भूल नहीं करनी चाहिए हमारे दृष्टिकोण से नई कविता प्रयोगवाद का ही विकसित या स्थापित हुआ रूप है। प्रयोगवादी कविता जब काव्य जगत में स्वीकृत हो गई हो उसे नई कविता के नमा से अभिहित किया गया है। जो लोक प्रयोगवाद और नई कविता का अलग-अलग रूप में देखते हैं। वे दलगत राजनीति के शिकार है।

''प्रगतिवाद काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप कवियों ने एक नयी प्रकार की कविता को जन्म दिया जिसे प्रयोगवाद की संज्ञा दी गयी है। काव्य में अनेक प्रकार के नए-नए कलात्मक प्रयोग किये गए। इसीलिए इस कविता को प्रयोगवादी कहा गया है। प्रयोगवादी काव्य में शैलीगत तथा व्यंजनागत नवीन प्रयोगों की प्रधानता होती है। डॉ. गणपति चंद्र गुप्त के शब्दों में नयी कविता, नए समाज नए मानव की नयी वृत्तियों की नयी अभिव्यक्ति नयी शब्दावली में है। जो नए पाठकों के नए दिमाग पर नए ढंग से नया प्रभाव उत्पन्न करती है।''

''प्रगतिवाद की तरह प्रयोगवाद भी छायावाद के व्यक्तिवाद का विद्रोह स्वर है। इस धारा के कवियों में एकमत और एक स्वर नहीं है। जीवन धर्म, समाज, राजनीति आदि के विषयों में भी व्यापक मतभेद है। इनमें यदि कोई समानता है तो केवल इस अर्थ में की सबने भाषा शैली के क्षेत्र में प्रयोग किये हैं। उन्हें प्रयोगवादी कवि कहते हैं कि प्रयोग उनका साध्य या इष्ट नहीं है। अपितु इस काव्य के धारा के माध्यम से उन्हें जो नवीन सत्य की उपलब्धि हुई है। उसे समष्टि तक पहुँचने की चेष्टा करना लक्ष्य है। यही उनका प्रयोग भी है। इन कवियों ने कविता के भाव जगत के उपेक्षा करके शिल्प तथा वैचित्र्य विधान की ओर अधिक दिया है।''

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1.प्रयोगवाद और नयी कविता-सिंहा शम्भुनाद समकालीन प्रकाशन संस्करण 1916।
2. प्रयोगवादी काव्य-पवन कुमार मिश्र, प्रकाशक मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी मालवीय नगर भोपाल संस्करण प्रथम 1977।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ. नगेन्द्र, प्रकाशक साहित्य भवन नोयडा।
4. आधुनिक हिन्दी काव्य और उसका इतिहास-डॉ. नगेन्द्र, प्रकाशक साहित्य भवन नोयडा।
5. साहित्य का परिवेश-सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस संस्करण प्रथम 1985।
6. प्रयोगवादी काव्यधारा-सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'।

दलित साहित्य में स्त्री:बदलते प्रतिमान

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1475

रजिला. ओ.पी.
सहायक प्राध्यापक-हिंदी
शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय
कालिकट्ट, केरल मो.8129337760

दलित साहित्य वह साहित्य है जो दलितों के जीवन, उनके सुख दुख उनकी सामाजिक राजनीतिक स्थितियों उनकी संस्कृति, उनकी आस्थाओं, अनास्थाओं उनके शोषण व उत्पीडन विरुध दलितों द्वारा प्रतिरोध की परिस्थितियों को व्यापकता तथा गहराई के साथ, कलात्मकता से प्रस्तुत करता है।दलित साहित्य परम्परागत साहित्यक अवधाराणाओं मानदण्डों का विखण्डन करके नई अवधाराणाएँ और मानदण्ड निर्मित करते है। वैसे भी साहित्य के साथ लगा दलित शब्द अपने आप में विशिष्ट अवधारणा से संबन्धित है। इससे विशिष्ट साहित्यक अवधारणा का बोध होता है। दलित लेखक दलित चेतना और संवेदना के माध्यम से अपनी एक पृथक साहित्यक धारा बनाती है।

आधुनिक युग में यद्यपि स्त्री की समस्याओं और उनके जीवन संघर्ष को यथार्थ रूप से अंकित किया है तथापि नारी को लेकर भोगवादी विचारों से पूर्ण साहित्य का भी बोल-बाला रहा। समय परिवर्तन और परिस्थितियों के बहलाव तथा नारी संघर्ष की अवधारणा एवं क्रियात्मकता ने नारी विमर्श जैसी साहित्यक धारण व सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। इधर दलितों केलिए उनकी जीवन शैली, संघर्ष और दर्द को दिखाने केलिए जो साहित्य रखा गया उनमें अनेक साहित्यकारों ने नारी को भी दलित व दलित मानकर उसे दलित साहित्य में जगह दी।

रमणिका गुप्ता ने अपने आलेख दलित कहानियों का यथार्थ में स्त्री के प्रति पुरुष वर्ग की सोच का उल्लेख करते हुए लिखा है- "पुरुष दलित हो, अथवा आभिजात्य या सवर्ण औरत के प्रति दोनों का रवैया एक ही जैसा है- चूँकी दोनों का समाज पीतृ प्रधान है जिसमें औरत की इज़्जत लूटकर दुश्मन से बदला लिया जाता है।"[1]

दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र तो अभी निर्माण की प्रक्रिया में है लेकिन उसे परखने के मानदण्ड वही है जिनसे विश्वभर का उत्पीडितों का साहित्य परखा जाता है। दलित साहित्य में भी दलित स्त्री की एक अलग शाखा निकलती है। जो दलित लेखन की व्यापक दृष्टि को दर्शाती है।

माधुरी छेडा के अनुसार "दलित का आत्मकथ्य अपार व्यथा की कथा है। पतियों की व्यथा को जो आत्मानुभूति का एक हिस्सा बनकर सारे व्यक्तित्व में घुलती है रही निष्कासन और निष्कृति की अनुभूति, और पददलित होने की अनुभूति, जैसे भीतर ही भीतर कोई छटपटाता हो, घुलता हो, और असहाय, विवश होने के बोध से थक थक जाता है। वर्ण और लिंग का तिहरा अभिशाप। बरसों से दबा, छुटा यह अभिशाप यह त्रास जिसे अब तक वाणी नहीं मिली थी वही आज दलित स्त्री लेखिकाओं की कलम से अभिशप्त होकर उनकी व्यथा कथा सुना रहा है। स्त्री चाहे सवर्ण वर्ग की हो या अछूत वर्ण – अत्याचार, शोषण और अपमान सहने को भाध्य ही होने है जिस पर भी दलित स्त्री की दशा तो भयावह और विद्रूपता से और पददलिता होने की अनुभूति- जैसे भीतर ही भीतर कोई छटपटाता हो, घुलता हो, और असहाय, विवश होने के बोध रो थक थक जाता है। वर्ण और लिंग का तिहरा अभिशाप बिरशों से दबा, घुटा यह अभिशाप यह त्रास जिसे अब तक वाणी नहीं मिली थी वी आज दलित स्त्री लेखिकाओं की कलम से अभिशाप होकर उनकी जाथा कथा सुना रहा है। स्त्री चाहे सवर्ण वर्ग की हो या अधूत वर्ण अत्याचार, शोषण और अपमान सहने को बाध्य ही होते है जिस पर भी दलित स्त्री की दशा तो भयावह और विद्रूपता से परिपूर्ण है।"[2]

हिन्दी दलित साहित्य आन्दोलन में महिलाओं का क्या भूमिका है था हो सकती है इस पर अब तक पर्याप्त विचार नही हुआ है। इस आन्दोलन में स्त्रियों की सक्रिय उपस्थिति इतनी कम है कि यह मुद्दा किसी की ध्यान नहीं खिंचती। दलित पुरुषों केलिए सफूलियत भरा मामला नहीं है इसका विमर्श के केन्द्र में न आ जाना स्वाभाविक है। पर बावजूद इन सब परिस्थितियों के दलित साहित्य ने ही दलित महिला को जीने का आशय भी बतलाया है। उसने सजग होकर जीना शुरु किया है। वह विचारबिन्दु नहीं विचार प्रवाह बनी है।

पुरुष दलित साहित्यकारों की अपेक्षा स्त्री दलित साहित्यकार स्त्रियों की पीडा उनकी मनोदशा और व्यवहार को अधिक अच्छे ढंग से समझकर विशिष्ट और प्रभावकारी प्रस्तुति देने में समर्थ है। दलित साहित्य लिखने केलिए दलित होना ज़रूरी है। क्योंकी एक दलित ही अपने अनुभव अपमान और भोगे हुए यथार्थ तथा संघर्ष का समाज और व्यवस्था की वस्तुस्थिति का वास्तविक व प्रभावि चित्रण कर सकता है।दलित साहित्य ने नारी विमर्श को एक नयी दिशा ही है। उसे भावनात्मक मार्ग के साथ-साथ तर्कपरक और तथ्यबद्ध ढंग रो लक्ष्यबोध और लक्ष्यबोध की क्रियान्विति के तरीके सुझाए है। विशेषकर दलित वर्ग की नारियों के संदर्भ में को यह और भी अधिक प्रासंगिक तथा प्रभावी बन पडा है। दलित कविता ने विषय और विस्तार दोनों ही दृष्टि से हिन्दी कविता की समृद्द किया है। जिसने हिन्दी कविता को नया आयाम मिला है।

दलित महिला कवयित्रियों में कुसुम मेघवाल, हेमलता, रजनी अनुरागी, नीरा परमार आदि अनेक नाम है जो निरंतर सक्रिय है। किन्तु सुशीला टाकभोरे के 'स्वाती बूँढ और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो' और 'तुमने उसे कब पहचाना', रजनी तिलक का 'पदचाप', पूनम तुषामाड का 'माँ मुझे मत दो' और कुंती का 'अंधेरे में कन्दील' आदि कविता संग्रह महत्वपूर्ण है। इनमें रजनी तिलक विशेष रूप से सर्वाधिक उल्लेखनीय है। रजनी तिलक स्त्री अस्मिता और अधिकारों की प्रबल प्रवक्ता है। उनकी कविताओं में स्त्री का यही स्तर प्रमुख रूप से मुखरित हुआ है।

इकाई नहीं मैं
करोड़ों पदचाप है
मूक नहीं मैं।
आधी दुनिया की आवाज़ हूँ।[3]

रजनी की कविताएँ यथार्थ में बन्धन रो मुक्ति का आह्वान है जिनमें अतीत के प्रति आक्रोश वर्तमान के प्रति असंतोष और भविष्य के प्रति आशा का संचार है। कंवल भारती के शब्दों में रजनी एक नई नारी को जन्म देती है, जो समर्पण कर खाक होना नहीं चाहती वस्तु अपने अस्तित्व को एक नया अर्थ देकर जीना चाहती है।रजनी तिलक ने स्त्री की संवेदना को सार्थक अभिव्यक्ति दी है तो पूनम तुषामाडे ने दलित स्त्री के दर्द की सार्थक रूप में अभिव्यक्त किया है। उनकी कविताओं में आज की दलित स्त्री का स्वर मुखरिता हुआ है जो अपने सम्मान के प्रति सचेत और स्वाभिमान के प्रति सतर्क है। माँ मुझे मत दो कविता ने उनकी यही चिन्तन प्रकट होती है।

"मै नहीं पहनूँगी उतरत
मै नहीं खाऊँगी जूठन
झाडू तसली और कूडे की विरासत
माँ मुझे मत दो।"[4]

वर्तमान दलित कविता दलित चेतना या मुक्ति की घोषणा पत्र बन गयी है।

वह सदियों थे सामाजिक शोषण, भेदभाव और वर्जनाओं से मुक्ति और मानव अधिकारों की सशक्त आवाज़ ने परिवर्तित हो गयी है।दलित साहित्य यह अनुभव करता है कि भारतीय समाज में एक ऐसी संगठित विचारधारा की आवश्यकता है जो सभी एकांगी दृष्टिकोणों में सुधारकर एक नवीन समाज की स्थापना करे ऐसे समाज की स्थापना जिसका मूलाधार न्याय, स्वतंत्रता, समता एवं भ्रातृत्व हो उसकी कार्यविधि प्रजातांत्रिक हो।

दलित साहित्य अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करते हुए तथा साहित्य और सैद्धातिकी के स्तर पर अनेक अंतविरोदों से घिरा होने पर भी भारतीय अभिव्यक्ति और सामंती मानसिकता और वर्णव्यवस्था केलिए चुनौती खूब करने से निरन्तर सफल हो रहा है। दलित साहित्य की यही शक्ति उभक्ते समकालीनता की द्योतक है।आधुनिक साहित्य में यदि दलित का साहित्य ने अपना खास मुकाम तय किया है तो इसका एक प्रमुख कारण दलितों के साथ-साथ नारियों के जीवन संघर्ष सन्ताप विरोधाभास और मनोस्थिति को समझकर उसका चित्रण करना भी रहा है। दलित साहित्य ने नारियों के समाज में गैर बराबरी की स्थिति से उबरने में पूर्ण योगदान दिया है। यह साहित्य दलित स्त्री वर्ग में आत्मविश्वास और दृढसंक्ल्प का संचार करने में सहयोगी बना है।

****

संदर्भ ग्रन्थ

1. रमणिका गुप्ता- दलित कहानियों का यथार्थ
2. माधुरी छेडा- मराठी दलित स्त्री की व्यथा कथा, अपेक्षा-जुलाई 2003, पृ.51
3. रजनी तिलक- पदचाप
4. पूनम तुषामाड- माँ मुझे मत दो
5. प्रमीला. के.पि- कविता का स्त्रीपक्ष
6. हरपाल सिंह अरुष- दलित साहित्य की भूमिका

सुब्रमण्यम भारती के साहित्य में नारी मुक्ति

डॉ.के.महालक्ष्मी

सहायक प्राध्यापक हिंदी

College of Science and Humanities

SRMIST , Vadapalani Campus,Chennai-26

"महिलाओं के पास जीवन है। उनके पास मन, बुद्धि, आदि पाँच इंद्रियाँ हैं। वे मात्र यंत्र नहीं हैं। जीवित पौधे-लताओं की तरह नहीं होते। आम तौर पर पुरुष के समान होती है, सिर्फ अंगों में परिवर्तन होता है, आत्मा वही होती है।" - सुब्रमण्यम भारती।

भूमिका:-सुब्रमण्यम भारती आधुनिक तमिल कविता के अग्रणी थे और उन्हें अब तक के सबसे महान तमिल साहित्यकारों में से एक माना जाता है।उन्होंने महिलाओं की मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ी,समाज में सुधार के लिए सबसे आगे खड़े हुए।भारती ने अपने कविताओं के द्वारा स्त्रियों के मन में जो साहस उत्पन्न किया वह तो अतुल्य है।उनकी कविताएँ नारियों को अपने खिलाफ होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने का बहादुरी दिया।

राजा एट्टप्पा नायककर ने उनके काव्य कौशल के लिए भारती की उपाधि दी, जिसका अर्थ है माँ सरस्वती। सन् 1949 में तमिलनाडु राज्य सरकार द्वारा भारती की पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था। भारत में पहला राष्ट्रीयकृत साहित्य भारतीयार का था।

नारीवादी आन्दोलन-नारीवादी आन्दोलन में भारती बालिका शिक्षा और महिलाओं के अधिकार के लिए सन् 1904 से सन् 1906 तक जोरदार तरीके से लिखा गया था। भारती मानते हैं कि महिलाओं को कुछ अधिकार मिलने से महिलाओं की मुक्ति हो जाती है। भारती इस बात से सहमत नहीं हैं कि महिलाओं को अपनी प्रतिभा को छिपाने के लिए गुलाम और उत्पीड़ित किया जाए और उन्हें अपने घरों तक सीमित रखा जाए। भारती महिलाओं को ऐसे रहने के लिए प्रेरित करते हैं कि उसको समाज में निडर, प्रतिभाशाली, मेहनती रहना चाहिए और अंधविश्वासों के आगे नहीं झुकना चाहिए और बिना डर से जीवन में कई कारनामे करनी हैं।

महाकवि सुब्रमण्यम भारती अपने क्रांतिकारी गीतों और अद्भुत कविताओं से सभी के मन में अमर हैं। भारती की कविता ने एक प्रगतिशील, सुधारवादी आदर्श व्यक्त किया। उनकी कल्पना और उनके पद्य की ताक़त विभिन्न पहलुओं में आधुनिक तमिल कविता के अग्रदूत थे। वह एक सशक्त प्रकार की कविता के अग्रदूत थे जो शास्त्रीय और समकालीन तत्वों को जोड़ती थी।

उन्होंने महिलाओं की मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ी और इसके साथ समाज में सुधार के लिए खड़े हुए। भारत के पितृसत्तात्मक समाज के भीतर संस्कृति-विशिष्ट मुद्दों जैसे कि बाल विवाह,वंशानुगत कानून और सती जैसी प्रथा के खिलाफ भी लड़ाईयाँ लड़ी है। भारत की पितृसत्तात्मक संस्कृति ने महिलाओं को भूमि-स्वामित्व के अधिकार प्राप्त करने और शिक्षा तक पहुँच को चुनौतीपूर्ण बना दिया, भारती ने अपने कविताओं के द्वारा स्त्रियों के मन में जो साहस उत्पन्न किया वह तो अतुल्य है। नारियों के मन में स्वतंत्रता कि जागृति पैदा करके उन्हें पक्षियों की तरह उड़ने की आशा दिलाएवाले नेताओं में एक हैं सुब्रह्मण्य भारती।वह अपने सोच- विचार को अपने कविताओं के द्वारा नारियों के मन में छाप डाला। वह लिखते हैं "चलो उस मूर्ख को जलाते हैं, जो स्त्रियों को अपमानित करते हैं"। वह भारतीय नारियों को देश की शक्ति मानते थे। उनकी कविताएँ नारियों को अपने खिलाफ होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने का बहादुरी दिया।

वह अपने कविताओं में लिखते हैं कि,स्त्री को अपनी परंपरा, अपना संघर्ष और अपनी भागीदारी का इतिहास खुद लिखना होगा। स्त्री जानती हैं कि भिन्न-भिन्न वर्गों, वर्णों और जातियों के बीच नए-नए समीकरणों के साथ उसे अपने लिए लड़ना होगा।

महिला जागरूकता- भारती कैसे नारीवादी हुआ ? इसके पीछे एक घड़ना था। जब भारतियार कलकत्ता में एक कांग्रेस की बैठक में गए, तो निवेदिता देवी ने भारती से पूछा, "तुम अपनी पत्नी को क्यों नहीं लाए?" भारती ने जवाब दिया, "हमें अभी अपनी पत्नी के साथ समान व्यवहार करने और उसे सार्वजनिक स्थान पर ले जाने कि आदत नहीं है, लेकिन मेरी पत्नी को कांग्रेस में लाने का क्या फायदा है?"भारती का उत्तर सुनकर निवेदिता देवी बहुत क्रोधित हुईं और उन्होंने कहा, "यदि महिलाओं को समान अधिकार और उचित शिक्षा नहीं दी जाएगी तो समाज में सुधार कैसे हो सकता है? अपनी पत्नी को अपने दाहिने हाथ के रूप में पुरुष सम्मान दें।"[1]

इस घटना के बाद ही भारती ने अपने विचारों को बदल दिया। भारती बंगाल विभाजन के बाद स्वदेशी आंदोलन में बंगाली महिलाओं के प्रयासों से चकित थीं और उन्होंने तमिलनाडु की महिलाओं को उनके बारे में जागरूक करने के उद्देश्य से 'चक्रवर्ती' में स्वदेशी विचारधारा के बारे में लिखा। भारती का विचार यह है कि,"अगर एक महिला को मुक्त होना है तो उसे पहले जागरूकता हासिल करनी होगी। जागरूकता का तात्पर्य उस ज्ञान से है जो ध्यान से कार्य करने के लिए आवश्यक है"। इसलिए भारती ने सोचा कि महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए।

नारीवादी आन्दोलन में भारती का योगदान -भारती तमिलनाडु की उन प्रतिष्ठित महिलाओं को दिखाना चाहते थे, जो पुरुषों के अधीन रहने की आदी हैं। इसलिए, 'धर्मयुथम' शीर्षक में महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़े गए आंदोलनों के बारे में वह लेखे थे कि, "तुर्की में महिलाओं के भीतर मुक्ति विद्रोह ने दक्षिण अफ्रीका के पीटरमैरिट्सबर्ग शहर में सन् 1910 में स्थापित नारीवादी आंदोलनों 'महिला मुक्ति संघ', 'ब्रिटेन' और 'महिला साम्राज्य' आदि की शुरुआत की। तमिलनाडु की महिलाएँ इसके लिए कोई प्रयास क्यों नहीं कर रही हैं? "[2] उसने स्त्रियों को अपने स्थिति के बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया।

"उन्होंने शीउज़िन नाम की एक चीनी महिला की प्रशंसा में रचित एक नारीवादी आंदोलन गीत का अनुवाद किया, जिसने एशिया में महिलाओं की मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ी थी। उन्होंने पांडिचेरी में एक महिला सभा में अपनी बेटी शकुंतला भारती के साथ उस गाना को गाया।"[3] भारती की महिलाओं की उन्नति में गहरी रुचि है। उसने उन्हें आभूषण और कपड़ों जैसी विलासिता को त्यागने की चेतावनी दी। उनका मानना है कि यही महिला मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा।

"सन् 1904 में, जब भारती स्वदेशमित्र पत्रिका के लिए अनुवादक के रूप में काम कर रहे थे, चेन्नई के तिरुवल्लिकेनी से वैथियानाथ अय्यर ने महिलाओं के लिए 'चक्रवर्ती' नामक मासिक पत्रिका शुरू की। भारती सन् 1904 से सन् 1906 तक इस पत्रिका के संपादक रहे। इस अवधि के दौरान भारतीय महिलाओं की मुक्ति के लिए सबसे जोरदार तरीके से लिखा गया था।"[4]

बालिका शिक्षा-

बालिका शिक्षा की आवश्यकता को उजागर करना चाहते हुए भारती कहते हैं - "20-30 साल पहले तमिलनाडु में कई लोगों ने कहा था कि अगर बालिका शिक्षा होती तो वे मात्र अनुशासन में असफल हो जाते, अब तमिलनाडु में बालिका शिक्षा आम विषय है। ब्रह्मांडीय दीवारें अभी तक एक साथ खड़े हैं टूटे नहीं।"[5]उन्होंने कहा कि अभिभावकों को लड़कियों की पढ़ाई पर ध्यान देना चाहिए। उनका मानना था कि भारत तभी समृद्ध होगा जब सभी महिलाएँ शिक्षित होंगी।

महिलाओं के अधिकार-वह अपने एक लेख में ऐसे लिखते हैं- "ऐसी जगह, जहाँ नारी को पूर्ण समानता नहीं है,वहाँ हम पुरुषों के साथ नहीं रहेंगे, इसलिए हमें अपने पतियों और पुरुष सामाजिक भागीदारों द्वारा हम पर की जाने वाली क्रूरता से डरना नहीं चाहिए।बहनों, छह साल पर मौत आएगी और सौ पर भी मौत आएगी, धर्म के लिए मरने वाले भी हैं, और अन्य के लिए भी मरने वाले हैं ।बहनों, स्त्री मुक्ति के लिए धर्मयुद्ध शुरू करो, हम जीतेंगे।"[6] भारती नारियों से कहते हैं, पति, भाई, पुत्र आदि लोगों के साथ उनके सम्मान जीना है, सम्मानता के बिना जीने से मर जाना अच्छा है और वे यह भी कहते हैं शिक्षा भी इतनी बड़ी नहीं है, हिम्मत चाहिए। ऐसे भारती महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए खुद कैसे लड़ना है करके सिखाते हैं।

भारती ने अपने एक लेख में यह भी बताया है कि एक महिला को अपने पति के साथ यदि वह सात्विक व्यवस्था का पालन करना चाहती है तो उसे ,यह कहना है कि "मैं आपके साथ रहूँगी यदि, मुझे हर तरह से आपके समान रहने के लिए सहमत है। अन्यथा मैं आज रात खाना नहीं बनाऊँगी और मैं सिर्फ मेरे लिए खाना बनाऊँगी और खाऊँगी जो मुझे चाहिए"।

समाज में रीति-रिवाजों के कारण महिलाओं को कई अधिकारों से वंचित किया गया था। भारती मानते हैं कि महिलाओं को कुछ अधिकार मिलने से महिलाओं की मुक्ति हो जाती है।

"महिला का विवाह वयस्क होने से पहले नहीं करना चाहिए।

उन्हें किसी ऐसे व्यक्ति से शादी करने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए जो उन्हें पसंद न हो।

बेटी को संपत्ति में हिस्सा दिया जाना चाहिए।

पति की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह की अनुमति दी जानी चाहिए।

जो महिलाएँ बिना शादी किए उद्योग आदि करके सम्मानजनक जीवन जीना चाहती हैं, उन्हें आंगन में रहने के लिए जगह दी जानी चाहिए।

महिलाओं को अपने पति से अलग रहने की अनुमति दी जानी चाहिए। उसका अपमान मत करना चाहिए।

महिलाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाना चाहिए।"ये अधिकार मिलने से समाज समृद्ध होगा। उनका कहना है कि ये अधिकार जल्द दिए जाने चाहिए।[7]भारती ने उस क्रांतिकारी महिला का वर्णन निम्नलिखित कविता में ऐसे कल्पना किए हैं कि- "सीधी नज़रों और साहसिक से राजसी चलानाअपनी बुद्धि पर घमण्ड नहीं करती;और पृथ्वी पर किसी से नहीं डरती;क्रन्तिकारी महिला ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह अंधी अज्ञानता में डूबने को तैयार नहीं, वह आगे बढ़ेंगी और अपनी असली कीमत साबित करेंगी। "[8]

उपसंहार-स्त्रियाँ ही संसार की शक्ति है, शक्ति के बिना कुछ भी असंभव है।स्त्रियाँ संसार की भागीदारी हैं,उनके उन्नति से दुनिया की उन्नति निर्भर करती है। चेतना, आत्मविश्वास एवं अपने अधिकारों के प्रति जागृत होने के लिए स्त्री-शिक्षा के महत्त्व और नारीमुक्ति पर 'सुब्रमण्यम भारती' ने अपने रचनाओं के द्वारा घोषित किया है।

****

संदर्भ :-

1. भारती जीवनी, पृष्ठ 28
2. भारतीयर और सामाजिक सुधार, पृष्ठ: 121
3. भारती और सामाजिक सुधार, पृष्ठ: 122
4. सम्राट, जनवरी 1906, पृष्ठ: 143
5.महाकवि भारतियार कट्टुरैगल, पृष्ठ: 257
6.महाकवि भारतियार कट्टुरैगल, पृष्ठ: 248
7. भारती और सामाजिक सुधार, पृष्ठ: 133
8. पुतुमैपेन ,भारतियार

'रसीदी टिकट' और 'कस्तूरी कुण्डल बसै' स्त्री संघर्ष का दस्तावेज

डॉ.विश्वजीत कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक,हिन्दी विभाग
राजीव गाँधी विश्वविद्यालय
अरुणाचल प्रदेश

अनू पाण्डेय
एम.फिल.शोधार्थी,हिन्दी विभाग
राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश
मो.7002776262

शोध सार- प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य 'रसीदी टिकट' और 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथाओं में अभिव्यक्त स्त्री संघर्ष को रेखांकित करना है | मानव जीवन के व्यक्तित्व के निर्माण में समाज का योगदान अभूतपूर्व होता है | आत्मकथा लेखन में साहित्यकार अपने जीवन के अनुभवों को रेखांकित करता है ये अनुभव सत्य की नींव पर खड़े होते है | यही सत्यनिष्ठता 'रसीदी टिकट' और 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में सफल रूप में दृष्टिपात होते है | आत्मकथा लेखन साहस और चुनौतीपूर्ण कार्य है | यह साहस अमृता प्रीतम और मैत्रेयी पुष्पा के लेखन में दिखाई देता है | नारी संघर्ष का स्वरुप जो आत्मकथा में उभर कर आया है, वह साहित्य के अन्य विधाओं कहानी, उपन्यास और नाटक से अधिक यथार्थ रूप में सामने आता है |

बीज शब्द- आत्मकथा, संघर्ष, अमृता प्रीतम, मैत्रेयी पुष्पा, साहित्य

समानता, मुक्ति, स्वतंत्रता किसी एक वर्ग, जन या समुदाय की नहीं होती बल्कि इस पर सबका समान रूप से अधिकार होता है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष | पर यह हमारे समाज की विडंबना ही रही है, जिसमें स्त्री को पुरुषों के समकक्ष न समानता ही प्राप्त है, और न स्वतंत्रता मिली है | स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है, यह संघर्ष ही स्त्री को सफलता दिला सकती है| संघर्ष करती स्त्री की व्यथा को निर्मला पुतुल ने शब्दों में व्यक्त किया है-

"क्या तुम जानते हो
एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण
बता सकते हो तुम ?
एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखते
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा?
अगर नहीं |
तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में ...?"[1]

'रसीदी टिकट' में स्त्री संघर्ष के विविध रूपों को देखा जा सकता है, जिसमे अकेलेपन का संघर्ष, प्रेम संबंधी स्त्री संघर्ष, विवाहोत्तर संघर्ष और पारिवारिक संघर्ष प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते है | बचपन से लेकर आजीवन तक अमृता प्रीतम का जीवन अकेलेपन से भरा हुआ था | अमृता प्रीतम की माँ के मृत्यु के बाद छोटी बालिका अमृता के जीवन मे अँधेरा छा जाता है | यह अँधेरा उसके जीवन का अंग बन गया | माँ की मृत्यु के बाद पिता के जीवन में वैराग्य उत्पन्न हो गया | 'रसीदी टिकट' में अमृता प्रीतम कहती है "कई पल ऐसे भी आते थे-मैं बिलख उठती, मेरी समझ में नहीं आता था मैं उन्हें स्वीकार थी या अस्वीकार..."[2] जीवन में वैराग्य उत्पन्न हो जाने के बाद वे सारी रात कविता लिखते और सारा दिन सोते | अमृता प्रीतम को पिता से वह प्यार न मिला जिसकी उन्होंने कल्पना की थी| अमृता प्रीतम का विवाह सन् 1936 में उनके पिता द्वारा करा दिया जाता है | यह विवाह अमृता प्रीतम की मर्जी के विरुद्ध होता है, विवाह के बाद उनके जीवन में अकेलेपन के साथ-साथ मानसिक संघर्ष को भी झेलना पड़ता है, वह एक ऐसे रिश्ते में बंध गई थी जो उन्हें कभी दिल से स्वीकार नहीं था | विवाह के बाद अमृता प्रीतम के जीवन में साहिर आते है | बचपन में 16 वर्ष की आयु में अमृता प्रीतम ने जिस 'राजन' की कल्पना की थी, उस राजन की झलक उन्हें साहिर में दिखाई देती है | अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' में उन्होंने अनगिनत बार साहिर की चर्चा की थी | अमृता प्रीतम ने साहिर को बड़ी सिदत से चाहा | पर साहिर अमृता प्रीतम को अपना नहीं पाते | जिस कारण अमृता प्रीतम का जीवन अकेलेपन से भर जाता है |

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में दो स्त्री रूप माँ-बेटी के संघर्ष को देखा जा सकता है, जो एक दूसरे से विचारों में भिन्न एवं असहमत दिखाई देती है | पहली स्त्री रूप कस्तूरी का है और दूसरी स्त्री रूप मैत्रेयी पुष्पा का है | कस्तूरी का जीवन संघर्षमय जीवन रहा है, उनका संघर्ष सम्पूर्ण स्त्री जाति के लिए प्रभावित और प्रेरित करने वाला है | मैत्रेयी पुष्पा को भी अपनी माता जी कस्तूरी के जीवन संघर्ष ने प्रभावित किया था, जिस कारण वह अपनी माता की आत्मकथा लिखती है | एक इंटरव्यू के दौरान मैत्रेयी पुष्पा कहती है,कि वह एक ऐसी स्त्री की कहानी कहनी चाहती थी जो विधवा हो जाने के बाद अपने ससुर से कहती है कि वह पढना चाहती है, और वह ऐसे ससुर की कहानी कहना चाहती जो उस समय (आजादी से पूर्व) अपनी बहू को पढने की इज्जाजद देते है | यह घटना प्रभावित करती है | 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में अकेलेपन, शिक्षा के लिए संघर्ष, मुक्ति के लिए संघर्ष दिखाई देता है | यह सर्वविदित है, कि आजादी से पूर्व स्त्रियों को पढने-लिखने की इज्जाजद नहीं होती थी | लड़कियों को तो बोझ समझा जाता था, परिवार वाले यही चाहते थे कि बेटियों को जल्द से जल्द विवाह के बँधन में बाँध दे | विवाह के लिए योग्य लड़का की आवश्यकता उन्हें महसूस नहीं होती, अधेड़ व्यक्ति से ही अपनी लड़की को खूंटे से बाँध देना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं होती थी | यही घटना कस्तूरी के साथ घटती है | एक अधेड़ व्यक्ति से कस्तूरी का विवाह उसके परिवार वाले बिना उसके मर्जी से कर देते है | जिस कारण वह अल्पआयु में ही विधवा हो जाती है | यह संसार की विडंबना है, कि जब कोई स्त्री विधवा हो जाती है, तो न तो उसका साथ उसके मायके वाले देते है, न ससुराल वाले | 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में दूसरी स्त्री रूप मैत्रेयी पुष्पा का है | मैत्रेयी पुष्पा का बचपन दु:खों और अकेलेपन के मध्य में व्यतीत हुआ | मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी नौकरी करने के कारण मैत्रेयी का ध्यान नहीं रख पाती और न उसे वह प्यार ही दे पाती है, जिसे बचपन में हर संतान की इच्छा होती है | मैत्रेयी इस व्यथा को आत्मकथा में व्यक्त करती है वह कहती है- "दादी,सरला,शिवकुमार के कितने मजे है, रोते है, जिद करते है | चीख -चिल्लाकर अम्मा को पुकारते है | वे डांटती है तो कंधे उचकाकर भाग जाते है | मेरी माताजी इतना सब नहीं झेल सकती | सो मैंने कभी नहीं कहा कि मैं खेलूँगी, मैं गाऊँगी, मैं झूलूँगी |"[3] माँ का साथ न मिलने के कारण मैत्रेयी के युवा अवस्था के दौरान कभी उसे ड्राईवर, कभी प्रिंसिपल, कभी अपने ही सहपाठियों के दर्वव्यवहार का सामना करना पड़ता है | 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा के अकेलेपन से ग्रस्त स्त्री का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है | उनका ऐसा मानना है कि अकेला बच्चा इस संसार में सबसे ज्यादा असहाय होता है, इस दर्द को उन्होंने खुद झेला था | आत्मकथा में एक जगह वह लिखती है-"अकेली निस्सहाय औरत की अपेक्षा अकेला बच्चा कई गुना असहाय होता है |"[4] इन्हीं कारणों के कारण मैत्रेयी को लगता कि वह एक बंधन में जकड़ी हुई है और इस बंधन की डोर कस्तूरी के हाथ में है | मैत्रेयी पढने में अच्छी थी पर उनका पढने में मन नहीं रमता था | इसका एक कारण उनके अंदर असुरक्षा की भावना थी |इस असुरक्षा

का निवारण करने के लिए मैत्रेयी अपनी माँ से अपना विवाह करने को कहती है | मैत्रेयी सोचती थी कि अगर उसका विवाह हो जायगा तो वह सुरक्षित हो जाएगी | पति के सान्निध्य से उसका अकेलापन भी दूर हो जाएगा | विडंबना यही रही कि विवाह के बाद मैत्रेयी को सुरक्षा तो मिली पर उनका अकेलापन दूर नहीं हुआ | पति के रूप में उन्होंने दोस्त की कामना की थी | पर जब पति ने उन्हें गृहस्थी सँभालने को कहा तो उनका सारा सपना टूट गया | इस तरह मैत्रेयी पुष्पा का सम्पूर्ण जीवन अकेलेपन से भरा रहा |

अमृता प्रीतम और मैत्रेयी पुष्पा दोनों स्त्रियों ने संघर्ष को बहुत करीब से देखा और भोगा है और इस संघर्ष की जटिलताओं को उन्होंने आत्मकथाओं में व्यक्त किया है | 'रसीदी टिकट' और 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथाओं में स्वतंत्र होने की छटपटाहट, लक्ष्य प्राप्ति की आतंरिक अकुलाहट और अधिकार प्राप्ति के संघर्ष को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है |विडंबना यही है, कि दोनों लेखिकाएँ अपनी अस्मिता को निरंतर बचाए रखने के लिए घर, परिवार और समाज रूपी चक्की में लगातार पिसती रहती है | वे संघर्ष करती है , रुढ़िवादी मान्यताओं, आदर्शों और मान्यताओं का |

उपसंहार – समाज को वही प्रेरित कर सकते है, जिसके मन में समाज कल्याण जैसे उदगार हो | अमृता प्रीतम, मैत्रेयी पुष्पा और कस्तूरी समाज से अपने हक़ के लिए संघर्ष तो करती ही है पर उनके मन में यह उदार भावना भी है कि वह अन्य स्त्रियों के बारे में सोचती है | जन कल्याण की भावना सबके मन में नहीं आ सकती | अमृता प्रीतम, मैत्रेयी पुष्पा और कस्तूरी का यह व्यक्तित्व प्रभावित करने के साथ-साथ प्रेरणा भी देता है | अमृता प्रीतम का जीवन स्त्री संघर्ष का ज्वलंत उदाहरण है वे पूरे जीवन संघर्ष करती है उनके इस संघर्ष से वो स्त्रियों को भी शिक्षा मिलती है जो संघर्ष करने से भागती है | पितृसत्तात्मक समाज अमृता प्रीतम, मैत्रेयी पुष्पा और कस्तूरी को दबाने की कोशिश करते है लेकिन वे कहीं भी कमजोर नजर नहीं आती है |

****

सन्दर्भ –

1)http://kavitakosh.org
2)रसीदी टिकट, अमृता प्रीतम, पृ-9
3)कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा,पृ-42
4)कस्तूरी कुण्डल बसै,मैत्रेयी पुष्पा,पृ-120

बाबा साहेब अंबेडकर के अनमोल विचार...

* मैं ऐसे धर्म को मानता हूं, जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा सिखाए।
* हम सबसे पहले और अंत में भी भारतीय हैं।
* भाग्य में विश्वास रखने के बजाए अपनी शक्ति और कर्म में विश्वास रखना चाहिए।
* बुद्धि का विकास मानव के अस्तित्व का अंतिम लक्ष्य होना चाहिए।
* जब तक आप सामाजिक स्वतंत्रता नहीं हासिल कर लेते, कानून आपको जो भी स्वतंत्रता देता है, वो आपके किसी काम की नहीं।
* जीवन लंबा होने की बजाए महान होना चाहिए।
* उदासीनता एक ऐसे किस्म की बीमारी है जो किसी को प्रभावित कर सकती है।
* यदि हम एक संयुक्त एकीकृत आधुनिक भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों के शास्त्रों की संप्रभुता का अंत होना चाहिए।
* जो कौम अपना इतिहास तक नहीं जानती है, वे कौम कभी अपना इतिहास भी नहीं बना सकती है।
* यदि मुझे लगेगा की संविधान का दुरुपयोग हो रहा है तो सबसे पहले मैं इस संविधान को ही जलाऊंगा।
* एक इतिहास लिखने वाला इतिहासकार सटीक, निष्पक्ष और ईमानदार होना चाहिए।
* समानता एक कल्पना हो सकती है, लेकिन फिर भी इसे एक गवर्निंग सिद्धांत रूप में स्वीकार करना होगा।
* हिन्दू धर्म में विवेक, कारण और स्वतंत्र सोच के विकास के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।
* एक महान आदमी एक प्रतिष्ठित आदमी से इस तरह से अलग होता है कि वह समाज का नौकर बनने को तैयार रहता है।
* पति-पत्नी के बीच का संबंध घनिष्ठ मित्रों के संबंध के समान होना चाहिए।
* हर व्यक्ति जो मिल के सिद्धांत कि 'एक देश दूसरे देश पर शासन नहीं कर सकता' को दोहराता है उसे ये भी स्वीकार करना चाहिए कि एक वर्ग दूसरे वर्ग पर शासन नहीं कर सकता।
* इतिहास बताता है कि जहां नैतिकता और अर्थशास्त्र के बीच संघर्ष होता है, वहां जीत हमेशा अर्थशास्त्र की होती है। निहित स्वार्थों को तब तक स्वेच्छा से नहीं छोड़ा गया है, जब तक कि मजबूर करने के लिए पर्याप्त बल न लगाया गया हो।
* मनुष्य नश्वर है, उसी तरह विचार भी नश्वर हैं। एक विचार को प्रचार -प्रसार की जरूरत होती है, जैसे कि एक पौधे को पानी की, नहीं तो दोनों मुरझाकर मर जाते हैं।
* कानून और व्यवस्था राजनीतिक शरीर की दवा है और जब राजनीतिक शरीर बीमार पड़े तो दवा जरूर दी जानी चाहिए।
* समाज में अनपढ़ लोग हैं ये हमारे समाज की समस्या नहीं है लेकिन जब समाज के पढ़े-लिखे लोग भी गलत बातों का समर्थन करने लगते है और गलत को सही दिखाने के लिए अपने बुद्धि का उपयोग करते है यही हमारे समाज की समस्या है।

****

त्रैमासिक साहित्यिक शोध पत्रिका- 'नागफनी' वर्ष-13 अंक 44,जनवरी-मार्च-2023

सनातन : भारतीय सामाज व्यवस्था का पोस्टमॉर्टम

प्रा. डॉ. गिरीश मोरे
अनुवाद : डॉ.उत्तम राजाराम आळतेकर ,Mo-9881056506

॥ १ ॥

शरणकुमार लिंबाले का उपन्यास 'सनातन' 2018 में प्रकाशित हुआ था। उस समय उसके बारे में बहुत कुछ कहा या लिखा नहीं गया था। के. के. बिरला फाउंडेशन, नई दिल्ली द्वारा भारतीय भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास के लिए 'सरस्वती सम्मान 2020' से सम्मानित किया गया। उसी दिन से उपन्यास 'सनातन' चर्चा में आया। इसका दुसरा संस्करण 2021 में प्रकाशित किया गया है। इससे पहले, शरणकुमार लिंबाले ने अपने आसपास की कई घटनाओं और घटित प्रसंगों पर शाब्दिक प्रतिक्रिया देकर उपन्यास लिखें है। उनके 'भिन्नलिंगी' (1991), 'उपल्या' (1998), 'हिंदू' (2003), 'बहुजन' (2006), 'झुंड' (2009), 'ओ' (2015), 'सनातन' (2018) और 'राम राज्य' (2019) ऐसे आठ उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

क्या लिखें, कैसे और कब लिखें यह लेखक का प्रश्न है, उसे वह स्वतंत्रता है। एक बार लेखन प्रकाशित हो जाने के बाद, इसके बारे में क्या कहना या लिखना पाठकों का प्रश्न है, यह उनकी स्वतंत्रता है। लेखक और पाठक की अपनी–अपनी अलग अभिव्यक्ति होती है। और यह स्वतंत्रता का सम्मान साहित्य और सामाजिक व्यवहार के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक भी है।

जबकि लेखक विशेष प्रभाव से लिखता है और पाठक बिना प्रभाव के नहीं होता है। एक निष्प्रभावी या शुद्ध मनुष्य के रूप में मनुष्य का व्यवहार धीरे-धीरे खराब होता जा रहा है। मनुष्य न केवल प्रकृति का एक तत्त्व है, वह समाज का एक अभिन्न अंग भी है। उस समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संस्कृति उन्हें प्रभावित कर रही है। लेखक उस संस्कृति को पचाने की कोशिश करते हुए लिखता है या उस पर कोई वैकल्पिक विचार देता है। पाठक उस पर पारित संस्कृति के साथ पढ़ भी रहा है। अतः स्वाभाविक है कि साहित्यिक कृतियों में व्यक्त विचार और पाठकों द्वारा व्यक्त की गई प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं।

भारत जैसे बहु-जातीय, बहु-धार्मिक, बहुभाषी, बहु-सांस्कृतिक वातावरण में तटस्थ होकर सोचना असंभव नही है, लेकिन आसान भी नहीं है। यह एक शाश्वत सत्य है कि प्रकृति में रहने वाला प्रत्येक प्राणी स्वार्थी है। उस व्यक्ति या समूह के स्वार्थ का स्तर क्या होना चाहिए यह एक सवाल है। यद्यपि यह शाश्वत सत्य है कि जीवन स्वार्थी है, स्वार्थ शाश्वत नहीं है। गौतम बुद्ध के अनुसार स्वार्थ को आवश्यकता में बदलना आना चाहिए। स्वार्थ के लिए की गई हिंसा और आवश्यकता के कारण की गई हिंसा में अंतर किया जाना चाहिए। गौतम बुद्ध आवश्यकता के लिए की गई हिंसा की वकालत करते हैं। इसका पता लगाया जा सकता है कि, लेखन लेखक का स्वार्थ है या यह एक आवश्यकता है। शरणकुमार लिंबाले द्वारा 'सनातन' के माध्यम से ली गई भूमिका स्वार्थी है या आवश्यकता , इसका भी पता लगाया जा सकता है। उससे पहले सनातन क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर खोजना होगा। सनातन का अर्थ है शाश्वत, चिरस्थायी, अखंड, अपरिवर्तनीय या अविनाशी। जो हमेशा के लिए रहता है उसे सनातन कहते है। सनातन का अर्थ है परंपरा द्वारा किए गए कार्यों पर विश्वास करना । इसलिए सनातन शब्द में पारंपरिक या रूढ़िवादी का अर्थ छिपा है। उसके आधार पर, सनातन धर्म वास्तव में क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है। वह धर्म जो अनादि काल से चला आ रहा हो और जिसका कोई अंत न हो, वह सनातन धर्म कहलाता है। हिंदू धर्म शाश्वत है क्योंकि इसमें कोई परिवर्तन नहीं है । जन्म, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक, आत्मा, ईश्वर, जाति व्यवस्था, या प्रथाएं सनातन धर्म की परंपरा में शाश्वत हैं। जो इसके विरुद्ध सोचता हो और व्यवहार करता है, वह शाश्वत नहीं है। शरणकुमार लिंबाले के उपन्यास 'सनातन' में भी इसको खोजा जा सकता है।'सनातन' का समर्पण पत्र- शरणकुमार लिंबाले द्वारा लिखा 'सनातन' का समर्पण पत्र आज के समय में बहुत अलग हो सकता है। *'जो गाय की हत्या के लिए मारे गए थे ।'* इस वाक्य मे आज का वर्तमान इंगित होता है । भूतदया शब्द नया नहीं है। जानवरों के प्रति दया दिखाना इसे भूतदया कहते है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 48 में कहा गया है - 'राज्य आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके से कृषि और पशुपालन की एक ध्वनि प्रणाली स्थापित करने का प्रयास करेगा और विशेष रूप से गायों, बछड़ों और अन्य दुधारू, प्रजनन की नस्लों के संरक्षण तथा सुधार के उपाय करेगा। मवेशियों और उनके वध पर रोक लगाने के लिए... अनुच्छेद 48 (सी) के अनुसार, राज्य देश के पर्यावरण की रक्षा और संरक्षण साथ ही वनों और वन्य जीवन की रक्षा करने का प्रयास करेगा। (2003 : पृ.18) यह निगरानी करना आवश्यक है कि यह खंड लागू होता है या नहीं। उक्त उपवाक्य में कहीं भी धार्मिकता नहीं है।

1976 में महाराष्ट्र में पशु संरक्षण अधिनियम बनाया गया था। इस अधिनियम में गाय की हत्या पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था। 1995 में, गठबंधन सरकार ने पशु संरक्षण संशोधन विधेयक पारित किया। 2014 में, पशु वध पर प्रतिबंध लगाने के लिए पशु संरक्षण संशोधन विधेयक में संशोधन किया गया था। यह बिल 2017 में पास हुआ था। इससे सिद्ध होता है कि गौ-पोषण, संरक्षण और वध निषेध की नीति बहुत पहले की है। इस नीति को धर्म का समर्थन प्राप्त था और समाज में स्वयंभू गौरक्षकों का उदय हुआ।

हालांकि भैंस और रेडा गाय की तरह उपयोगी जानवर हैं, लेकिन उनके वध पर प्रतिबंध नहीं है। गाय में 33 करोड़ देवी-देवताओं के वास करने की धार्मिक मान्यता को बल मिला। स्वयंभू गौरक्षकों में हड़कंप मच गया। राजस्थान में अलवर हाईवे पर वाहनों को रोककर जांच शुरू कर दी गई है, उसमें कुछ गायें मिलीं। आशंका जताई जा रही है कि इन्हें बूचड़खाने ले जाया जा रहा है। पंद्रह लोगों को बेरहमी से पीटा गया। उनमें से एक की मौत हो गई। यह घटना 2017 की है। उसी वर्ष नवंबर में, उमर खान नाम के एक व्यक्ति को एक गौ रक्षक के हमले में मात्र संदेह के आधार पर मार दिया गया था। 2018 में रकबर नामक युवक की हत्या कर दी गई थी। इन सभी मामलों में बिना सच या झूठ का पता लगाए कानून तोड़ने की घटनाएँ घटित हुई । 2017 में गोरक्षा के नाम पर हुई घटनाओं और उपन्यास 'सनातन' की भेंट को सहसंबद्ध किया जा सकता है। मारे गए लोग मुसलमान थे। भारतीय मुसलमानों में जो धर्मांतरित हैं, शूद्रतिशूद्र जातियों ने अधिक से अधिक धर्मांतरण किया है। इसलिए 'सनातन' की आहुति दर्शाती है कि जो लोग गोहत्या के संदेह में मारे गए थे वे भारतीय धर्मांतरित थे। वह सनातन धर्म के सिद्धांत पर अछूत थे। उनके प्रति सहवेदना इस समर्पण पत्र मे व्यक्त की गई है। 'सनातन' में समय का टुकडा और प्रवृत्ति -अगर हम ' सनातन ' के समय के टुकडे को समझें, तो सामाजिक जीवन की सीमा और प्रवृत्ति को समझा जा सकता है। कालशरणता और कालभेदकता की प्रवृत्ति समय समय का फल होता है। कालशरणता के कारण संघर्ष नहीं होता है, लेकिन कालभेदकता सामाजिक जीवन में उथलपुथल का कारण बन सकता है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ हर युग में पायी जाती हैं। इसलिए 'सनातन' मे चित्रित समय का टुकडा और प्रवृत्ति को समझना चाहिए।सोनाई गांव के महार बस्ती के युवा लड़के भीमनाक और सिदनाक होली का त्योहार मनाते हैं। " गाँव की होली तब तक

नहीं जलती जब तक महारों की होली से अंगार ले जाकर जलाई नहीं जाती। यह हमारी होली की शान है।" (लिंबाले : 2021,पृ.16) ऐसे अंबरनाक गर्व से कहता है। गांव के लोग महारों की होली से अंगार ले जाकर गांव की होली जलाते है। ' सनातन ' उपन्यास की शुरुआत इसी घटना से होती है।भीमनाक और सिदनाक ब्रिटिश सेना में शामिल होते है । सिदनाक अपनी ही भूमि पर इधर-उधर तबादला होते-होते रिटायर हो जाता है। लेकिन भीमनाक को लंदन जाना पड़ता है । वह कैरेबियन 'मेरी' नामक लडकी से शादी करता है। उनको एक लड़का होता है जिसका नाम पीटर था। पीटर की शादी नीग्रो मूल की नाइजीरियाई बार्बरा से हुई थी। उनके दो बेटे हैं, कॉर्टर और जॅक। मजदूरों को लाना और भेजने वाले जहाज पर काम करते हुए भीमनाक सौ साल जीता हैं। हालाँकि, पोता कॉर्टर अपने दादा के पैतृक गाँव का दौरा करने के लिए भारत आता है। वह सोनाई गांव के महार बस्ती में मरी हुई गाय का मांस खाने वाले महारों को रोकता है। यह देखकर कि कोई उसकी बात नहीं सुन रहा है, वह मांस पर मल फ़ेक देता है। महार लोंग कॉर्टर की बात से सहमत होते हैं। लेकिन यह सोचकर कि उसने मरी हुई गाय का मजाक उड़ाया है, गांव के युवक उसे लाठी और कुल्हाड़ियों से पीटते है । नरसोपंत का बेटा वेदांत और हिंदू संगठन के स्वयंसेवक आते हैं, वेदांत अंतिम संस्कार करने के लिए सहमत होते हैं और उपन्यास पूरा हो जाता है। दिसंबर 1600 में भारत में स्थापित कंपनी ' द कंपनी ऑफ मर्चेंट्स ऑफ लंदन ट्रेडिंग टू द ईस्ट इंडीज ' का उल्लेख आया है। एक और कंपनी 1698 में भारत में प्रवेश करती है। 'सनातन' में उल्लेख मिलाता है कि 1708 में दोनों कंपनियों का विलय हुआ और 'ईस्ट इंडिया कंपनी' बनाई गई। व्यापार करने आई ईस्ट इंडिया कंपनी को मुग़ल-मराठों ने रोक लिया था I 1757 की प्लासी की लड़ाई से अंग्रेजों ने भारत में शासन करना शुरू किया। कंपनी ने व्यापार की रक्षा और सत्ता स्थापित करने के लिए 1758 से भर्ती शुरू की। विभिन्न जातियों के लोगों को सेना में भर्ती किया जाता था। 1781 में, ब्रिटिश सरकार ने कंपनी पर नियंत्रण कर लिया। अंग्रेजों ने भारत में पूर्ण सत्ता स्थापित करने की पहल की। कई संस्थानों पर कब्जा कर लिया। उत्तर पेशवाई के दूसरे बाजीराव को अंकित करना शुरू किया। 1818 में भीमा कोरेगाँव की लड़ाई ने पेशवाई को समाप्त कर दिया। इस समय के दौरान, मिशनरी ख्रिश्चन धर्म का प्रचार कर रहे थे और धर्मांतरण करवा रहे थे। हिंदुत्व खतरे में था। इसलिए हिंदू धर्म के रक्षक सक्रिय हो गए। ब्रिटिशों का धार्मिक हस्तक्षेप स्वीकार्य नहीं था। आदिवासी और हिंदू धार्मिक सैनिकों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। विद्रोहियों को सेना से बर्खास्त कर दिया गया था। अछूत सैनिकों को भी हटा दिया गया। इस अवधि के दौरान पुणे में सामाज सुधार आंदोलन शुरू हुआ। 1848 में जोतीराव फुले जी ने लड़कियों के लिए एक स्कूल शुरू किया। जैसे ही अंग्रेजों द्वारा हथियार जब्त किए गए, अछूत महार सैनिकों के अधिकार समाप्त हो गए। वे धार्मिक गुलामी में फंस गए। 1903 में शिवराम जानबा कांबले ने सासवड में महारों की एक सभा का आयोजन किया। 1588 को अछूतों को सेना में भर्ती करने का अनुरोध करते हुए महारों का समर्थन पत्र ब्रिटिश सरकार को प्रस्तुत किया गया।

1918 में, साउथ बरो कमेटी के समक्ष, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने गवाही देकर अछूतों का पक्ष लिया। राजर्षि शाहू जी ने पिछड़े लोगों के लिए आरक्षण की नीति की घोषणा की थी। महर्षि विठ्ठल रामजी शिंदे जी का अस्पृश्यता का काम शुरू था।'सनातन' उपन्यास में चित्रित समय लगभग दो सौ से ढाई सौ वर्ष पुराना है। इस समय की प्रवृत्ति धर्मांतरण थी।निजाम शासन के दौरान महार मुसलमान बन गए। बादनाक महार चांदअली बन जाता है। बाद में, सिदनाक महार ख्रिश्चन बन गया और फिलिप बुश बन गया । रतनाक स्टीफन बन जाता है। इस काल में सैनिकों की प्रवृत्ति भी ध्यान देने योग्य है। भीमनाक और सिदनाक सेना में शामिल हो गए। स्वाभिमान का जीवन जीने लगते हैं। इसके अलावा पलायन की प्रवृत्ति को भी उपन्यास में विशेष स्थान प्राप्त है। गांव में हो रहे अन्याय को दूर करने के लिए गांव छोड़ा जा रहा था।

धर्म की रक्षा के लिए कार्य करने की सनातन प्रवृत्ति इस समय के टुकडे के केंद्र में आ गई है। देवगढ़ के गोविंद भट्ट सनातन धर्म की रक्षा के लिए धर्मांतरण को रोकने की कोशिश करते हैं। उनकी विरासत को उनके बेटे मोरोपंत और नरसोपंत जारी रखते है। नरसोपंत धर्म परिवर्तन लाने वाले फादर एडमंड को गोली मारकर हत्या कर डालाता है । उसका पुत्र वेदांत अपने पूर्वजों की शाश्वत परंपरा को जारी रखता है। सनातन प्रवृत्ति की तरह अंग्रेजों की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति भी इस समय के टुकडे में आ गई है। सैनिकों की भर्ती स्वार्थ के लिए की जाती है। संख्या बढ़ाने और ब्रिटिश सरकार को लाभ पहुंचाने के लिए मिशनरियों द्वारा धर्मांतरण किया जाता है। यह समस्याओं का समाधान नहीं करता है। इसके अलावा भारतीय मजदूरों को गुलाम बनाकर देश के बाहर की कोलोनी में मेहनत करवाने भेजा जाता हैं।कुल मिलाकर 'सनातन' का इतिहास निजाम शासन, उत्तरी पेशवाओं, 1757 में प्लासी की लड़ाई, 1818 में भीमा कोरेगांव की लड़ाई, 1857 के विद्रोह और सुधारवादी आंदोलनों का है। इस काल में सनातन प्रवृत्ति जो परम्परागत सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयास करती है, धार्मिक बंधनों को सहने की प्रवृत्ति, अन्याय से मुक्त होने की प्रवृत्ति, परंपरागत विरोधी प्रवृत्ति, अन्याय के खिलाफ लड़ने वाले आदिवासियों की जुझारू प्रवृत्ति और लोगों को गुलाम बनाने की अंग्रेजों की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से उपन्यास ' सनातन ' मे दर्शाया गया है। शरणकुमार लिंबाले का उपन्यास 'सनातन सामाजिक व्यवस्था के पेट के रोग का निदान करता है। उपन्यास उन एंटीबॉडीज पर भी विचार करता है जो रोग को मिटाने के लिए उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, यह सामाजिक व्यवस्था में शाश्वत प्रवृत्ति को भी प्रकट करता है। ऐसा करते हुए उपन्यासकार कुछ टिप्पणी करता है, जिससे उसकी भूमिका को भी याद किया जाता है।

॥ २ ॥

'सनातन' का निदान -शरणकुमार लिंबाले के उपन्यास 'सनातन' में भारतीय सामाजिक व्यवस्था का पोस्टमार्टम है। बीमार व्यक्ति डॉक्टर के पास जाता है और जांच करवाता है। डॉक्टर उसमें रोग का कारण बताता है। यदि निदान सही है, तो उपचार सही ढंग से किया जा सकता है। केवल अनुमान और कल्पना से उपचार करने से रोग ठीक नहीं हो जाता। यह सूत्र उपन्यास 'सनातन' पर लागू किया जा सकता है। शरणकुमार लिंबाले उपन्यास 'सनातन' में सामाजिक व्यवस्था के निदानकर्ता की भूमिका निभाते नजर आ रहे हैं। उपचार के लिए पहला कदम निदान होता है। उपन्यास 'सनातन' इसका निदान करता है और अगला 'रामराज्य' (2019) क्या यह उपन्यास सामाजिक व्यवस्था की बीमारी का इलाज हो सकता है? इसकी भी अलग से तलाश की जानी आवश्यक है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में रोग का निदान कौन करता है, जिनको समाज व्यवस्था के सदमे, दर्द और पीड़ा सहनी पड़ती हैं। सामाजिक व्यवस्था का लाभ पाने वाले कभी भी निदान के लिए आगे नहीं आएंगे। उन्हें लगता है कि सामाजिक व्यवस्था के आंतरिक और बाहरी पहलू बेहद स्वस्थ हैं। इस अर्थ से लेखक एक निदानकर्ता की भूमिका ग्रहण करता है, उसे सिस्टम के साथ एक दाहक अनुभव आया होगा ऐसा लगता है। न केवल भारत में बल्कि दुनिया के किसी भी देश के, नागरिकों को दूसरों की तरह इंसान के रूप मैं रहने में सक्षम होना चाहिए। यह उनका प्राकृतिक अधिकार है। हर कोई हर किसी की तरह इंसान के रूप में नहीं रह सकता क्योंकि मानव निर्मित प्रणाली कुछ लोगों के लिए बाधाएं पैदा कराती है । इसके पीछे कुछ लोगों का

स्वार्थ निहित है। यह सत्ता का, हित का और साम्राज्यवाद का स्वार्थ है। यह उपन्यास इस बारे में सोचता है कि एक भारतीय व्यक्ति के रूप में जीने में क्या क्या बाधाएँ हैं।भारत में बुद्धि के आधार पर बनाई गई चतुर्वर्ण प्रणाली प्रायः शोषण पर आधारित है। यह चतुर्वर्ण प्रणाली है जो निचले वर्ण का शोषण करने वाले ऊपरी वर्ण का खुलकर समर्थन करती है। इसके माध्यम से गठित विभिन्न उच्च-निम्न जातियाँ इस पारंपरिक व्यवस्था का पालन करती हैं ।

शोषक - शोषित की भूमिका में व्यवहार करने के लिए विभिन्न जातियों ने कई रुढियों, परंपराओं और रीतिरिवाजों को विकसित किया है। उन परंपराओं में से एक अस्पृश्यता है। 'सनातन' उपन्यास में अस्पृश्यता की परंपरा पालन करनेवाले दोनों गट का चित्रण किया गया है। उसमें भी महार जाति को अछूत जाति मानकर गावं का होनेवाला व्यवहार चित्रित किया गया हैं। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि अछूतों की परछाई भी न पड़े। बादनाक, अमृतनाक, अंबरनाक, भूतनाक, येसनाक, सिदनाक, भीमनाक, धोंडनाक, रायनाक, रतनाक, जतनाक, कृष्णनाक, नागनाक, खंडनाक और अलग नाम धारण करनेवाला चोखा महार जो अपवाद के रूप में आए थे, वे सभी महार जाति के लोग हैं जो अस्पृश्यता की प्रथा का पालन करते हैं। हम अछूत हैं, ऊंची जाति के लोगों को अपना स्पर्श न हो इस बात का ख्याल रखते हैं। प्रतिदिन मंदिर जाने वाले चोखा महार अंदर जाने की बजाय सवर्णों द्वारा मंदिर के बाहर छोड़े गए जूतों के पास बैठ जाते हैं। बाहर छोडा गया जूता नरसोपंत का है या किसी और का हैं, उसको जबानी याद है।

शोषक – शोषितों के लिए बनाई और एक परंपरा है गावकी। गावकी गाँव के मामलों को चलाने के लिए बनाइ गई गाँव की परंपरा का एक अभिन्न अंग गावकी होता है। गांव के विभिन्न कार्य कौनसे है और उसे कौन करेगा इस संबंध में 'सनातन' में एक तस्वीर रेखांकित की गई है। सोनाई गांव के महार बस्ती के अंबरनाथ, भूतनाक, यसनाक और धोंडामाय यह गांव के येसकर थे । गांव की सेवा करना उनका काम था । उन पर लगाई गई पाबंदियों को लेकर एक बयान है - ' महारों का सार्वजनिक स्थानों पर घूमना प्रतिबंधित है। उनके लिए एक अलग बस्ती, एक अलग जलकुंड और एक अलग शमशान निर्धारित है। महारों को जाती के स्थान के अनुसार वर्तन करना पड़ता था।…महार का मतलब दो पैरों वाला जानवर। वे गुलामी के सहज आदी थे।…लोग महारों को मरे हुए जानवर को घसीटकर ले जाने को कहते। महार मरे हुए जानवरों को घसीटते हुए ले जाते । (लिंबाले: 2021, पृ. 20) महारों को गाँव से या बाहर से आए किसी भी उच्च जाति के व्यक्ति की सेवा करनी पड़ती । सेवा करने से या सेवा करवाने के कारण समस्याएँ उत्पन्न होती नहीं, लेकिन उस समय किया गया खराब व्यवहार या शोषण सामाजिक जीवन को रोगी बना देता है। शोषण के आधार पर मानदंड बनाने के लिए कई मिथक बनाए जाते हैं। महारों की वर्तमान स्थिति के लिए पिछले जन्मों के पाप ही जिम्मेदार है ऐसा कारण दिया जाता है । महार अछूत क्यों हैं ?, वे गाँव के बाहर क्यों रहते हैं ?, वे मरे हुए जानवरों का मांस क्यों खाते हैं ?, इसका उत्तर कई मिथकों में मिलता हैं। उनमें से कुछ कहानियाँ 'सनातन' उपन्यास में छपी हैं। जैसे कि महादेव- पार्वती के गाय खाने वाले बच्चे की कहानी, गाय के चार पुत्रों में से चौथे पुत्र की कहानी जिसने गाय को अपने पेट में रखा । अछूतों के मन में धार्मिक किंवदंतियों के समर्थन से रीति-रिवाजों को स्थापित किया जाता है। इसलिए अस्पृश्यता और ग्राम्यता देखी जाती है। क्या खाना है, क्या पहनना है, कैसे व्यवहार करना है, इसके नियमों का पालन किया जाता है। यह 'सनातन' उपन्यास में दर्शाया गया है। अस्पृश्यता की प्रथा शारीरिक ही नहीं मानसिक हो जाती है। ऐसी मानसिकता उच्च जाति के शोषकों के साथ अछूतों लिए भी आम है I होली के बाद धुलवड (महाराष्ट्र में होली के बाद दूसरे दिन यह त्यौहार मनाया जाता है) आती है I सिदनाक नदी में नहाता है I नदी में नहाने से उच्च जाति लोग पवित्र होते है ,उनका पाप धुल जाता है लेकिन निवेदक कहता है, " सिदनाक कितनी ही बार नदी मे नहाता है फिर भी वह अछूत ही रहता है ...वह अछूत ,उसका शरीर अछूत, उसकी छाया अछूत, उसकी आवाज अछूत है। "(वही, पृ.17) हम अछूत है, महार है यह मानसिकता रीवाजों का संस्कार है। यह मानसिकता ' सनातन ' उपन्यास में दर्शाया गयी है। में एक तस्वीर रेखांकित की गई है। सोनाई गांव के महार बस्ती के अंबरनाथ, भूतनाक, यसनाक और धोंडामाय यह गांव के येसकर थे । गांव की सेवा करना उनका काम था । उन पर लगाई गई पाबंदियों को लेकर एक बयान है -' महारों का सार्वजनिक स्थानों पर घूमना प्रतिबंधित है। उनके लिए एक अलग बस्ती, एक अलग जलकुंड और एक अलग शमशान निर्धारित है। महारों को जाती के स्थान के अनुसार वर्तन करना पड़ता था।…महार का मतलब दो पैरों वाला जानवर। वे गुलामी के सहज आदी थे।…लोग महारों को मरे हुए जानवर को घसीटकर ले जाने को कहते। महार मरे हुए जानवरों को घसीटते हुए ले जाते । (लिंबाले: 2021, पृ. 20) महारों को गाँव से या बाहर से आए किसी भी उच्च जाति के व्यक्ति की सेवा करनी पड़ती । सेवा करने से या सेवा करवाने के कारण समस्याएँ उत्पन्न होती नहीं, लेकिन उस समय किया गया खराब व्यवहार या शोषण सामाजिक जीवन को रोगी बना देता है। शोषण के आधार पर मानदंड बनाने के लिए कई मिथक बनाए जाते हैं। महारों की वर्तमान स्थिति के लिए पिछले जन्मों के पाप ही जिम्मेदार है ऐसा कारण दिया जाता है । महार अछूत क्यों हैं ?, वे गाँव के बाहर क्यों रहते हैं ?, वे मरे हुए जानवरों का मांस क्यों खाते हैं ? , इसका उत्तर कई मिथकों में मिलता है। उनमें से कुछ कहानियाँ 'सनातन' उपन्यास में छपी हैं। जैसे कि महादेव- पार्वती के गाय खाने वाले बच्चे की कहानी, गाय के चार पुत्रों में से चौथे पुत्र की कहानी जिसने गाय को अपने पेट में रखा । अछूतों के मन में धार्मिक किंवदंतियों के समर्थन से रीति-रिवाजों को स्थापित किया जाता है। इसलिए अस्पृश्यता और ग्राम्यता देखी जाती है। क्या खाना है, क्या पहनना है, कैसे व्यवहार करना है, इसके नियमों का पालन किया जाता है। यह 'सनातन' उपन्यास में दर्शाया गया है।

अस्पृश्यता की प्रथा शारीरिक ही नहीं मानसिक हो जाती है। ऐसी मानसिकता उच्च जाति के शोषकों के साथ अछूतों लिए भी आम है I होली के बाद धुलवड (महाराष्ट्र में होली के बाद दूसरे दिन यह त्यौहार मनाया जाता है) आती है I सिदनाक नदी में नहाता है I नदी में नहाने से उच्च जाति लोग पवित्र होते है ,उनका पाप धुल जाता है लेकिन निवेदक कहता है, " सिदनाक कितनी ही बार नदी मे नहाता है फिर भी वह अछूत ही रहता है ...वह अछूत ,उसका शरीर अछूत, उसकी छाया अछूत, उसकी आवाज अछूत है। "(वही, पृ.17) हम अछूत है, महार है यह मानसिकता रीवाजों का संस्कार है। यह मानसिकता ' सनातन ' उपन्यास में दर्शाया गयी है। मृत्यु के बाद ब्राह्मण दूसरे के शरीर में प्रवेश करता है, अर्थात आत्मा शरीर बदलती है। महारों के पास यह अवसर नहीं है। उसके पास आत्मा नहीं बल्कि भूत होता है, वह भूत बन जाता है। गलत करने वाले से बदला लेता है। ऐसी कई मान्यताएं समाज के गर्भ में पलती हैं।भारतीय धार्मिक व्यवस्था में गाय का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके शरीर में तैंतीस करोड़ देवता निवास करते हैं। अछूतों द्वारा उसे मारना और क्षत-विक्षत करना अपराध है। अर्जुन खताल की गाय मर जाती है और महारों को बुलाया जाता है। महार मरी हुई गाय को लाकर काट कर उसका मांस खाते हैं। अगले दिन गाँव के लोग महारों को चावड़ी में बुलाकर, हाथ बांधकर उनकी पिटाई करते हैं। देवराव पाटील कहते हैं, " तुमने एक गाय को मार डाला है ... गाय को मारते हो , गोमांस खाते हो ? आपने हिंदुओं की भावनाओं को आहत किया है। तुममे घमंड भर गया है ।

" (वही, पृ. 34) इसपर महारों के पास कोई जवाब नहीं है, भले ही उत्तर होता भी तो विस्वास नहीं करते। उपन्यास 'सनातन' से पता चलता है कि यह थोपा गया शोषण व्यवस्था के पेट में है। "व्यवस्था के पेट में कुछ मान्यताएँ और अंधविश्वास हैं, जो अछूतों को शोषण की ओर ले जाते हैं। सोनाई के महारों का मानना था कि मरिआई (हिन्दू देवता का नाम) के क्रोध के कारणही गांव ने उन्हे पीटा है। वे देवी को शांत करने की कोशिश करते है। उसके सामने बैल की बलि चढाते हैं। उसकी पूजा करते है। वे उसकी जय -जयकार करते हैं और उससे आशीर्वाद मांगते हैं। गांव में महामारी का रोग फैलता है। गांववाले महारों से कहते हैं कि, अगले गांव की सीमा पर छोड़ी गई मरिआई की गाड़ी अगले गांव की सीमा पर छोड़ दे I महार उस काम को अंजाम देते हैं। महार अपने आप अंधविश्वास में नहीं फंसते, यह व्यवस्था उन्हें फंसाती है, इसका चित्र 'सनातन' में आया है। अछूतों को रिवाज तोड़ने पर सजा का सामना करना पड़ता है। अगर उंची जाति के लोग नियम तोड़ते हैं तो कोई बड़ी सजा नहीं है। भीमनाक और सिदनाक सेना में शामिल हो जाते हैं, जिसका अर्थ है नियम तोड़ना। भीमनाक नौकरी पर था तब कोंडाआई की मृत्यु हो गई। बभ्रुवान खराटे शव यात्रा को रोक देता है I परंपरा से महारों को दी गई शमशान भूमि पर कब्जा कर वह वहां बुआई करता है। लाश पर लाठी से वार किया जाता है। शव को घर में ही दफनाने का निर्णय लिया जाता है। अकबर अली लाश को अपने खेत में दफनाने के लिए जगह देता है और आगे की आपदा टल जाती है। गांव में रहकर भी शमशान भूमि का अधिकार छीनने वाला शोषण 'सनातन' उपन्यास में आ गया है। सामाजिक व्यवस्था के पेट में पलने वाला यह रोग ध्यान में रखना आवश्यक है।

देवगड गांव के रतनाक महार ने अपने बेटे जतनाक की शादी के लिए महिपतिराव देशमुख जैसे एक मतबार आदमी को आमंत्रित किया। सेना में भर्ती होने कि जतनाक की इच्छा महिपतिराव को परेशान करती है। वह सोचता है, ' अंग्रेजों ने हिंदुओं पर शासन करना चाहिए, लेकिन महारों को सेना में नहीं लेना चाहिए। अंग्रेज गलती कर रहे हैं। (वही, पृ. 81) रतनाक अपने पुत्र की शादी में मीठा भोजन देते हैं। क्या खाना चाहिए इसका नियम बनाने वाले गाँव के गुंडे दावत पर हमला करते हैं। भोजन में मिट्टी मिलाई जाती है। दुल्हे को मारपीट की जाती है। दुल्हन के भाई की हत्या कर दी जाती है। मंडप तोडा जाता है। यह प्रणाली उन लोगों को दंडित करती है जो क्या खाएं और क्या न खाएं के खिलाफ जाते हैं चुनिंदा लोगों के खुशी के लिये पारंपरिक व्यवस्था अछूतों की बलि देने से हिचकिचाती नहीं। देवगड में देशमुख के बुरुज का बांधकाम गिर रहा था। कहा जाता है कि अगर किसी गर्भवती महार महिला को वहीं दफना दिया जाए तो निर्माण बच जाएगा। चोखा महार की पत्नी राही गर्भवती थी। उसे यह खबर चलते ही वह अपनी पत्नी के साथ गांव छोड देता है। सोनाई के भूतनाक की गर्भवती पत्नी पार्वती खेतों में काम करने गई थी। वहां से उसे उठाकर निर्माण की नींव में दफनाया जाता है। उपन्यास 'सनातन' से पता चलता है कि शोषण की ऐसी कई प्रथाएं सामाजिक व्यवस्था के पेट में हैं।

पेशवाई अछूतों के उत्पीड़न का सर्वोच्च चरम था। महार गले में मटकी और कमर में झाडू बांधे बिना नहीं घूमते, यह प्रथा पेशवाई की देन थी। यदि कोई अछूत पुणे में आखाड़े के सामने से गुजरता है, तो उसका सिर गोल पहाड़ी मैदान में काट दिया जाता था। इसका भी उल्लेख 'सनातन' में आया है।

सेना से बर्खास्त लक्ष्मण अपने दामाद माणिक को अतीत की एक गन्दी प्रथा के बारे में बताता है। अछूत स्त्री को चोली पहनने का कोई अधिकार नहीं था। अगर उसने चोली पहनी तो उसके स्तन काटे जाते थे। उसकी चोली फाड़ दी जाती थी। उसे पेड से उलटा लटकाया जाता था। उच्च जाति के पुरुषों को उसके नंगे स्तनों को देखने का अधिकार था। जब राजा मंदिर की ओर जाते तो अछूत महिलाओं को नंगे स्तनों से दोनों तरफ खड़े होकर फूलों की वर्षा करनी पड़ती थी। इस प्रथा को 1814 में त्रावणकोर के निवासी कर्नल मुन्रो ने बंद कर दिया था। उच्च जाति के लोगों को घुस्सा आया इसलिए राजा ने 1929 में फिर से इस प्रथा शुरू की। नंगेली इस महिला को अपने स्तनों का टैक्स देना पडा था। इसका भी उल्लेख 'सनातन' में किया गया है। ' जब टैक्स लेने अधिकारी नंगेली के घर गए, तो नंगेली ने उनको स्तन काट कर दिए। अत्यधिक रक्तस्राव के कारण उसकी मौत हो गई। '(पृ.158) इस कर के खिलाफ विरोध प्रदर्शन हुए और कर वापस ले लिया गया। बाद में त्रावणकोर के राजा ने अछूत महिलाओं को ऊपरी वस्त्र पहनने की अनुमति दी। 'सनातन' में पाया जाने वाला एक और अंधविश्वास सामाजिक व्यवस्था में अंतर्निहित बीमारी का निदान करता है। यज्ञ के पूरा होने के बाद, ब्राह्मण भोजन शुरू होता है। केले के पत्तों पर बचे झूटे भोजन पर अछूत लोग लेटते हैं। ब्राह्मण द्वारा छुआ और बचा झूटा भोजन शरीर से चिपकने से अछूतों को पुण्य मिलता है, ऐसे अछूतों के मन पर थोपा जाता है।

' सनातन ' यह उपन्यास भारतीय सामाज के पेट में पलने वाली बीमारी का निदान करता है। अछूतों के शोषण को उजागर करता है। महार जाति को अस्पृश्यता, जातिवाद, उच्च-नीच का भाव, दासता, शिक्षा पर प्रतिबंध, व्यवसाय पर प्रतिबंध, कपड़ों पर प्रतिबंध, भोजन पर प्रतिबंध के माध्यम से गुजरना पडता था। विभिन्न प्रतिबंधों को धर्म, पुराणों, किंवदंतियों, पुण्य और पाप द्वारा समर्थित किया जाता था। प्रतिबंध के खिलाफ व्यवहार करने वालों को कड़ी सजा दी जाती थी। अछूत महिलाओं को उच्च जाति के पुरुषों के लिए नग्न रहना पड़ता था। उनकी चोली पहनने पर प्रतिबंध था। ' सनातन ' यह उपन्यास अछूतों के शोषण की एक्स-रे कॉपी है। इसलिए भारतीय सामाजिक व्यवस्था की यह एक्स-रे कॉपी मानवता को कोखला करने वाली बीमारी का निदान बनती है। धर्मांतरण, स्थलांतर, देशांतर और सिपाईगिरी-उपन्यास 'सनातन' न केवल निदान करता है बल्कि सामाजिक व्यवस्था में काम कर रहे एंटीबॉडीज को भी दिखाता है। यह उपन्यास व्यवस्था के अन्याय से छुटकारा पाने के लिए अछूत लोग कौनसा व्यवहार करते थे, इस तरफ दिशानिर्देश करता है।

एक प्रतिबंधित और अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए धर्मांतरण, स्थलांतरण, देशांतरण और शिपाईगिरी परिवर्तन के मूल्य हैं। व्यवस्थावाद और परंपरावाद के खिलाफ रुख और प्रयास ही परिवर्तन है। एक ही समय मे या एक समूह में सभी लोग परंपरा को तोड़ने के लिए कार्य नहीं कर सकते हैं। 'सनातन' में परिवर्तन की राह बनाने वाले पात्रों का चित्रण उपन्यासकार ने किया गया है। अस्पृश्यता और जातिवाद के दुखों से बाहर निकलने का एक तरीका धर्मांतरण है। 'सनातन' में परिवर्तित होने वाला पहला व्यक्ति सोनाई गांव का है। ' बीस-पच्चीस झोपड़ियाँ। उनमें से दो –तीन लोगों ने धर्मांतरण किया हैं I उनकी कुटिया खाली पड़ती है। वे मुस्लिम मोहल्ले में रहने चले गए। सोनाई बहमनी राज्य का एक गाँव था। ' (पृ.18) निज़ाम के शासन के कारण, भले ही गाँव में मुसलमानों के केवल दो घर थे, गाँव उनसे डरता था। महार इस तथ्य को जानते थे, यही कारण था कि ,उनमें से तीन ने मुस्लिम धर्म स्वीकार किया। इससे अन्याय कुछ हद तक कम हुआ है। सोनाई में अंबरनाक के दादा बादनक महार, बीदर के वज़ीर महमूद गांव में आने के बाद उनकी सेवा करते हैं। वज़ीर उससे प्यार से पूछताछ करता है। नतीजा यह हो जाता है , बादनाक एक मुसलमान बन जाता है और चाँद अली नाम धारण करता है। गांव में मीनार बनाता है। गांव की इस चाँद मीनार को देखकर अंबरनाक भी मुसलमान बनना चाहता है। उन्हें हिंदू धर्म के प्रति गहरा प्रेम और घृणा भी थी। (पृ.21) लेकिन अंबरनाक का धर्मपरिवर्तन लंबे समय तक विचार के स्तर पर बना रहता

है। वह अपने जाति के लोगों के साथ अन्याय सहता है। मरे हुए जानवरों को घसीटता है, खाल निकालता है, मरे हुए जानवर का मांस खाता है, गांववालों की पिटाई सहन करता है। बाद में वह बुढ़ापे मे मुसलमान हो जाता है। निजाम शासन के दौरान महारों का मुसलमानों में धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही थी। ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश शासन भारत में आया। इसलिए लोग ख्रिश्चन धर्म स्वीकार करने लगे। देवगढ़ में सोनाई की तुलना में बड़ी संख्या में धर्मांतरण होते हैं। बेटे की शादी में मीठा खाना परोसने पर गांववालों ने रतनाक महार की पिटाई कर दी। परिणास्वरूप रतनाक महार हवेली का काम छोड़ देता है। ख्रिश्चन धर्म स्वीकार करता है। वह स्टीफन बन जाता है , बेटा हैरी बन जाता है। रतनाक की पत्नी केरसुनी रिबेका बन जाती है। जतनाक की पत्नी येसुबाई सेरेना बन जाती है। फादर फ्रांसिस उन्हें बाप्तिस्मा देते है। स्टीफन चर्च निर्माण के लिए जाता है। फादर फ्रांसिस की वजह से ही धर्म की हकीकत जानी जाती है। पिछले जन्म के पाप के कारण महार का जन्म हुआ है यह समझ दूर हो जाता है। स्टीफन बना रतनाक हिंदू देवीदेवताओं की मूर्तियां फेंक देता है। यह परिवर्तन धर्मांतरण के कारण हुआ है। इसलिए, धर्मांतरण सामाजिक व्यवस्था की बीमारी को ठीक करने के लिए एक एंटीबॉडी के रूप में कार्य करता है।भीमनाक और सिदनाक सेना में शामिल होने के बावजूद, गांव के लिए वह महार ही रहते हैं। गांव में उनका अपमान किया जाता था। इसलिए सिदनाक ने ख्रिश्चन धर्म स्वीकार कर लिया और फिलिप बुश बनकर देवगड़ में रहने लगा। 'धर्मांतरण अछूतों की गुलामी को नष्ट कर सकता है', इस फादर फ्रांसिस के विचारों से वह सहमत हैं।देवगड में कई महार और आदिवासी धर्म परिवर्तन करते हैं। ' नौ महार परिवारों ने केवल इस कारण से बाप्तिस्मा लिया कि ख्रिश्चन बनने के बाद, वे मोर तालाब का पानी पी सकते हैं। ईसाई मिशनरियों ने धर्मार्थ अस्पताल शुरू करते है I अनेक आदिवासी ख्रिश्चन धर्म को स्वीकार करते है I' (पृ.89) सायखेड़ गांव के निकट कलवण गांव के अछूत एक साथ धर्म परिवर्तन करने जा रहे हैं और फादर एडमंड उन्हें बाप्तिस्मा देने जा रहे हैं। झोल संस्थान के दीवान भी ख्रिश्चन धर्म अपनाते हैं, लेकिन ये धर्मांतरण सवर्ण जातियों का हैं। उसका कोई विरोध नहीं करता है। निचली जाति का धर्म परिवर्तन एक विद्रोह है। उपन्यास 'सनातन' अन्याय के खिलाप धर्मांतरण और स्वार्थ के लिए धर्मांतरण के अंतर पर भी प्रकाश डालता है।

फिलिप बुश(सिदनाक)का परिवार नौकरी से अवकाश लेने के बाद झोल संस्थान में रहता है। फिलिप सोनाई को जाता है। ख्रिश्चन धर्म के कारण भी अगर पैसा नहीं कमा पाए तो उसका क्या फायदा ऐसी बात करनेवाले वीरू धनगर से फिलीप कहता है , इंसानियत मिलती है। "(पृ.118) सैन्य भर्ती के बारे में महार बस्ती के महादेव, लक्ष्मण, बलभीम, केशव आदि को जानकारी देता है। कुछ दिनों के बाद यह सरे जवान झोल संस्थान में आकर उसे मिलते है I महादेव कहता हैं, "हम ख्रिश्चन बनना चाहते हैं।" लक्ष्मण कहता है , "हम ख्रिश्चन लड़कियों से शादी करना चाहते हैं। उस समय फिलिप घुस्से से कहता है महारों को लड़कियों के लिए, पैसे के लिए नहीं बदलना है ; महार अपना कलंक दूर करने के लिए धर्मांतरण करते हैं। मुझे किसी धर्म की परवाह नहीं है, मुझे केवल अपनी अवज्ञा की परवाह है। धर्म मेरा व्यवसाय नहीं है। "(पृ.126) सिदनाक के विचार अछूतों के धर्मांतरण के कारणों की व्याख्या करते हैं। उस स्थान पर जाकर जहां मनुष्य के रूप में व्यवहार किया जाता है, उस धर्म, उस गांव, उस विचार और उन लोगों का स्वीकार करते हुए, धर्मांतरण की प्रक्रिया ' सनातन ' उपन्यास में आ गई है। धर्मांतरण की तरह, सैनिक बनना भी अन्याय, परिवर्तन और स्वाभिमान से मुक्ति की प्रतिरक्षी है , इसका चित्रण 'सनातन' में किया गया है। धोंडानक कहता हैं, ईस्ट इडिया कम्पनी द्वारा सेना में भारती शुरू करते ही रहमतपुर का एक महार सेना में भर्ती हो गया। अंबरनाक हैरान है कि हिंदू महारों से प्रभावित हैं लेकिन अंग्रेजों से नहीं। वे कहते हैं, "किसी महार के हाथ से झाड़ू लेना और उसे बन्दूक देना चमत्कार है। सवर्णों द्वारा बहुत सताया गया है। अछूतों को हथियार मिले तो बदला लेंगे।" (पृ.४०) सेना में शामिल होने से उनमें आत्मविश्वास पैदा होता है। एक तरह का साहस आता है। सवाल पूछने की हिम्मत आती है। गांव में आकर समाज के साथ हो रहे अन्याय का अहसास होता है। भीमनाक यह जानकर क्रोधित हो जाता है कि उसकी माँ के शव को क्षतविक्षत कर दिया गया है I सिदनाक देवराव पाटील की बातों का बिना किसी डर के जवाब देता है। यह परिवर्तन सैनिक बनने के कारण हुआ है, इसकी स्पष्ट तस्वीर 'सनातन' में आई है। सिदनाक और भीमनाक को देवगढ़ में नियुक्त किया गया था। हाथ में बंदूकें और अंग्रेजों द्वारा समर्थित थे। अंग्रेजों ने महिपति राव के अधिकार छीन लिए हैं। दोनों महल से बाहर आ रहे महिपतिराव के घोड़े को रोकते हैं। अन्य महार महिपतिराव को नहीं देख सके, लेकिन इन दोनों ने उन पर अपनी बंदूकें तान दीं। महिपतिराव को रोका गया। महारों की सैनिक भर्ती उसे बिल्कुल भी पसंद नहीं है लेकिन वह कुछ नहीं कर सकता। सैनिक भर्ती के कारण अछूतों के जीवन में परिवर्तन और मुक्ति की दिशा में उठाए गए कदमों को 'सनातन' में दर्शाया गया है। 'सनातन' यह उपन्यास धर्म परिवर्तन और सिपाही के साथ – साथ 'स्थलांतर' यह सामाजिक व्यवस्था की बीमारी के लिए किस प्रकार उपयोगी है इसको दर्शाता है। स्थलांतर की प्रक्रिया का एक हिस्सा देशांतर है।

स्थलांतरण एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। प्रतिकूल हवामान से बचने के लिए पक्षी अनुकूल हवामान वाले क्षेत्रों में प्रवास करते हैं। इसी तरह महार या अछूत भी प्रवास करते हैं। वे सुख, स्वाभिमान, स्वस्थ जीवन और मनुष्य के रूप में जीने के लिए पलायन करते हैं। ऐसी धारणा है कि स्थलांतरण कुछ हद तक बदलाव ला सकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रवास की प्रक्रिया बड़े पैमाने पर हुई। अछूत गाँव छोड़कर शहर चले गए। खेतिहर मजदूर काम के लिए शहर गए थे। यद्यपि ब्रिटिश काल के दौरान स्थलांतरण की एक छोटी मात्रा थी, इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। स्थलांतरण करना या ऐसा करने के लिए मजबूर होना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उन्हें 'सनातन' में चित्रित किया गया है।

'सनातन' उपन्यास में पहला स्थलांतरण बदनाक महार का है। निजाम शासन के दौरान अंबरनाक के दादा बदनाक मुसलमान बन जाता है और महारों की बस्ती से मुसलमानों की बस्ती में रहने चला जाता है I सोनई गांव में पलायन धर्मांतरण के कारण हुआ। बयान में कहा गया है कि पच्चीस झोपड़ियों में से दो या तीन परिवर्तित हो गए हैं। ' उनकी कुटिया उजाड़ है। वे एक मुस्लिम मोहल्ले में रहने चले गए... गांव में मुसलमानों के सिर्फ दो घर थे। धर्मांतरित महारों ने मुस्लिम मोहल्ले के पीछे अपने घर बनाए। "(पृ.18) हालांकि महार बस्ती से मुस्लिम मोहल्ले में स्थलांतरण गांव के भीतर था, यह ध्यान दिया जा सकता है कि इसके पीछे सुरक्षा और अन्याय से मुक्ति का दृष्टिकोण था। बाद की अवधि में अंबरनाक एक मुस्लिम बन गया और उसने गांव छोड़ दिया। वह बीदर में जाता है और वहाँ रहने लगता है। उसके इस स्थलांतरण को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

इसकी तुलना में भीमनाक और सिदनाक का स्थलांतरण अलग है। सेना में भर्ती होने के कारण उन्हें सोनाई छोड़कर देवगड जाना पड़ता है। देवगड में इन दोनों का निवास देवगड के महारों से अधिक सम्माननीय था। अपने साथ हुए अन्याय के कारण रतनाक महार ख्रिश्चन बन जाता हैं और गांव कै बजाय चर्च के साथ व्यवहार करता हैं। उसका दैनिक व्यवसाय समाप्त हो जाता है। फादर फ्रांसिस के साथ एक नया पेशा शुरू होता है। यह स्थलांतरण गांव-मंदिर-महार बस्ती से चर्च की ओर होता हैं। बल्कि चोखा महार का स्थलांतरण अलग और नजर आने वाला है।

देवगड में चोखा महार और उनकी पत्नी राही गावकी के हिसाब से व्यवहार करते थे। एकतारी पर हरि - हरि का जाप करने वाला चोखा मंदिर के बाहर छोड़े गए जूतों के पास बैठता है। महिपतिराव के काले महल की मीनार का निर्माण ढह रहा था। गोविंद भट ने चोखा को 'मंगलवेढ़ा के चोखा मेला' की कहानी सुनाई। काले महल में, उनकी पत्नी के साथ उनको बुलाया जाता है। वह निहित चेतावनी को समझता है। वह यह भी जानता है कि वह अपनी गर्भवती पत्नी को निर्माण कार्य में दपनाया जायेगा। इससे निकलने के लिए वह अपनी पत्नी के साथ गांव छोड़ देता है। कंधे से झंडा फेंक देता है। गले से तुलसी की माला उतार देता है। ' उसने अतीत से मुंह मोड़ लिया था। (पृ.97) चोखा महार भले ही गांव की दृष्टि से भागा हो, लेकीन उसका यह स्थलांतरण है। अन्याय से छुटकारा पाने का यही तरीका है।

भीमनाक देवगड से मुंबई जाता है। वहां से वह लंदन जाता हैं। वह वहीं पर सेवानिवृत्त होता है। लेकीन फिलिफ (सिदनाक) सोनाई से देवगड जाता है, वहां से पुणे जाता है। पुणे से झोल जाता है और वहीं बस जाता है। उनका स्थलांतरण उनके जीवन में एक बड़ा बदलाव लाता है। उसकी भाषा, उसका पहनावा, उसका चेहरा बदल जाता है। उसका बोलने का तरीका भी बदल जाता है। जब वह सोनाई से मिलने जाता है तो सोचता है, " हम अगर गांव नहीं छोड़े होते... क्या होता ? गावकी कर रहे होते। जूठा भोजन खाकर जिंदा रहते। अपमान सह रहे होते। बहुतों द्वारा प्रताड़ित किया जाता। बूढ़े लोगों में खासते बैठे होते I दुनिया देखने को नहीं मिलती I मर गए होते I यह गांव मेरे भाग्य का मकबरा है। गांव परायासा लगता है...(पृ.118) फिलिफ (सिदनाक) का यह चिंतन स्थलांतरण द्वारा लाए गए परिवर्तन पर प्रकाश डालता है। अंग्रेजों ने अछूतों और मुसलमानों की भर्ती पर प्रतिबंध लगा दिया। कुछ को सेना से बर्खास्त कर दिया गया था। सोनाई गांव के बलभीम और लक्ष्मण को भी सेना से हटा दिया गया था। वे सोनाई वापस चले जाते हैं जहां वे खुश नहीं हैं। ' गांव छोड़े बिना अपना उध्दार नहीं है, यह उनकी समझ में आता है। वे दोनों झोल में ही बस जाते है।' (पृ. 152) इसलिए स्थलांतरण यह व्यवस्था के परिवर्तन में योगदान देता है, यह एक तथ्य 'सनातन' उपन्यास में दर्शाया गया है।

स्थलांतरण की तुलना में देशांतर एक अलग अनुभव देता है।अछूतों और मजदूरों का देशांतर परिवर्तन के लिये पूरक नहीं होता। भीमनाक सेना में भर्ती हो जाता है। उसे लंदन भेजा जाता है। वह भारतीय मजदूरों और गुलामों को ले जाने वाले जहाज पर काम करता है। एक इंडो-कैरेबियन मैरी से शादी करता है जो एक रेलवे स्टेशन पर काम करती है। उनको एक बेटा होता है, पीटर। वह नीग्रो वंश के एक नाइजीरियाई बार्बरा से शादी करता है। उनके दो बेटे हैं, कार्टर और जैक। भीमनक ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न उपनिवेशों की यात्रा करता है। वह हर किसी की तरह गुलाम है। वह सौ साल की उमर में मर जाता है। उनका पोता कार्टर भारत आता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि भीमनाक इन सारी परिस्थिति में बड़े सम्मान के साथ रहते हैं। भीमनाक का महार बस्ती से लंदन यह देशांतर अन्याय की मुक्ती नहीं होता, क्योंकि यह प्रवास अभिजात वर्ग का नहीं बल्कि एक अछूत दास का है। इसलिए 'सनातन' में रेखांकित किया स्थलांतरण प्रभावी है, लेकीन देशांतर 'यह भी कुछ कम नहीं ' के शीर्षक के अंतर्गत आता है।'सनातन' उपन्यास में धर्मांतरण, स्थलांतरण, देशांतर और सैनिकी जीवन सामाजिक व्यवस्था के पेट में बीमारी के प्रति एंटीबॉडी कैसे हैं इसको समजना भी जरूरी है।'सनातन' में सनातन प्रवृत्ति की चिकित्सा:-संतुलित सामाजिक व्यवस्था सबके लिए हितकर होती है। इससे व्यक्ति और देश का विकास होता है। भारतीय समाज असंतुलित है। वह कुछ ही लोगों के हित के लिए सोचता है। जिन्हें फायदा होता है, वे व्यवस्था को कायम रखने की कोशिश करते हैं। यह सोचने और कार्य करने की शाश्वत प्रवृत्ति है कि, भले ही आम लोगों के हितों की उपेक्षा की जाए, धर्म जीवित रहना चाहिए। 'सनातन' उपन्यास में, यह देखा जा सकता है कि,शरणकुमार लिंबाले ने सनातन प्रवृत्ति की चिकित्सा की है। पारंपरिक ग्राम व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था का सनातन रूप है। अर्जुन खताल, बब्रूवान खराटे, नवनाथ जकिकोरे और वीरू धनगर को लगता है कि सोनाई गांव की परंपरा को तोड़ना एक नुकसान है। वे चाहते हैं कि मरी हुई गाय को घसीटा जाए लेकिन खाया नहीं जाए। देवराव पाटिल सोचते हैं, अगर महार सेना में शामिल हो गए तो गांव का काम कौन करेगा?गोविंद भट देवगड के विठ्ठल मंदिर में पोथी पाठ करता था। उसका मानना है कि पोथी - पुराण के अनुसार समाज को चलना चाहिए। महिपतिराव देशमुख के माध्यम से अछूतों पर अंकुश रखने का प्रयास किया जाता है। बुरुज निर्माण के दौरान गर्भवती पार्वती की बलि दी जाती है। धर्म परिवर्तन का खुले तौर पर विरोध किया जाता है। गोविंद भट कहता हैं कि, एक महार का सेना में शामिल होना धर्म के खिलाफ है। वे कहता हैं, "महारों के हाथ में हथियार? शिव-शिव! यह हिंदू धर्म के खिलाफ है।" (पृ.78) यह व्यवस्था की जाती है कि, अछूते और आदिवासियों को परंपरा तोड़ने पर बेरहमी से पीटा जाए। ब्राह्मण सभा को संबोधित करते हुए, गोविंद भट कहता हैं, " हिंदू धर्म मंदिरों और तीर्थो के बजाय ब्राह्मणों की ज़ुबान पर है। हमारी कई पीढ़ियों ने इस धर्म को बढ़ाया है ... धर्मांतरण को रोक देना चाहिए। हम भूदेव हैं ...जब धर्म का अस्तित्व धोके में आ जाए तब पापीयों का नाश करने ईश्वर अवतार ना ले तो यह जिम्मेदारी हमें अपने कंधो पर लेनी चाहिए।" (पृ. 86) 'सनातन' में गोविंद भट सनातन प्रवृत्ति के एक प्रतिनिधि व्यक्ति हैं। जब तक निम्न जातियों के मन में भय रहेगा तब तक हिन्दू धर्म सुरक्षित रहेगा। लोगों के मन में पाप और दंड का भय बढ़ जाना चाहिए। ईश्वर-धर्म का भय रहना चाहिए। वह उपदेश देते हैं कि यदि भय न हो तो उन्हें नष्ट कर देना चाहिए।

गोविंद भट व्यवस्था करता हैं कि उसकी मृत्यु के बाद भी धार्मिक व्यवस्था का ढांचा बरकरार रहे। यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता हैं कि, सनातन प्रणाली के सिद्धांत अपने बच्चे मोरोपंत और नरसोपंत के साथ-साथ पोते-पोतियों को भी दिए जाएं। उनके साथी दयाशंकर, उमाशंकर, रामनारायण, विश्वनाथ, सनातन प्रावदा के ब्राह्मण हैं। वे पंचांग के साथ तैयार हैं। अछूतों की बलि किस प्रकार कर्मकाण्डों द्वारा दी जाएगी, इसकी व्यवस्था की जाती है।

पेशवा सनातन प्रवृत्ति के कट्टर समर्थक थे। प्रत्येक जाति अपनी गति से व्यवहार करने की कोशिश कर रही थी। उत्तर पेशवाई को 'सनातन' उपन्यास में चित्रित किया गया है। यदि कोई नियम तोड़ता है, तो उसे कड़ी सजा दी जाती थी। बाजीराव द्वितीय के शासनकाल के दौरान, गणपत महार सहज नजर से रानी को डोली से शनिवारवाडा की ओर जाते हुए देखता है। पेशवा क्रोधित हो जाता है। सभी महार जाति के लोग सजा के रूप में गले में गैज और कमर पर झाड़ू बाँधने के लिए विवश किया। ऐसी सजा और जबरदस्ती सनातन प्रवृत्ति है।

कुछ ब्राह्मण पुणे के ओंकारेश्वर मंदिर के सामने खड़े होकर बोलते हैं। उन्हें लगता है कि, पेशवा और अंग्रेजों के बीच लड़ाई नहीं होनी चाहिए। पेशवाई डूबे तो ब्राह्मणों की दुर्दशा कुत्तों से बत्तर हो जाएगी। अछूतों को बंदूक देने वाले अंग्रेजों को मार देना चाहिए। हिंदुत्व बच गया क्योंकि अंग्रेज भारत आए, नहीं तो मुगलों ने हिंदू धर्म को नष्ट कर दिया होता। इस बातचीत में सनातन प्रवृत्ति आसानी से नजर आती है। इस अवधि के दौरान, शनिवारवाड़ा में होमहवन और अनुष्ठान जैसे धार्मिक अनुष्ठानों की भीड़ थी। 1818 में पेशवाई का अंत हो जाने के बाद भी सनातन प्रवृत्ति नहीं रुकी। कभी-कभी हिंसा का प्रयोग कर वह सृजनात्मक हो जाती थी, इसका चित्रण भी 'सनातन' उपन्यास में आया है।फादर एडमंड झोल शहर के इलाके में धर्म परिवर्तन करा रहे थे। सायखेड के पास कलवण गांव में अछूत समुदाय धर्मांतरण करने जा रहे थे I जंगल के आदिवासी भी धर्म परिवर्तन करने जा रहे थे। इस बारे में गोविंद भट के बेटे मोरोपंत और नरसोपंत को पता चलता है। नरसोपंत ने फादर फ्रांसिस को धमकाया। पिता एडमंड संस्कृत जानते थे। नरसोपंत

सोचते हैं कि हमें सावधान रहना चाहिए ताकि वे शास्त्रों को पढ़कर हिंदुओं का गलत विश्लेषण न करें। वह अपने साथी के साथ भगवद्गीता लेकर एडमंड के पास जाता है। वहां हुई चर्चा में एडमंड सही जवाब देते है। वहां से बाहर निकलने के बाद नरसोपंत के शब्द सनातन व्यवस्था की ओर इशारा करते हैं। नरसोपंत कहते हैं,

"हिन्दू धर्मग्रंथों को केवल ब्राह्मणों को ही पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक में ब्राह्मणवादी भावनाओं को पढ़कर कई लोग भ्रमित हो सकते हैं। (एडमंड) एक बातूनी पादरी है। वह हिंदू धर्म का कुप्रचार किए बिना नहीं रहेगा... हमारे भगवान ने सृष्टि की रचना करते हुए ब्राह्मण के लिए ज्ञान की शक्ति आरक्षित कर दी है... राजत्व की शक्ति क्षत्रियों के लिए, वैश्यों के लिए व्यापार-उद्यमों और रोजगार के लिए आरक्षित है। और शूद्रों के लिए ये तीन वर्ण की सेवा करना। यह सालों से चला आ रहा है। यह जारी रहेगा। यह भगवान की इच्छा है। कोई भी नश्वर आदमी उसेमें बदलाव नहीं कर सकता। "(पृ.131) इसपर ब्राह्मण विश्वनाथ राय देता है कि, ब्राह्मणवाद और अस्पृश्यता को समाज के लाभ के लिए दफनाया जाना चाहिए। तब नरसोपंत कहते हैं, "यदि ब्राह्मणवाद और अस्पृश्यता को छोड़ दिया जाए, तो इस धर्म में क्या बचेगा? यही हिन्दू समाज का मूल है। "(पृ.132) सनातन प्रवृत्ति नरसोपंत के हर विचार और कार्य में पाई जाती है। " ख्रिश्चन धर्मांतरण की पृष्ठभूमि में, नरसोपंत सनातन धर्म की रक्षा के लिए एक निर्णय पर आते हैं। उन्होंने प्रतापराव देशमुख जो देवगड से पुणे में बस गए थे उनसे मदत लेता है। पुणे के ब्राह्मण नरसोपंत को एक बंदूक भेजते हैं। वह बंदूक लेकर फादर एडमंड के घर जाता है। उन पर वार करता है। वह एडमंड को मारता है जो हिंदू धर्म को बदलना चाहता है। धर्म की रक्षा में की गई यह हिंसा सनातन प्रवृत्ति को दर्शाती है। घर आकर वह अपनी पत्नी से कहता हैं, "पूजा से आज तक हिन्दू रक्षा होती थी, आज हाथ में शस्त्र लेकर की है।"(पृ.134) मंगल पाण्डे ने भी शस्त्रों के आधार पर धर्म की रक्षा की थी इस परम्परा का चित्रण 'सनातन' उपन्यास में किया है। सनातनी व्यवस्था में यज्ञ का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए यज्ञ में बलि चढ़ाने की प्रथा थी। उपन्यास 'सनातन' में लेखक ने सनातन प्रवृत्ति की चिकित्सा यज्ञ की प्रथा को दिखाकर किया है। रामपुर के महाराज अपने पुत्र के उज्जवल भविष्य के लिए यज्ञ करते हैं। इसमें अनेक ब्राह्मण भाग लेते हैं। वैदिक वाचन और जप किया जाता है। काशी के ब्राह्मण आते हैं और राजपुत्र को आशीर्वाद देते हैं। "सफल है आत्मा, जो भगवान की स्तुति करता है। पर्याप्त मन है, जो शिव के ध्यान में लगा हुआ है। कान पर्याप्त है, जो देवताओं की कहानी सुनने के लिए उत्सुक है। पर्याप्त हात हैं, जो शिव की पूजा करते हैं। (पृ. 164) इस यज्ञ और आशीर्वाद से सनातन प्रवृत्ति का पता चलता है।

नरसोपंत के पुत्र वेदांत हिंदू धर्म की रक्षा करणे के लिये तैयारी होता है। उनकी माता सरस्वती विधवा थीं। वह किसी भी गतिविधि में भाग नहीं ले सकती है। ब्राह्मण होते हुए भी विधवा होने के कारण घर में वह अपवित्र वस्तु थीं। 'गाय के सामने चारा डाल दिया जाए, वैसे थाली उसके सामने रख दी जाती थी। गाय पवित्र, और वह मानव होते हुए भी अशुभ थी I' (पृ.162) सनातन प्रणाली विधवा के जीवन को प्रतिबंधित करती है। यदि यह व्यवस्था ब्राह्मण स्त्री को इस सनातनी नजर से देखती है, तो यह कल्पना नहीं की जा सकती कि वह अछूतों को किस रूप में देखेगी। नरसोपंत का पुत्र वेदांत ब्राह्मण धर्म का पालन करता है। चाचा मोरोपंत वेदांत को सनातन परंपरा का पाठ पढ़ाते हैं। वे वेदांत से कहते हैं, "हिंदू धर्म जन्म में ऊंच-नीच और मृत्यु में स्वर्ग-नरक के विचार पर आधारित है। यह पाप-पुण्य के विचार उसका मूल आधार है। यह विचार ब्रह्म की श्रेष्ठता को सिद्ध करता है। हिंदू धर्म भेदभाव पर आधारित है। इसके पीछे पवित्रता की अवधारणा है। हिंदू धर्म ने जाति-जाति के संकर का निषेध किया है। "(पृ. 178) वेदांत की माँ सरस्वती उन्हें मानव होने और अछूतों के बारे में सोचने की सलाह देती हैं। वेदांत माँ की बात सुनने के बजाए मोरोपंत की बात सुनता है।

वेदांत हिंदुराव पाटील की हवेली जाता है और तुलसी के विवाह की कहानी बताता है। हिंदू वाहिनी के सनातन कृती का समर्थन करता है। लंदन से भारत लौटे भीमनाक के पोते कॉर्टर से कहता हैं, "हिंदुस्तान धर्मशाला नहीं है। यह हिंदूओं का देश है। बाहरी लोगों को बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। "(पृ.204) कॉर्टर हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करने आया है ऐसा अंदाजा वह और उसके हिन्दू संगठन के स्वयंसेवक लगाते है। महार बस्ती में गए कॉर्टर पर उनकी नजर रहती है। महारों को मरी हुई गाय का मांस खाने से रोकने के लिए, वे उस पर मल फेकने वाले कॉर्टर को मार देते हैं। उनके अनुसार उसने गाय को अपवित्र किया है। महार यल्लमा कॉर्टर का खून हुआ है ऐसे कहती है। उस पर वेदांत कहता है, "जो कोई हिंदू धर्म के खिलाफ बोलेगा उसे मार दिया जाएगा।" (पृ.208) हिंदू धर्म अछूतों के खिलाफ बोलता है, उसका क्या?, यल्लमा के इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता है। हिन्दू धर्म व्यवस्था जीवित रहे, प्रथा -परंपरा-जातीयता-अस्पृश्यता का पालन किया जाए, यह सनातनी विचार ' सनातन ' उपन्यास में चित्रित हुआ है। 'सनातन ' उपन्यास में व्यवस्था बनाए रखने के लिए बनाई गई कई कहानियां और किवदंतियाँ आयी हैं। रामायण, महाभारत की अनेक कहानी, किवदंतियाँ, गरुड़-शिव-विष्णु पुराणों से प्रत्येक जाति की महानता को बताने वाली कई कहानियां बनाकर व्यवस्था को बनाए रखा जाता है। इन किंवदंतियों का इस्तेमाल शरणकुमार लिंबाले ने 'सनातन' में किया है। यह सामाजिक व्यवस्था के पेट में छिपी सनातन प्रवृत्ति को दर्शाता है।

'सनातन' की पहली कहानी पार्वती के बारे में है। कहानी बताती है कि, महार का जन्म क्यों हुआ, कैसे उन्होंने मरा हुआ मांस खाना शुरू किया और कैसे वह गाँव के बाहर एक अछूत के रूप में रहने लगे, इसके कारण बताते है I "पार्वती नदी में स्नान कर रही थी। उसने नदी से बहता हुए एक बेला का पत्ता देखा। वह हरे पत्ते को देखती रही। पत्ता करीब आया। पत्ते पर खून का एक लाल बूंद था। उसने पत्ते को छुआ। पत्ते पर एक बच्चा पैदा हुआ। पार्वती ने बच्चे की सराहना की। उसने बच्चे को अपने सीने से लगा लिया। बच्चे को साथ घर ले आयी। महादेव को दिखाया। जो हुआ था उसकी वास्तविकता बताई। महादेव खुश हुए। उन्होंने बच्चे को स्वीकार किया। महादेव के घर में बच्चा बढ़ने लगा।

एक दिन बच्चा घर से बाहर रेंगता हुआ गया। घर के बाहर एक मरी हुई गाय पड़ी मिली। बच्चा मरी हुई गाय का मांस खाने लगा। महादेव ने यह दृश्य देखा तो वह बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने गुस्से से बच्चे को श्राप दिया - "तुम गाँव से बाहर रहोगे। तुम मरे हुए पशुओं का मांस खाकर जीवित रहोगे। तुम्हारी परछाई को भी लोग नीच समझेंगे।"(पृ.18) उस दिन से बच्चा मरे हुए जानवरों का मांस खाकर गांव के बाहर रहता है। इस किंवदंती के अनुसार, महारों के पूर्वजों ने हिंदू धर्म द्वारा पवित्र मानी जाने वाली गाय का मांस खाया और अछूत हो गया।

'सनातन' की एक अन्य कथा गोपुराण की है I 'गाय को चार पुत्र थे I गाय चारों बेटों को समान रूप से प्यार करती थी। एक दिन गाय ने अपने बेटों से एक सवाल पूछा। गाय अपने बेटों के दिल को जानना चाहती थी, उसने बेटों से पूछा, "जब मैं मर जाऊंगी तब तुम मेरा सम्मान कैसे करोगे ? प्रत्येक लड़के ने इस प्रश्न का उत्तर दिया। पहले तीन का उत्तर एक ही था,'हम तुम्हारा उतना ही सम्मान करेंगे जितना ईश्वर के दीपक का करते है। तीनों लड़कों का उत्तर सुनकर गाय को संतोष हुआ। उसने आखिरी लड़के से वही सवाल पूछा। सबसे छोटे लड़के ने उत्तर दिया - 'माँ, मैं तुम्हारे गर्भ में पैदा हुआ था। मैं तुम्हें अपने पेट में रखूंगा। तीनों लड़के उससे नाराज हुए। उन्हें गुस्सा आ गया। 'यह अपनी माँ को अपने पेट में कैसे रखेगा? क्या तुम मरी हुई माँ का मांस खाओगे ? ' तीनों भाईयों ने छोटे भाई का अपमान किया। उसे महा आहारी कहा I" (पृ.28-29) उपन्यास 'सनातन' में भूतनाक की पत्नी केरा को यह गोपुराण की कथा बताती है। सनातन महार जाति की उत्पत्ति कैसे हुई, इसे प्रभावित करने के कार्य की सनातन

व्यवस्था करता है।

रामायण में रेखांकित की हुई शंबुक की कहानी शरणकुमार लिंबाले ने 'सनातन' में दी है। गोविंद भट पोथी पढ़कर सनातन धर्म के दर्शन को लोगों को समझाने की कोशिश करता हैं। एक ब्राह्मण के बेटे की मृत्यु हो जाती है। वह श्री राम के पास जाता है और शिकायत करता है। राज्य में भ्रष्टाचार और पाप की वृद्धि के कारण मेरे बेटे की मृत्यु हो गई है। श्री राम नारदमुनि से जानकारी लेते हैं। उसे पता चलता है कि एक शूद्र घोर तपस्या कर रहा है। श्री राम उस शूद्र की खोज करने बाहर निकल जाते हैं। एक स्थान पर एक ऋषि तपस्या कर रहा था। श्री राम उनसे उनके वंश के बारे में पूछते हैं। वे कहते हैं, "मैं एक शूद्र हूं। मेरा नाम शंबुक है। एक पल की देरी के बिना, श्री राम ने तलवार अपने म्यान से बाहर निकाली और शंबुका का सिर काट दिया। तैंतीस करोड़ देवता स्वर्ग में एक साथ जमा हुए, तालियाँ बजाने लगे I और श्री राम के ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे... शंबुक मारा गया, उसी समय ब्राह्मण का पुत्र जिन्दा हुआ I'(पृ.75) रामायण में चित्रित शंबुक की कहानी यह बताती है कि, वर्णाश्रम धर्म की रक्षा की जानि चाहिए, शूद्रों को दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए Iवेदांत हिंदुराव पाटील की हवेली में जाता है और तुलसी के विवाह की कहानी बताता है। फादर साइमन और अन्य लोग कहानी सुनने के लिए एकत्रित होते हैं। ' जालंधर राक्षस की पत्नी वृंदा पतिव्रता थी। जालंधर देश के खिलाफ लड़ता है। देवता उसे हराने के लिए एक साथ आते हैं। वे विष्णु की सहायता लेते हैं। विष्णु जालंधर का रूप धारण कर वृंदा के पास चले जाते हैं। उसकी शालीनता को भंग कर देता है। जालंधर मर जाता है। वृंदा को असली वजह का पता चलता है। वह विष्णु को श्राप देती है, ' हे भगवान, तुम पत्थर बन जाओगे और पृथ्वी पर गिर जाओगे। ' विष्णु ने वृंदा से कहा, "तुम तुलसी बनोगी । तुम्हारा विवाह शालिग्राम पत्थर से होगा। " (पृ. 182) वृंदा सती हो जाती है। उसकी राख से तुलसी उगती है। उसका विवाह शालिग्राम पत्थर से होता है। यह कहानी भगवान के कारनामों के बारे में है और उनके द्वारा किया गया विश्वासघात दिखाती है। सनातन व्यवस्था को मजबूत करने के लिए ऐसी कितनी कहानियां रची गई हैं, उपन्यास 'सनातन' इस ओर ध्यान खींचता है।

'सनातन' में चित्रित चोखा मेला की कहानी मध्यकाल की है। इसे एक ऐतिहासिक कहानी भी कहा जा सकता है, लेकिन यह व्यवस्था इतिहास को धार्मिकता का रंग देकर अगली पीढ़ी को देने का काम कर रही है। जब प्रतापराव देशमुख हवेली की मीनार का निर्माण कर रहे थे, निर्माण ढह रहा था। इसका उपाय गर्भवती अछूत स्त्री को दीवार के नीचे दफना देना है। चोखा महार की पत्नी राही गर्भवती हैं। इस कार्य में सहयोग करने के लिए गोविंद भट उन्हें मंगलवेढा के चोखा मेले की कहानी सुनाते हैं। चोका मेला एक महार है I मिनार का निर्माण ढह रहा था I चोका मेला अपनी पत्नी के साथ निर्माण स्थल पर जाता है I काम चल रहा होता है, निर्माण ढह जाता है, उसमें चोखा मेला दब जाता है। ढेर के नीचे से चोखा मेला की अस्थियां निकाली जाती हैं। उसमें से 'हरि हरि' का नारा सुनाइ पड़ता है। ऐसा एक किस्सा बताते हुए गोविंद भट कहता हैं, " बुरुज का निर्माण शुरू करने से पहले मांत्रिक ने कहा है कि, महारों का सम्मान करें और दान दे, धर्म का पालन करनेवाले महारों का सम्मान होना चाहिए इसलिए मैंने तुम्हारा नाम सुझाया है आज तुम यह पोथी ना सुनी तो भी कोई बात नहीं I बस अपना कर्तव्य पूरा करोI (पृ.95) इस कथा को सुनाने के बाद कई पीढ़ियों पर धार्मिक संस्कार किए जाते हैं। वह संस्कार और आगे बढ़ता है और व्यवस्था बनी रहती है, इसका वर्णन 'सनातन' उपन्यास में किया गया है।पेशवा काल की एक कहानी 'सनातन' में दी गई है। जब पेशवाओं की रानी डोली से शनिवारवाडा जा रही होती हैं, तो गणपत महार उसको देखता हैं। यह पेशवाओं को अपमान लगता है। गणपत महार की सजा के रूप में, उसकी महार जाति को उनके गले में मटका और कमर के चारों ओर एक झाड़ू बांधने के लिए मजबूर किया जाता है। गणपत महार की मृत्यु हो जाती है। मरने के बाद भी वह रानी को प्रताड़ित करता है। इसके समाधान के लिए शनिवारवाड़ा के दक्षिण में गणेश जी का मंदिर बनाया गया है। हालांकि यह एक ऐतिहासिक कहानी है, लेकिन यह एक किंवदंती की तरह फैली हुई है। यह कहानी शाश्वत व्यवस्था के आतंक को इंगित करती है। इस कहानी को एक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है कि यदि आप मानदंडों, रीति-रिवाजों, परंपराओं और नियमों को तोड़ते हैं तो परिणाम कितने बुरे हो सकते हैं। इस उपन्यास में अमृतनाक महार की कहानी भी कुछ इस तरह सामने आती है। यह महार की ईमानदारी और बलिदान का वर्णन करती है। अमृतनाक ने अपनी पवित्रता साबित करने के लिए अपना लिंग काट कर रखा था। इस तरह की कहानियां, किंवदंतियां और मिथक बाद की पीढ़ियों तक पारंपरिक संस्कार को आगे बढ़ाते हैं। इससे सनातन व्यवस्था कायम रहती है, इस ओर ' सनातन ' उपन्यास ध्यान आकर्षित करता है।'सनातन' की टिप्पणिया:-उपन्यास 'सनातन' में की गई विभिन्न टिप्पणिया शरणकुमार लिंबाले के दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हैं। 1920 से पहले के 200 से 250 साल के समय का पोस्टमॉर्टम के दौरान लेखक ने कुछ काल्पनिक और कुछ ऐतिहासिक आकृतियों का चित्रण किया है। कई महार पुरुष जिनके नाम में 'नाक' है और महार महिलाएं जैसे केरा, तुकाई, सतवाई, मेसाई, कोंडामाई, केरसुनी 'सनातन' में आती हैं। नाक से समाप्त होने वाले नाम पीछे रह जाते हैं और अगली पीढ़ी में बलभीम, लक्ष्मण, महादेव, केशव जैसे नाम आते हैं। यह बदलाव महिलाओं के नाम में भी देखने को मिलता है। महार महिलाओं के नाम भामा, भीमा, जया हैं। कुछ नाम धर्मांतरण के कारण मुस्लिम और ख्रिश्चन परंपराओं से आते हैं। महारों के नामों में इस परिवर्तन को लेखक ने सूक्ष्मता से चित्रित किया है। तुलनात्मक रूप से पारंपरिक नामों में ज्यादा बदलाव नहीं आया है। इस वास्तविकता को 'सनातन' में भी चित्रित किया गया है। यह सब प्रस्तुत करते हुए लेखक के रूप में शरणकुमार लिंबाले ने कुछ टिप्पणियाँ की हैं। यह देखा जा सकता है कि लेखक किस प्रणाली के लिए खड़ा है।

'सनातन' में शुरुवात की टिप्पणी भी ध्यान देने योग्य है। इससे भारतीय सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप को समझा जा सकता है। सोनाई गांव के महार गांव की मरी हुई गाय को घसीटते हैं, काटते हैं और उसका मांस खाते हैं। गांव सोचता है कि महारों ने गाय को जहर देकर मार डाला। महारों को चावड़ी बुलाकर पीटा जाता है। इस अवसर पर निवेदन आता हैं, ' अस्पृश्यता और कुछ नहीं बल्कि हिंदधर्मशास्त्र में हिंद धर्म का एक दृश्य रूप है। अछूतों में इन शिक्षाओं को पूरी तरह से समझने के बाद ही इन शिक्षाओं को अस्वीकार करने का साहस होगा। शास्त्रों को पढ़ने के लिए बुद्धि और ज्ञान की आवश्यकता होती है। हिंद धर्म ने अछूतों का ज्ञान छीन लिया है। हिंदू धर्म ने अछूतों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने पर प्रतिबंध लगा दिया है। दलितों की गुलामी तब तक खत्म नहीं होगी जब तक हिंद धर्म को गलत साबित नहीं किया जाएगा। ' (पृ.35) लेखक की टिप्पणी हिंदू धर्मशास्त्र की कमियों की ओर इशारा करती है। इसके लिए 'हिडीस'(गंदा,बदसूरत)शब्द का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा अछूतों की गुलामी को समाप्त करने के लिए, शास्त्रों को मिथ्य बनाना, पढ़ना, सीखना पड़ता है , और प्रबुद्ध बनने अधिकार तो छीने गये हैं। लेखक इस तथ्य का वर्णन करता है। इसलिए, यह टिप्पणी हिंद धार्मिक व्यवस्था का उपचार बन जाती है। 'सनातन' में धर्मांतरण, स्थलांतरण और देशांतर की प्रक्रिया को दर्शाया गया है। यह प्रक्रिया सारी दुनिया में चल रही थी जिस कारण ऐसा लगता है कि बदलाव होगा, जाति खत्म होगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ, लेखक ने इस पर टिप्पणी की है।" अरब, इराण और मध्य एशिया के मुसलमान खुद को श्रेष्ठ मानते हैं। ये मुसलमान अशरफ मुसलमानों को अछुत मानते थे। मस्जिदों और कब्रिस्तानों में उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। अछूतों के धर्म परिवर्तन से उनकी समस्या का समाधान नहीं हुआ, बल्कि यह और भी विकराल हो गया। धर्मांतरण के कारण अस्पृश्य अन्य धर्म में चले गए, इसलिए हिंद धर्म मे वे अल्पसंख्य हो गए। अछूत धर्मांतरित हो गए , जाति छोड़ने के लिए। वे जिसी धर्म में गए, वहां उनकी पहचान उनकी जाति से हुई। अछूतों ने स्थलांतरण किया। अछूतों ने देशांतर किया। वे जिस देश में गए, वहां भी उन्हें उनकी जाति से ही पहचाना जाता था। उनकी कला,

उनका कौशल, उनकी प्रतिभा, उनके गुण कभी नहीं देखे गए। हर जगह उनकी जाति देखी। उनकी उपेक्षा की। उन्हें प्रताड़ित किया गया । शोषित किया गया। "(पृ .104)

उपरोक्त टिप्पणी सनातन व्यवस्था की निरंतरता को दर्शाती है। यह बताती है कि, जाति उन्मूलन के लिए धर्मांतरण, स्थलांतरण और देशांतर के स्वीकृत तरीके अपर्याप्त साबित हुए हैं। सनातन प्रणाली को बनाए रखने वाली प्रणाली कितनी मजबूत है, इस भाष्य में भी दिखाई देता है।एक अन्य भाष्य 'सनातन' में लेखक के दृष्टिकोण को सामने लाता है। यह टिप्पणी दुनिया भर के शासक वर्गों और देशों की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को उजागर करती है। एक लेखक के रूप में शरणकुमार लिंबाले हिंदू धार्मिक व्यवस्था की प्रशंसा नहीं करते हैं या ब्रिटिश और भारतीय राजतंत्र के पक्ष में नहीं हैं। 'सनातन' यह उपन्यास एक स्पष्ट तस्वीर दिखाती है कि कैसे धर्मसत्ता और राजसत्ता अछूतों का शोषण करते हैं। " हिंदुस्थान मूल रूप सेकभी एक राष्ट्र नहीं था; छोटे राज्य थे, बड़े राजा छोटे राजाओं को निगल जाते थे। सत्ता के विकास में राजशाही सत्ता की बर्बर अवस्था थी। हाथ में तलवार लेकर आमने-सामने लोगों का वध करना ऐसी लड़ाई होती थी। लड़ने का अर्थ है लूट लेना, फिरौती लेना, युद्ध का खर्चा वसूल करना और सुंदर स्त्रियों का अपहरण करना। हिंसा के उन्माद का प्रदर्शन राजतंत्र है। राज्य की सीमाओं को बढ़ाने का अर्थ है राजस्व में वृद्धि... विदेशी शक्ति के भारत में आने से पहले, यहाँ के राजा महाराजा भारत की प्रजा को लूट रहे थे। राजा लड़ते और लूटते थे, जबकि लुटेरे हथियारबंद डकैती करते थे। राजशाही अनियंत्रित लूट का युग है। लूट की बेलगाम इच्छा से साम्राज्यवाद का उदय हुआ। उपनिवेशों की लूट पर ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण हुआ था। (पृ. 123 और 124) एक उदाहरण के रूप में ली गई उपरोक्त टिप्पणी से, हिंदू धार्मिक व्यवस्था के माध्यम से अछूतों के शोषण को देखा जा सकता है। वैश्विक साम्राज्यवाद कमजोर व्यक्ति या समूह का शोषण करता है। धर्मसत्ता और राजसत्ता एक साथ चलते हैं और एक दूसरे का सहयोग करते हैं। मतदाताओं के अधिकारों की रक्षा के लिए, उनके स्वतंत्रता और आनंद पर प्रतिबंध से बचने का प्रयास करता है। इसके लिए समर्थन के रूप में धार्मिक नियमों और हथियारों को लिया जाता है। मन पर मिथ्या इतिहास अंकित है। सीखने का माहौल खत्म किया जाता है I आत्महत्या को प्रोत्साहित किया जाता है। जब सभी रास्ते समाप्त हो जाते हैं, तो हथियारों की मदद से हत्या की जाती है। 'सनातन' उपन्यास साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों की दृढ़ता की ओर ध्यान आकर्षित करने का कार्य करता है, चाहे वह घरेलू हो या विदेशी - अंग्रेजी।

॥ ३ ॥

'सनातन' की संरचना और कुछ कच्ची कड़ियाँ :-उपन्यास 'सनातन' की संरचना अलग है। अन्य उपन्यासों की तरह, ऐसा कोई कथानक नहीं है। एक या कुछ पात्रों का विकास भी बाधित नहीं होता है। घटनाएं किसी खास जगह या गांव-शहर में नहीं होती हैं। देखने के लिए कोई माहौल नहीं है।

1920 से पूर्व समय के टुकडे की चिकित्सा करते हुए, लेखक ने प्रवृत्ति को प्राथमिकता दी है। स्वकीय और ब्रिटिश प्रभुत्व की मानसिकता को दर्शाया गया है। सनातन प्रवृत्ति की चिकित्सा करने से सलग कथासूत्र का प्रत्यय नही आता।'सनातन' की अवधि बहुत लंबी है। उपन्यास में दो सौ से दो सौ पचास वर्षों को समाहित किया गया है। 'सनातन' में उत्तरी पेशवाओं, बहमनी शासन, अंग्रेजी शासन, संस्थान काल, ब्रिटिश-विरोधी विद्रोह की शुरुआत और प्रबोधन काल की शुरुआत के बीच सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था आ गई है। पात्रों के नाम से इस काल का बोध होता है। अंत में 'नाक' नाम देकर पेशवा काल खड़ा होता है। ईस्ट इंडिया कंपनी और अंग्रेजों ने सत्ता की रक्षा के लिए सैनिकों की भर्ती की। इसमें अछूत भाग लेते हैं। इससे ब्रिटिश काल की अनुभूति होती है। पेशवा काल और ब्रिटिश काल के समानांतर निजाम शासन काल भी उपन्यास में आया है। इसके लिए लेखक ने मुस्लिम धर्म परिवर्तन की घटनाओं को प्रस्तुत किया है। महारों पर गांव की एक गाय को मारने और मरी हुई गाय का मांस खाने का आरोप है। मुसलमान तब आते हैं जब उन्हें पीटा जाता है। हमला करने वाले गाँववाले बिखर जाते है, इस से निजाम शासन का काल और दहशत इस उपन्यास में चित्रित होती है। साऊथ बरो समिति का उल्लेख 'सनातन' उपन्यास में आया है। अछूतों के प्रतिनिधित्व के संबंध में डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर ने 1918 में समिति के समक्ष गवाही दी थी। यह भारतीय स्वतंत्रता और शासन में अछूतों के स्थान को दर्शाता है। समय के बोध को बनाए रखते हुए अंतिम नाम 'नाक' आता है, लेकिन चोखा महार नाम कुछ जचता नहीं है। लेखक ने यह कल्पना चोखा महार के संदर्भ को ऐतिहासिक हस्ती संत चोखा मेला से जोड़ने के लिए बनायी है।कथन और संवाद के लिए इस्तेमाल की गई भाषा उस काल का खयाल नहीं रखती। सिदनाक अंबरनाक से कहता है, "गर्म रोटियां हैं।" (पृ. 21) "चम्पी कुत्तिया को रोटी की चोरी करना सिखाया जाना चाहिए।" (पृ. 22) अंबरनाक सिदनाक से कहता है, "क्या आप जानते हैं कि लोग क्या कहते हैं?" (पृ. 22)) "हाँ, भूतनाक मुझे बता रहा था।" (पृ. 22) इस वाक्य में 'हैं', 'चाहिए', 'है', 'था' यह क्रियापद उस समय के महारों की बोली में शोभा नहीं देते। 1920 से पहले के दौर में 'दलित' शब्द नहीं था। हालांकि, इसकी चर्चा के दौरान 'दलित की गुलामी' (पृ. 35) शब्द का इस्तेमाल किया गया है। इसके स्थान पर 'अछूतों की गुलामी' का प्रयोग किया जा सकता था। आशय पर अधिक ध्यान दिया गया है, इसलिए भाषाशैली की उपेक्षा हुई है। 'बापतिस्मा' शब्द का आना धर्मांतरण को इंगित करता है, लेकिन यह ख्रिश्चन संस्कृति को नहीं दर्शाता है। बयान में 'हैजा' महामारी का जिक्र होने से रचना में बाधा नहीं आती लेकिन संवाद में कई शब्द माहौल और समय तय करने में कम पड़ जाते हैं। महारों के संवाद में 'परेशानी', 'मटन', 'गोवऱ्या', 'पैंजन', 'संकेत' जैसे कई शब्द सामने आए हैं। 'सैराट' शब्द पहले साहित्य में नहीं आया था, 'सनातन' उपन्यास में वह मराठी फिल्म के प्रभाव से आया है। उपन्यास 'सनातन' छह भागों में विभाजित है। पहला भाग सोनाई गांव के महार और गांव के रिश्तों पर आधारित है। दूसरा भाग महार और गोविंद भट इन दोनों के संदर्भ में है। तीसरे भाग में पुणे शहर के ब्राह्मण, पेशवा और महार सैनिकों को दर्शाया गया है। चौथे भाग में झोल क्षेत्र में ख्रिश्चन मिशनरियों, धर्मांतरण, आदिवासियों, अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह, फादर एडमंड की हत्या की घटनाएं हैं। पंचम भाग में महारों की सैनिक भर्ती पर रोक, आदिवासियों के साथ अन्याय, ब्राह्मण युवक वेदांत का उदय जैसी घटनाएँ हैं। अंतिम छठे भाग में भारत से बाहर अंग्रेज उपनिवेशवादियों को मजदूरों की आपूर्ति और भारत आने वाले कॉर्टर की हत्या का मामला सामने आया है। 'सनातन' में काल्पनिक गाँवों सोनाई, देवगड, सायखेड़ा, सुल्तानपुर, रहिमतपुर,तथा झोल और रामपुर जैसे काल्पनिक संस्थानों का समावेश किया गया है। हालांकि पुणे शहर वास्तविक है, लेकिन यह विशाल रूप में सामने नहीं आता है। लंदन में सिर्फ साउथ हॉल एरिया का ही जिक्र है जहां भीमनाक रहता था। सीलोन, बर्मा, मॉरीशस, मलाया, दक्षिण अमेरिका, लिवरपूल आदि अंग्रेजी साम्राज्य में उपनिवेशों का भी उल्लेख मिलता है। वहाँ का जीवन रेखांकित करना संभव था। ऐसा न करने से उपन्यास कुछ कहते - कहते रूक जाता है।'सनातन' में पाए जाने वाले मिथक, किंवदंतियाँ और ऐतिहासिक कहानियाँ उपन्यास की संरचना में योगदान करती हैं। 'पार्वती की कहानी', 'गाय की कहानी', 'शंबुक की कहानी', 'तुलसी की शादी की कहानी' जैसी कहानियां पौराणिक कथाओं को उजागर करती हैं। 'अमृतनाक और बावन्न अधिकारों की सनद', 'बहामनी शासन के दामजीपंत और विठु महार', 'मंगलवेढा के चोखा मेला', 'पेशवा के गणपत महार' से जुड़ी कहानियां बदलते समय को दर्शाती हैं।यद्यपि कुछ घटनाओं और उच्च अंग्रेजी काल के व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है, गोपाल बाबा वलंगकर का उल्लेख करना आवश्यक था। सेना भर्ती के संबंध में छत्रपति शिवाजी महाराज का भी उल्लेख होने की उम्मीद थी।उपन्यास में घटनाओं को ठीक से संरचित नहीं किया गया है। पहली घटना के बयान के पूरा होने से ठीक पहले दूसरी और तीसरी घटनाओं को बताया जाता है। इसलिए, वे घटनाएं पर्याप्त रूप से आकार नहीं लेती हैं। सोनाई गॉव के महारों की जिंदगी बहुत संक्षिप्त से आती है। महारों के जीवन को कुछ चुनिंदा गतिविधियों के माध्यम से दर्शाया गया

है, जैसे कि मृतकों को अंतिम संस्कार की सेवाएं देना, गाँव के बाहर रहने लोगों द्वारा रोटी मांगना, एक निगरानी के रूप में काम करना, मरे हुए जानवरों को घसीटना और खाना।पुजारी की तीन पीढ़ियां, गोविंदा भट्ट, मोरोपंत-नरसोपंत और वेदांत 'सनातन' में आए हैं। पोथी पढने को अधिक महत्त्व देने के कारण ब्राह्मणों की अन्य गतिविधियों की उपेक्षा की गई है। जोतीराव फुलेजी के 'किसानों का कोड़ा' में भटशाही, अज्ञानता और ब्रिटिश शासन जिन कारणों से रेखांकन हुआ है वैसे कारण ' सनातन ' में आये नहीं। ब्राह्मणों का महार जाति के साथ होने वाला संघर्ष का व्यवहार दिखाया गया हैं, लेकिन अन्य अछूतों के साथ हुआ व्यवहार दिखाया नहीं गया। 'सनातन' में दिया गया इशारा उल्लेखनीय है। विस्तृतता टालने से उपन्यास की रचना अच्छी हो गई हैं। बीदर का वज़ीर सोनाई के पास आता है और अपना डेरा डालता है। उसके और उसके सैनिकों के आतंक को दिखाने के लिए निम्नलिखित कथन आता है - ' घुड़सवार गाँव गए थे। उन्होंने एक एक घर को चुनकर लिया। उसने कहा कि वह उस घर में रात को रुकेंगे। अंधेरा होते ही घर के लोग चादर ओढ़कर चावड़ी पहुंच गए। किसी ने विठ्ठल मंदिर में रात बिताई तो किसी ने महादेव मंदिर में रात बिताई। महिलाओं ने खाना बनाया। घुड़सवार गांव गए। घर के सामने घोड़े बंधे थे। महिलाओं ने बिस्तर सजाया था। सारी रात घर में घुड़सवार, और घोड़े बाहर।' (पृ. 21) इस कथन को और भी खंडित करने पर भी, मुस्लिम उत्पीड़न अपने रूप में महसूस किया जाता था। 'सनातन' उपन्यास में धर्मांतरण और सैनिक बनना दो महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं। बापतिस्मा के समय की गई प्रार्थनाओं या अन्य अनुष्ठानों का कोई विवरण नहीं है। भर्ती और प्रशिक्षण का वर्णन किए बिना, कई घटनाओं की सूचना दी जाती है कि- 'सिदनाक ने इतवार को बाप्तिस्मा लिया, एक नया धर्म प्राप्त किया। एक नया नाम मिला। एक नई पहचान मिली। ' (पृ. 86)महार युवकों के सेना में जाने के बारे में एक कथन है - "सूर्य उग रहा था। भीमनाक और सिदनाक ने भी हाथ खड़े किए। उगते सूरज को छूने के लिए दो अंगुल की दूरी थी। (पृ. 50)) ऐसा विचारोत्तेजक बयान ही एक हजार से अधिक पृष्ठों का बनने वाला उपन्यास दो सौ पृष्ठों में पूरा होता है।उपन्यास 'सनातन' सोनाई गांव में शुरू होता है और समाप्त भी वही पर होता है। अंतिम दृश्य में सनातनी हिंसा को सूचकता से चित्रित करने में लेखक ने सफलता प्राप्त की है। ' पडीवार पशु-पक्षीयों ने हल्ला किया था। वे मृत मांस के टुकडे नोंच रहे थे। वेदांत और हिंदू वाहिनी के स्वयंसेवक कॉर्टर के मृत शरीर के नजदिक खडे थे। गिध्दों की भनभनाहट बढ़ गई थी। (पृ.210)लेखक ने मृत जानवर का मांस खाने वाले पशु-पक्षियों और अछूत कॉर्टर में दाह संस्कार करने वाली सनातन प्रवृत्ति मे समानता चित्रित की है। 'एक बार फिर से फाल्गुनी नदी के पास एक बवंडर उठ खड़ा हुआ था।' जो अंतिम बदलाव को इंगित करता है, साथ ही सनातन व्यवस्था की स्थायित्व को रेखांकित करता है।यह उपन्यास पुरी महार जाती का प्रातिनिधिक चित्रण नही है। पुणे के नजदिक पेशवाकाल में महारोंपर बिती समस्या को चित्रित करता है। महाराष्ट्र मे रहनेवाले सभी महार जाती के लोग इसी समस्या से पिडीत थे, ऐसा नही है। बाबासाहब आंबेडकर द्वारा लिखी ' हू वेयर शुद्राज ?' यह किताब महारों का गौरवशाली इतिहास प्रस्तूत करती है। इसका जिक्र यह उपन्यास नही करता।

निष्कर्ष :-कुल मिलाकर शरणकुमार लिंबाले का उपन्यास 'सनातन' अतीत के एक मृत टुकड़े में पड़ी सामाजिक व्यवस्था की चिकित्सा करता है। लेखक भारतीयों के 1920 के दशक, स्वतंत्रता-पूर्व युग और पूर्व-लोकतांत्रिक युग के समय के टुकडे की ओर देखने के लिये विवश करता है। ये भारतीय शिक्षित है , प्रबुद्ध हैं और एक लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था से संबंधित हैं। इसलिए यह उपन्यास इतिहास में दबी सनातन संस्कृति को उजागर करने का अहसास कराता है। यह उत्खनन 'अतीत की सच्चाई को प्रकट करता है एवं सामाजिक व्यवस्था की अंतर्निहित बीमारी का निदान भी करता है। यदि कोई रोग वर्तमान और भविष्य में प्रखरता के साथ उछलकर सामने आया तो पोस्टमॉर्टम इलाज के लिए जरूरी है। इसी प्रकार शरणकुमार लिंबाले ने 'सनातन' के माध्यम से भारतीय सामाजिक व्यवस्था का पोस्टमॉर्टम किया है। उसी के आधार पर यह उपन्यास कुछ निदानात्मक कार्य करता है। जाति व्यवस्था की बीमारी भारतीय सामाजिक व्यवस्था के पेट में है। गांव में शोषण की एक व्यवस्था छिपी हुई है। अस्पृश्यता और जातिवाद की बीमारियों ने अछूतों को कमजोर बना दिया है। लोगों को उच्च और निम्न जातियों में विभाजित किया गया है। यह उपन्यास बताता है कि व्यवस्था के शरीर में मौजूद एंटीबॉडी कम पड़ रहे हैं। उपन्यास 'सनातन' व्यवस्था की तकलीफ से बाहर निकलने के लिए धर्मांतरण, स्थलांतरण, देशांतर और सैनिक बनना आदि तरीकों को दर्शाता है। इन रास्तों को अवरुद्ध करने वाले तंत्र प्रबल हैं, इसलिए प्रवृत्ति आज भी उतनी ही सक्रिय है जितनी पहले थी। धर्मांतरण के बाद भी जातिवाद और छुआछूत का अंत नहीं हुआ। झाडू की जगह बंदूक हातों में आने के बावजूद व्यवस्था का असर बना हुआ है। उपन्यास इस बात की भयावहता को व्यक्त करता है कि स्थलांतरण का तरीका भले ही कुछ हद तक सफल हो, लेकिन समय के साथ वहा भी शोषण होता है, इसकी भयावहता यह उपन्यास प्रकट करता है I 'सनातन' उपन्यास मानवीय बुद्धि में व्याप्त साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को दर्शाता है। अंग्रेज भारत में केवल व्यापार के लिए ही नहीं आए, बल्कि इसके पीछे उपनिवेश, आधिपत्य और लूट की नीति थी। ख्रिश्चन धर्म का प्रसार बदलाव और मुक्ति के लिए नहीं था, धार्मिक आबादी को बढ़ाना और साम्राज्य के लिए अपना समर्थन हासिल करना यह स्वार्थ था। विभिन्न देशों के उपनिवेशों में भारतीय मजदूरों और दासों की आपूर्ति शोषण पर आधारित थी।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति ने विकेन्द्रीकरण को वैसे ही खारिज कर दिया जैसे भारतीय रूढ़िवादियों ने सामाजिक परिवर्तन को खारिज कर दिया था। इसलिए 'सनातन' को एक साहित्यिक कृति के रूप में देखा जा सकता है जो धार्मिक और राजनीतिक शोषण से बाहर निकलने की दिशा दिखाती है। उपन्यास की कलात्मक कमियों को छोड़कर इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि उपन्यास 'सनातन' भारतीय और वैश्विक शोषण की समस्या को उजागर करता है।'सनातन' को महार जाति के साथ अन्याय करने वाले उपन्यास इस दृष्टि से देखना संकुचित होगा। व्यापक अर्थों में, यह सांप्रदायिक, धार्मिक और आधिपत्य की रोग की ओर इशारा करता है जो सभी के भीतर व्याप्त है और इससे बाहर निकलने का भी सुझाव देता है।

****

संदर्भ

1. भारत का संविधान (2002) : भारत सरकार की ओर से मुद्रित और प्रकाशित
2. सनातन (2029) : शरणकुमार लिंबाले, दिलीपराज प्रकाशन, पुणे

सामाजिक विसंगतियों एवं दलित जीवन की त्रासदी का दस्तावेज़: 'गट्टर का आदमी'

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1471

डॉ. पान सिंह
अध्यक्ष हिंदी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

समाज मनुष्यों का झुण्ड मात्र का नाम नहीं। समाज में रहकर सामाजिक होने के लक्षणों पर उतरना पड़ता है। कुछ कर्तब्यों तथा उतरदायित्वों को निर्वाह करना पड़ता है। कुछ संस्कारों एवं सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाना पड़ता है। कुछ नैतिक एवं सदाचारों को व्यावहारिक बनाना पड़ता है। कुछ त्याग और बलिदान करना पड़ता है। इस तरह न जाने कितने सांचों में ढलकर एक सामाजिक मनुष्य बना जा सकता है। एक सामाजिक मनुष्य ही सजग लेखक की भूमिका में समाज की सड़ी-गली मान्यताओं को अपनी नंगी आँख से देखता और अपने साहित्य के माध्यम से सम्पूर्ण समाज को अवगत करवाता है| इन सामाजिक विसंगतियों से ग्रस्त समाज को निजात दिलाने के लिए चिन्तन-मनन करना तथा विर्मश के रूप में उजागर करना एक जागरूक चितेरे लेखक का काम होता है| ठीक इसी काम को करते हुए यहाँ प्रतिष्ठित कथाकार एवं दलित चिन्तक रूप नारायण सोनकर दिखाई दे रहे हैं, जिन्होंने अपने उपन्यास 'गटर का आदमी' के माध्यम से नग्न समाज के नापाक चिथड़ों को उधेड़कर सम्पूर्ण समाज के सामने समस्या रूप में रखा है| उन्होंने इन चिथड़ों को उधेड़ने का ही नहीं, बलिक इनको जलाकर समस्त समाज को निजात दिलाने का मार्ग भी प्रशस्थ किया है। सोनकर जख्मों को कुरेदते ही नहीं, उनमें मरहम भी लगाते हैं और उनका उपचार भी करते हैं। सोनकर साहित्य शिखर की एक-एक सीढ़ी बड़े धैर्य सहजता, सोच-समझ, देख-परख कर चढ़ रहे हैं। एक उपन्यासकार के रूप में साहित्य जगत् की पहली सीढ़ी उनके उपन्यास 'डंक' से शुरू हुई और फिर 'सूअरदान' उनका बहुचर्चित तथा सम्पूर्ण समाज को एक जबरदस्त दस्तक देकर झकझोरने वाला, मिथकों को उखाड़ फैंक कर विविध आयामों को दर्शाता हुआ लोगों के दिलों में पहुंच कर गया। सोनकर एक-एक वाण तरकस से निकाल-निकाल कर संधान करते चले जा रहे हैं और वे वाण केवल मात्र साधारण वाण नहीं बल्कि पाठक वर्ग को आहत करने वाले बह्मास्त्र के समान हैं, जिनका बार अचूक है। इनका तीसरा बह्मास्त्र है इनका चर्चित उपन्यास 'गटर का आदमी'। 'गटर का आदमी' हिन्दी साहित्य में एक जबरदस्त दस्तक के साथ प्रस्तुत है। इस शोधालेख का उद्देश्य सोनकर के उपन्यास 'गटर का आदमी' में सामाजिक विसंगतियों एवं दलित जीवन की त्रासदी का विवेचन-विश्लेषण करना है|

'गटर का आदमी' उपन्यास की शुरूआत सोनकर एक प्रश्न के माध्यम से करते हैं। उपन्यास में यह प्रश्न उतना ही प्रभावी है जितनी उनकी सोच| उपन्यास की आरंभिक पंक्तियां इस प्रकार से हैं- 'जब एक ही बीज से दो तरह अंकुर निकलने लगें, जब एक ही घड़े से दो तरह का पानी आने लगे। जब एक ही आम से दो तरह का स्वाद मिले तब आप इसको क्या कहेंगे। तब क्या बीज, घड़ा और आम दोषी है?' 'गट्टर का आदमी' उपन्यास एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसे यदि गहराई से पढ़ा जाए तो केवल इस एक प्रश्न का उतर ही नहीं, बल्कि हजारों प्रश्नों के उतर स्वयंमेय ही मिल जाते हैं। उपन्यास में न जाने कितनी समस्याओं को सोनकर ने उजागर किया है और उनसे निजात पाने का तरीका भी बताया है। सोनकर का अभिव्यक्ति और अभिव्यंजना दोनों पक्ष ही बहुत सुदृढ़ हैं|

'गट्टर का आदमी' उपन्यास दलित समाज की व्यथा, उनके संघर्ष और कातर जीवन की त्रासदी तथा जिजीविषा के लिए तड़फ की कहानी है। दलित वर्ग जो अपने जीवन को तिल-तिल हवन करता हुआ और उच्चवर्ग के शोषण झेलता हुआ लाचारी से जीता है। सोनकर उस लाचार और शोषित दलित वर्ग को ठंडा लोहा बनाना चाहता है जिसकी चोट प्रहार होती है। उपन्यास में सोनकर इस वर्ग को चेतना प्रदान करता है और उसे हजारों रास्ते दिखाता है जिन्हें वह चुनकर समाज में अपना अस्तित्व स्थापित कर सकता है। 'गटर का आदमी' उपन्यास में बताया गया कि एक दलित मजदूर तपती दोपहर में सीवर लाईन की गंदगी साफ करने में स्वयं के जीवन की परवाह किये बगैर समाज की गंदगी को साफ करने में लगा हुआ है। उसका सारा बदन काले किचड़ में लतपथ और पसीने से सराबोर, है। वह जिन्दगी और मौत के बीच जूझता है। गट्टर साफ करते वक्त उसका सामना भंयकर विषधारी सांप से हो जाता है लेकिन वह उससे डरे बिना अपना काम करता है और सांप को अपने अस्तित्व पर हावी नहीं होने देता। मजदर सांप को मारे बगैर पकड़कर बाहर लाता है और उपन्यास के नायक सौरभ को दिखाता है। सौरभ उसकी पीठ थपथपाता है और सांप को वन विभाग को सौंपने को कहता है। सौरभ उन गंदे किचड़ से लबालब मजदूरों को गले लगता है और उसकी प्रेमिका यह देखकर पूछती है- 'आप कहां इन दलितों के बीच आ गए। ये आपके कौन हैं?

''ये मेरे दलित भाई हैं।''

'क्या यही आपका देश है।''

'हां, यही मेरा देश है।''

''तब तुमने मुझसे प्यार क्यों किया? तुमने मुझसे धोखा क्यों किया। तुम इतने खूबसूरत हो कि तुम दलित नहीं हो सकते हो। ये तुम्हारी 5 फुट 7 इंच की उंचाई, गोरा बदन, भूरी-भूरी आंखें, मजबूत सीना, चौड़ा ललाट किसी बहुत बड़े घराने की याद दिलाता है।' सौरभ की प्रेमिका उसे दलितों को छोड़कर उनकी दुनियां में चलने के लिए कहती हैं जहां धन-दौलत, शानो-शौकत हैं, हवाई सैर की जाती है लेकिन सौरभ उसकी दुनिया को ठुकरा देता है। वह अपने दलित भाईयों को बदलना चाहता है। वह उन्हें जागरूक करना चाहता है। दलित समाज के प्रति बदलाव की यही सोच पूरे उपन्यास में व्याप्त है जो कथाकार सोनकर के चिन्तन और चिंता को स्पष्ट करती है| 'गटर का आदमी' उपन्यास प्रतीकात्मक रूप चरितार्थ होता है। यहां केवल सोनकर का पर्याय उस समाज से ही नहीं है जो गटरों से किचड़ और गंदगी साथ करते हैं, बल्कि उस समाज से भी है जो त्रसित है, गरीब है, शोषित एवं उत्पीड़ित है। उन्होंने समाज में न जाने कितने ही प्रकार की समस्यओं तथा ऐसी घटनाओं की ओर संकेत किया है जो भयानक गटर से कम नहीं हैं। ऐसी गटर रूपी समस्याओं में दलित समाज के अलावा अन्य लोग भी त्रसित हैं। सोनकर उपन्यास में एक के बाद एक समस्या चित्रित करते जाते हैं और सौरभ जो उपन्यास का नायक है, उन समस्याओं को मिटाता चला जाता है। फिर वह समस्या चाहे आंगनबाड़ी के बच्चों को उचित भोजन का प्रबन्ध करना हो, चाहे कूड़े के ढेरों से कचरा उठाते बच्चों को स्कूल में एडमिशन की हो या फिर वन गुजरों की समाज से कटी हुई जिन्दगी को लेकर हो| यह समस्या चाहे पढ़े-लिखे लड़कों का अपनी पढ़ाई के लिए जूते पॉलिश करने की हो, जिन्दा जानवरों पर किये जाने वाले अत्याचार की कहानी हो या फिर ऑनर किलिंग का मसला हो| यह समस्या फिर चाहे सैक्स तथा शारीरिक भूख को मिटाने की हो, उच्चवर्ग की शानो-शौकत तथा दलित वर्ग का निम्नतर जीवन की कथा हो या तांत्रिक तथा ढांगियों की पोल खोलना हो| यह समस्या चाहे फिर आंखों से अंधों को उनके किसी भी शारीरिक अंगों में आंखें बनाकर दुनियां में नया प्रयोग करना हो, भ्रूण हत्या को रोकना हो, बलात्कार जैसी विकृतियों को रोकने के लिए बलात्कारी को नपूंसक बनाकर,

बलात्कार जैसी समस्याओं से निपटना हो या फिर समाज के आदिवासियों के जीवन की समस्याएं हो| समस्याओं का इस उपन्यास में अंत नहीं एक के बाद इस समस्या का उल्लेख उपन्यास में हुआ है फिर चाहे वह समस्या गटर समाज की अबलाओं की दीन-दशा का चित्रण हो, चाहे अलपसंख्यकों की समस्याओं को निपटाना हो, विभिन्न प्रकार की घरेलू हिंसा की समस्याएं हों, काले धन को वापिस लाने की समस्या हो, चाहे बी. पी. एल परिवारों की दिवारों में 'मैं गरीब हूं' आदि मजाक जैसी समस्या हो, देवदासियों का शोषण, मन्दिर के पैसे का सही उपयोग, बाहरी देशों के युद्धों से बचने के लिए सीमाओं की बन्दी, नौजवानों को युद्ध टेनिंग, साहित्यकारों को जीवन यापन हेतु पेंशन का प्रबंध आदि-आदि न जाने कितनी ही समस्याओं को सोनकर ने उपन्यास में बयान किया है साथ -ही-साथ समस्याओं के हल भी सुझाए हैं।

उपन्यास में सोनकर परम्परावादी, पुरातनपंथी व शोषक वर्ग को भी गटर ही मानते हैं। वे समाज के इस गटर पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं- 'गटर दो प्रकार की होती है। एक गटर जो जमीन के अन्दर होती है। दूसरी गटर वह है जो जमीन के उपर होती है। जो दिखाई नहीं पड़ती है। समाज में परम्परावादी, पुरातनपंथी व शोषक वर्ग होता है जो समाज में भेदभाव, असमानता, उंच-नीच, छुआछूत की सुंरगे या गटरें तैयार करता है। यह गटर जमीन के अन्दर वाली गटर से ज्यादा खतरनाक होती हैं।' सोनकर का हृदय इस गटर समाज के प्रति दुखता है जिन्हें लोग हेय दृष्टि से देखते हैं। उपन्यासकार उनके लिए चिन्तित है। वह उनके अस्तित्व को लेकर चिन्तित है। उनके लिए तड़फ उपन्यास में पूर्ण रूप से दिखती है। वह उन्हें इस छुआछूत और भयानक संड़ाध से बाहर निकालना चाहता है और प्रयासरत् है। वह बताना चाहता है कि केवल वास्तविक गटर तथा उसकी गंदगी साफ करने वाले हेय नहीं हैं, बल्कि समाज की वह दूसरी गटर इससे ज्यादा हेय है जिसका उपर्युक्त वर्णन हुआ है।भारतीय प्रशासन की पोल खोलने में सोनकर ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। जो प्रशासन दलितों और गरीबों के नाम पर कई कार्यक्रमों को चलाता है, उसका पैसा न जाने कहां प्रयोग होता है इसका कुछ भी पता नहीं। केवल जीने के लिए दो रोटी के टुकड़े ही जिन्दगी नहीं है। सोनकर बताना चाहते हैं कि यह हमारे देश की घटिया राजनीति है कि यदि दलित समाज को कुछ दिया जाता है तो उसके बदले उसके अस्तित्व पर एक भयानक प्रश्न चिह्न लगा दिया जाता है. जिसके तले वह दबकर रह जाता है। प्रशासन का इस निम्न एवं दलित वर्ग के प्रति कोई अच्छा रवैया नहीं है। सोनकर बताते हैं कि प्रत्येक बी. पी. एल. परिवारों के मकानों की दीवालों पर यह इबारत लिखी गई है- 'मैं गरीब हूं' इस इबारत को पढ़कर आदमी की हैसीयत बता दी जाती है कि तुम लाचार हो। यदि तुम्हें 2 रूपये प्रति किलो अनाज नहीं मिलेगा तो तुम भूखे मर जाओगे।' इस दलित समाज के युवाओं पर यह गोदना है कि तुम केवल गरीब हो, लाचार हो, नाकाम हो, बरोजगार हो, न जाने कितना कुछ कह देती है यह इबारत।

उपन्यास में ऑनर किलिंग की समस्या तथा कई अन्य प्रकार की समस्याओं को उजागर किया गया है। सोनकर बताते हैं कि श्री लोकेशचन्द्र परीजादा उच्च कुल के धनी हैं जिनके एक लड़का और दो लड़कियां हैं, लेकिन वे लड़के-लड़कियों में भेदभाव करते हैं। बेटा अपनी गर्लफ्रेन्ड के साथ रंगरलियां मानता है और बेटियों को घर से बाहर निकलने तथा दोस्त बनाने की इजाजत नहीं है। बेटियां मां से इस बात की शिकायत करती हैं तो मां कहती है- 'बेटी, लड़कों का कुछ नहीं बिगड़ता है। लेकिन लड़कियों का, लड़कों के साथ रहना ठीक नहीं होता है क्योंकि जब दो जवान लड़का और लड़की साथ रहते हैं तो दोनों के कदम डगमगा जाते हैं।' यह कितनी बड़ी बिडम्वना है कि लड़कियां फ्रेंड नहीं रख सकती, लेकिन लड़का कुछ भी कर सकता है। सोनकर लिखते हैं- 'माता पिता पुरानी परम्पराओं को ढो रहे थे। इस आधुनिक युग में भी वे प्राचीन बर्बर परम्पराओं को गले लगाये हुए थे। लड़कियों को वे अब भी लड़कों के बराबर मानने को तैयार नहीं थे। वास्तव में ऐसा करके व समाज में नारी के स्वप्नों का गला घोंट दिया जाता है। उसको अपना घर एक जेल की कोठरी लगने लगता है। मां-बाप खूंखार जेलर नजर आते हैं। लड़कियां हरदम उस जेल से बाहर निकलने की कोशिश करती हैं।' फिर वही होता है जो सोनकर बताना चाहते हैं। उनका दूरदर्शी दृष्टिकोण सफल रहता है। उनका मानना है, 'प्रकृति का यह नियम है कि प्राकृतिक चीजों को बहुत समय तक दबा कर मत रखो। शरीर में कुछ ऐसे हारमोंस पैदा हो जाते हैं जो आदमी और औरत के अन्दर कामाग्नि पैदा कर देते हैं। उस समय मेल-फीमेल को सही-गलत का कुछ ज्ञान नहीं रहता है। सेक्स शरीर की एक बायलॉजिकल नीड है। युवा समय में इसकी पूर्ति होना आवश्यक है।' ठीक ऐसे ही उपन्यास में दोनों बहिनों की शारीरिक भूख उनके दिमाग को खराब कर देती है और एक दिन वे दोनों हॉग आल्टर नामक मैकेनिक को लाइट ठीक करने के बहाने बुलाकर उससे अपनी कामाग्नि बुझाती हैं और उसे लहू-लुहान कर देती हैं। 'दोनों बहिनें निर्वस्त्र हो गयीं। थोड़ी देर बाद कमरे से चिलाने की आवाजें निकलने लगी। यह आवाजें बंगले में गूंज गयी। पूरे बंगले में चहल कदमी होने लगी। महिला बाडीगार्ड व घर के नौकर दौड़कर उपर वाले कमरे में आ गये। कमरे को खुलवाया गया। हॉग आल्टर बेड पर तड़प रहा था। खून पूरे बिस्तर पर फैल गया था। आल्टर के लिंग का कटा टुकड़ा बिस्तर के उपर पड़ा था। खून निकल रहा था। छोटी बहन संजना के हाथों में कैंची थी। बड़ी बहिन सुगना के हाथों में खून लगा था।..........महिला बाडीगार्ड ने तुरन्त पुलिस को फोन कर दिया। पुलिस बंगले में आकर दोनों बहिनों को अरेस्ट कर लिया।' सोनकर एक के बाद एक समस्या को उजागर करते हुए इस भयावह समाज के चिथड़ों को उधेड़ते चले जाते हैं।

सोनकर एक बहुव्यंगी एवं अनोखे शिल्पकार हैं जो अपनी कृति को मनोरम बनाने के लिए न जाने किन-किन औजारों का प्रयोग करते हैं। सोनकर के पास एक जबरदस्त हथियार है उनका चुस्त-दुरूस्त सैक्स का गर्मा-गर्म तड़का। पाठक जब भी ढीला पड़ जाता है तो उसकी शारीरिक और मानसिक मांसपेशियों को तरो-ताजा एवं उतेजित करने के लिए सोनकर का यह अद्भुत एवं विलक्षण वाण काम आता है। इनके इस प्रकार के प्रसंगों में एक अलग ही प्रकार की कशिश है। जिन्दगी को एक अलग ही नजरीये से एक एक अलग ही ढांचे में ढालने में सोनकर माहिर हैं। शारीरिक भूख किस प्रकार मानसिक भूख से बड़ी हो जाती है सोनकर जैसा अनुभवी एवं पारखी लेखक की बयान कर सकता है। उपन्यास में कई ऐसी घटनाएं हैं जो सोचने के लिए मजबूर कर देती हैं। सोनकर ने बनगूजरों की दशा अनोखे ढंग से बयान की है। बन गूजर सारे समाज से कटे तथा जंगली जीवन की विभिन्न कठिनाईयों को सहते हुए जीवन-यापन करते हैं। दूध बेचकर ही खाने-पीने की सामग्री जुटाते हैं। उनके दुख-दर्दों की कथा बयान करने के साथ-साथ रोमांटिक ढंग से उनकी सुन्दरता को भी बयान करते हैं। 'शादी विवाह आपस में इन्हीं कबीलों में होता है। लड़कियां बहुत खूबसूरत होती हैं। प्रकृति की गोद में रहकर ये जवान होती हैं। प्रकृति इनकी प्राकृतिक सुन्दरता बढ़ाने में मदद करती है। इनको देखकर मुझे परियों की याद ताजा हो जाती है। वही परियों जैसा रंग-रूप, परियों जैसी मुस्कान, सफेद मोती जैसे दांत, बड़ी-बड़ी आंखें, घुंघराले बाल बहुत बड़े-बड़े वक्षस्थल, घाघरे और चोली में जब चलती हैं तो ऐसा लगता है कि जैसी मोनालिसा साक्षात् प्रकट हो गयी है।' उपन्यासकार की कथा-कला बड़े ही बेवाक ढंग से प्रस्तुत हुई है।सोनकर बनगूजरों के जीवन से आहत हैं और चाहते हैं कि इनका जन-जीवन सुधरे। इसलिए वे बनगूजरों को सचेत करते हुए सौरभ के माध्यम से उपन्यास में कहते हैं- 'आप और आपके बच्चे यहां पर कितना कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पीने के लिए साफ पानी भी नहीं है।

आपकी झोंपड़ियों में बिजली नहीं है। अंधकार ही अंधकार है। बच्चों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। चिकित्सा की कोई सुविधा नहीं है। आप और आपके बच्चे इस देश के नागरिक नहीं लगते हैं।' सोनकर चाहते हैं कि सरकार इन बनगूजरों के जीवन के बारे में सोचे। इन्हें जीवन-यापन की कुछ सुलहतें प्रदान करे। बनगूजरों की दुखद स्थिति का वर्णन करते हुए सोनकर एक प्रेमकथा को भी आगे बढ़ाते हैं जो सौरभ और गरिमा के बीच चल रही है। वह सौरभ को इस दलित समाज से अलग करना चाहती है| अतः गरिमा को पता चलता है कि सौरभ बनगूजरों के पास गया है तो वह वहां पहुंच जाती हैं और सौरभ से पूछती है- 'ये बनूगजर तुम्हारे कौन हैं? ये बनगूजर मेरे भाई हैं।'

गरीमा झुंझलाते हुए बोली- 'तुम्हारे कितने भाई हैं?

'जो आदमी रोटी-रोटी के लिए मोहताज है और सुबह से शाम तक अपने बच्चों का पेट भरने के लिए जी तोड़ मेहनत करता है फिर भी ये निर्दयी समाज उनका शोषण करता है। उनको भूखों मरने देता है। ऐसे सारे लोग मेरे भाई हैं।' सोनकर इस बन्धुता की भावना को सारे समाज में एक सन्देश की तरह छोड़ता है। वह सारे समाज को एक करके जातीय, सम्प्रदाय, तथा धार्मिक भेदभाव से समाज को उपर उठाना चाहता है।

दलित जाति के शोषण को लेकर वे इतने चिन्तित हैं कि उनकी बातों में आक्रोश और विद्रोह झलकता है। शोषक के प्रति इस आक्रोश और विद्रोह को वे दलित समाज का अस्त्र-शस्त्र बना डालने से भी संकोच नहीं करते। 'गटर का आदमी' उपन्यास में एक ऐसी भी भावना बयान होती है। एक अपटूडेट आदमी एक लड़के से अपने जूते पॉलिश करवाता है और दस रूपये मांगने पर वह व्यक्ति लड़के को गालियां बकता है- 'साले! ठग रहा है, साले तुम लोगों ने लूट मचा रखी है।............लड़का स्वाभिमानी था। तुरन्त बोला- पॉलिश व ब्रश भी मंहगे हो गये हैं। मैंने मेहनत करके तुम्हारे जूते साफ किये हैं। मेरा शोषण क्यों करते हो?............उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। पांचे रूपये के बदले दस रूपये मांग रहा है। मेरे पांच रूपये लूट रहा है। नीच कहीं का....... लड़का बोला- हम लोग तुम्हारे जूतों की गन्दगी साफ करते हैं। ....ये साला, छोकड़ा दर्शन सिखाता है। चमार कहीं के।...........लड़का यह सुनकर विचलित हो जाता है। लपक कर उसका हाथ पकड़ लेता है। चार-पांच पालिश करने वाले लड़के उसको घेर लेते हैं।..........लड़का कहता है- मेरे जूतों में पॉलिश करो, मैं तुम्हें पन्द्रह रूपये दूंगा।' आदमी इंजीनियर था, बोला- जिसका काम होता है वही अच्छे ढंग से कर सकता है। लड़का कहता है- 'जूतों में पॉलिश करना केवल चमारों का काम नहीं है। जो आदमी परेशान है जूतों में पॉलिश करके अपना गुजारा कर सकता है, संविधान में कहीं नहीं लिखा कि केवल चमार ही जूतों में पॉलिश करेंगे।' लड़का बताता है कि उसके सब साथी पढ़े-लिखे हैं और हायर स्टडी के लिए फीस जमा करने के लिए ऐसा काम करते हैं। फिर वे सब मिलकर इंजीनियर से जूत पॉलिश करवाते हैं और उसे पन्द्रह रूपये देते हैं। लड़के ने इंजीनियर से पॉलिश इसलिए करवाई ताकि उसके मन से उंच-नीच की भावना को त्याग हो। सोनकर इस असहाय और दलित समाज के लिए कुछ भी करने और करवाने के लिए तत्पर रहते हैं। सोनकर उपन्यास में जिन्दा जानवरों पर होने वाले अत्याचारों के बारे में बताते हैं। समाज के इस दर्दनाक एवं क्रूर खेल को लेकर सोनकर का दिलो-दिमाग परेशान था कि कैसे एक इन्सान जिसे सामाजिक प्राणी कहा जाता है, जो बेवश एवं मूक जानवरों पर जुल्म ढाता है और जिसे अनदेखा कर हम कुछ कर नहीं पाते। सौरभ जानवरों के एक स्लाटर घर में जाता है जहां ढेरों जानवर कटते हैं। विदेशों तक में मांस सप्लाई होता है। 'दीन मौहम्मद ने कई भैंसों को लोहे के बड़े बड़े खूंटों से बांध रखा है। उनके चारों पैर एक मजबूत रस्सी से बंधे हैं। एक बहुत बड़ा कड़ाहा है, जो आग की भट्टी में चढ़ा है। उसमें पानी खौलता जा रहा है। दीन मौहम्मद और उसके नौकर जिन्दा जानवरों पर खौलता पानी उड़ेल रहे हैं। जानवर छटपटा रहे हैं और जोर-जोर से आवाजें निकाल रहे हैं। गरम पानी से धुलने के बाद उनको काटा जाता है।' दीन मौहम्मद कहता है कि वे ऐसा इसलिए करते हैं कि जानवरों का सोंधा मांस अधिक कीमत में बिकता है। 'सौरभ ने दीन मौहम्मद को समझाया और कहा कि यदि सोंधा मांस ही बेचना है तो जानवरों को काटने के बाद इनको उबले पानी में नहलाये तो जानवरों को भयंकर पीड़ा से मुक्ति मिल जायेगी। कटने के पहले उन्हें इतना अधिक दर्द नहीं सहना पड़ेगा।' सोनकर बताना चाहते हैं कि कैसे आज इन्सानियत पैसे पर मर गई है। आज इन्सान के लिए पैसा ही सब कुछ है। वह पैसे के लिए घिनौने से घिनौना काम करने से भी नहीं कतराता।इस घिनौने समाज की कथा यहीं खत्म नहीं हो जाती। न जाने कितनी ही ऐसी अनदेखी कहानियाँ हैं जिनके नापाक चिथड़े उधेड़ने के डर से ही जहन सहम जाता है। उपन्यास में सोनकर बताते हैं कि विदेशों में औरतें के साथ घिनौने अपराध नहीं होते। औरतें न तो दहेज के लिए जलायी जाती हैं और न ही उनकी कोख में बेटियों को मारा जाता है। उनका मानना है- 'इसके पीछे हिन्दू मैथालॉजी इसकी जड़ में है। दहेज के कारण ही कन्या भ्रूण हत्याएं हो रही हैं क्योंकि हिन्दू मैथालॉजी के अनुसार घर में एक लड़के का पैदा होना जरूरी समझा जाता है ताकि उनका वंश चल सके। विदेशों में इस तरह की कोई रूढिवादी धारणा समाज में नहीं पनपी है। भारत को इसलिए विदेशा अविकसित सोच वाला मुल्क कहते हैं।' सोनकर समाज को एक संदेश चेतावनी के रूप में देना चाहते हैं कि यदि विकसित देशों की सोच को अपनाएंगे तभी देश विकसित हो पायेगा, अन्यथा हमेशा विकासशील होने की दौड़ में भागते रहो। भारत तथा उसके नागरिकों के लिए यह करारा व्यंग्य है जो अपनी संकुचित मानसिकता को बदलना ही नहीं चाहते।

उपन्यासकार का मानना है कि हमारे देश में साधनों और साध्य की कमी नहीं है। कई लोगों के पास इतना धन है कि उन्हें पता भी नहीं कि कितना है और कई ऐसे हैं जिनके लिए रूपया भी बड़ी धन राशि है। रईसजादों के पास और फिल्मी सितारों के पास इतना पैसा और गाड़ियां हैं जिनका कोई अनुमान ही नहीं। लेकिन दूसरी और एक ऐसा वर्ग जिसके पास खाने के लिए रोटी भी नहीं। दूसरी तरफ लोगों के रहने के लिए जगह नहीं है जबकि आलीशान गाड़ियां आलीशान जगहों पर रहती हैं। इनकी देखभाल के लिए नौकर हैं लेकिन झुग्गी-झोंपड़ियां में रहने वाले की देखभाल के लिए बिच्छु और सांप हैं, कीड़े-मकोड़े है। रईसजादों के बीमार होने पर बड़े-बड़े देशी-विदेशी अस्पताल हैं। दूसरी ओर इन गरीबों के बीमार होने पर सरकारी अस्पताल तक नसीब नहीं होता है। एक तरफ रईसजादों के मरने पर पूरा प्रिंट और इलेक्टानिक मीडिया व लोग इनके गम में शामिल होते हैं। शानदार ढंग से करोड़ों रूपये खर्च करके इनकी अर्थी निकाली जाती है।'

भारतीय समाज में दलित और औरत दोनों का शोषण सदियों से होता आया है और आज भी हो रहा है। सोनकर बताते हैं, 'गटर समाज में अबला, लड़कियों और औरतों का समाज जुड़ता जा रहा है जिनका दर्द असहनीय है। आदिवासियों, बेहद गरीब दलितों, पिछड़ों और अन्य अल्पसंख्यकों की लड़कियों को एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में बेचा जा रहा है।..........चारों ओर दलाल फैले हुए हैं जिस तरह जानवरों को खरीदते समय उनको जांचा-परखा जाता है उसी तरह बिकने वाली लड़कियों को खरीरदार खूब जांचता-परखता है। जानवरों और मानवों के व्यापार में कोई अन्तर नहीं रहा है।...........ये सारी लड़कियां कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही है। गरीबी के कारण मां-बाप अपनी बेटियों को जल्लादों के हाथों बेच देते हैं जिनको जल्लाद नोंच-नोंच कर खाते हैं।' सोनकर एक वैद्य की तरह हैं जो पाठक की नस टटोलकर उसे सही समय पर सही दवा देते हैं। वे जानते हैं कि किस मर्ज की क्या दवा है।? उन्हें पता है कि पाठक को क्या चाहिए?

सोनकर सब जानते हैं। उनके उपन्यासों में यह कला बखूवी देखी जा सकती है। ऐसा निडर लेखक, ऐसा विचारों का खुलापन, ऐसा चुटीलापन, ऐसी वाक्वैदग्धता शक्ति, ऐसी कशिश, ऐसा बहुव्यंगी, ऐसा समाज का जागरूक चितेरा, ऐसा अनुभवी, ऐसा दलित चिन्तक सोनकर के अलावा कौन है?

सोनकर उपन्यास में इतनी समस्याओं के साथ-साथ एक प्रेम कहानी भी बयान करते जाते हैं और अब दोनों प्रेमी एक-दूसरे की भावना को समझ गए हैं और मानने लगे हैं कि जो आत्मसंतोष गरीबों की सेवा करने में है वह किसी कार्य में नहीं है। गरिमा अब सौरभ को समझने लगी है और उसके कार्यों की सराहन करती है हुई कहती है- 'वास्तव में तुम महान हो। मैं तुम्हें समझ नहीं पायी थी।' मनुष्य से प्रेम करने वाला व्यक्ति कभी भी स्वप्रेम में असफल नहीं हो सकता। सोनकर यह बताने की कोशिश करते हैं कि जो व्यक्ति दूसरों की सेवा बड़े प्रेम से करता है, ईश्वर उससे उसका प्रेम कभी नहीं छीनता। उसे उसका प्रेम प्राप्त होकर ही रहता है।

सोनकर इस गटर रूपी समाज के बारे में कहते हैं- 'गटर के अन्दर गया आदमी गटर से बाहर निकल आता है। लेकिन गटर के उपर बसा यह विकलांग समाज जिसको सारी दुनिया गटर नजर आती है। उनके जीवन में कोई प्रकाश की किरण नहीं आती है। उनका सारा जीवन अंधकार में गुजरता है। उनकी पीड़ा व दुख-दर्द क्या हम सभी महसूस करते हैं? उनका जीवन एक रेगिस्तान की नदी के समान होता है। जहां जल धारा नहीं आती है। उनको केवल तेज सूर्य का प्रकाश तपाता रहता है। रेगिस्तान की बालू नीचे से आग निकालती रहती है। सूर्य और धरती के बीच फंसा यह विकलांग समाज दोनों तरफ से पड़ने वाली गलियों और दुर्व्यवहार से इनको और झुलसाता रहता है।' सोनकर एक दार्शनिक की भाँन्ति इस गटर रूपी संडान्ध के घिनौने रूप को व्यक्त करते हैं और साथ में इसको मिटाने के लिए तत्पर हैं।

उपन्यासकार, समाज में व्याप्त समस्याओं तथा विकृतियों को गटर की संज्ञा देते हैं। उनका मानना है कि आम स्थान के अतिरिक्त समाज के धर्म, तीर्थ और पूज्य स्थल भी इस गटर रूप से नहीं बच पाये हैं। तिरूपति से लेकर बड़े-बड़े मन्दिर, मठ तथा धर्म स्थल जहां हजारों श्रद्धालु आते हैं और इन मन्दिरों में गेरूए वस्त्र धारण किये हुए ढोंगी पुजारी, साधु, मंहत रहते हैं जो मन्दिरों में रहने वाली देवदासियों के साथ कुकर्म करते हैं- 'गरीब परिवार के लोग बाल्यावस्था में ही अपनी पुत्रियों को देवदासी बनने के लिए मन्दिरों के पुजारियों के सुपुर्द कर देते हैं। ये जीवन भर शादी नहीं कर सकती हैं। केवल इन पुजारियों की दासी बन कर पूरा जीवन गुजारती हैं। वास्तव में लगभग 12 साल की उम्र पार करते ही इन देवदासियों का कौमार्य बर्बाद कर दिया जाता है। वास्तव में ये देवदासी नहीं बकि इन पुजारियों की रखैल बन करके सार जीवन यापन करती हैं।' ईश्वर के नाम पर स्थापित इन स्थलों में भी ऐसा भयानक और नग्न नाच मनुष्य की नीचता का पर्दाफाश करता है। सोनकर समाज में इन धार्मिक स्थलों के प्रति प्रशासन की कार्यवाही की ओर संकेत करते हैं और इन संस्थाओं और धर्म स्थलों से उन लाखों बहू-बेटियों की आबरू बचाना चाहते हैं जो बेवस होकर चुप्पी साध कर और अपना भाग्य मानकर घुट-घुटकर जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाती हैं। उपन्यास के अंत में सोनकर बताते हैं कि सौरभ और गरिमा देश के विभिन्न गटरों की ओर बढ़ जाते हैं जो आये दिन दलित समाज के लिए भंयकर गटर बनकर उनका शोषण का कारण बनते थे। वे दोनों आदिवासी प्रदेशों के कुछ इलाकों में जाते हैं जहां विभिन्न दवाईयां बनाने वाली कम्पनियां गरीब लोगों पर अपनी दवाईयों का टेस्ट करती थी जिससे समय-वेसमय उनकी मृत्यु भी हो जाती थी, उसे रोकने का प्रयास करते हैं। उन कम्पनियों को भंडाफोड़ करते हैं। सोनकर बताते हैं कि इस प्रकार सौरभ को इस गटर समाज के हित की विभिन्न योजनाएं मिलती जाती हैं। अब 'सौरभ का देश गरिमा के देश जैसा धीरे-धीरे बनता जा रहा था।' इन पंक्तियों से आश्य है कि सोनकर भी अपने देश को इस तरह का बनाना चाहते हैं जहां गटर का जीवन न जीया जाए। सोनकर, दलित वर्ग के लिए एक पथप्रदर्शक का कार्य कर रहे हैं।

निष्कर्ष:-कहा जा सकता है कि सोनकर एक-एक चीज का हिसाब रखने वाला बनिया है जो अपने साहित्य में भाषा, शैली, बिम्बों, प्रतीकों, उद्धरणों, मुहाबरों, कविताओं, गीतों, भावों, विचारों तथा सम्पूर्ण साहित्यिक गुणों को अपनी पारखी तथा विश्वसनीय तराजू में तोलकर बेचता है। न कम, न ज्यादा। वे जानते हैं कि सांप का विष किस मात्रा में औषधी का काम करता है? और किस मात्रा में वह जहर बन जाता है। सोनकर बहुत अनुभवी हैं हर बात का ध्यान रखते हैं। छोटे-छोटे एवं सहज वाक्यों के माध्यम से बड़ी-बड़ी बातों को आसानी से कह देते हैं और पाठक पढ़ते-पढ़ते ऐसा अनुभव करता है कि सोनकर सामने बैठ कर कोई मायवी कहानी सुना रहा हो और पाठक उसे बड़ी उत्सुकता एवं हैरानी के साथ सुन रहा हो। सोनकर की कथा-कला से प्रभावित पाठक अपने मन एवं अंगों-प्रत्यंगों से वैसे ही हाव-भाव व्यक्त महसूस करता है जैसे उपन्यास में व्यक्त हैं। पाठक खो जाता है और उपन्यास अपने अन्तिम चरण में पहुंचकर कृति के उद्देश्य को पूर्ण कर जाता है। सोनकर का दार्शनिक पक्ष अति सशक्त एवं अनुभवजन्य है। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि एवं प्रौढ़ शैली से लेखक अनुभवों को पिरोता चला जाता है और कब वह समाज के लिए दर्शन बन जाता है पता ही नहीं चलता। कथाकार सोनकर ऐसे जादूगर हैं जो बातों-बातों में दिल जीत लेते हैं। सोनकर के लिए कई उपमान देने को मन करता है लेकिन सभी उपमान उनके अनुभव, चिन्तन तथा उंची सोच के आगे फीके पड़ जाते हैं। वे ऐसे कारीगर हैं जो अपनी रचना को व्यष्टि रूप से निकालकर समष्टिगत बना डालते हैं। सोनकर एक दलित चिन्तक होने के नाते इस बात से चिन्तित भी हैं और प्रयासरत् भी कि किस प्रकार इस भंयकर बीमारी से निजात दिलाई जा सकती है। समाज का वह हिस्सा जो सदियों से सड़ांध को जीवन समझता है कब उससे बाहर आयेगा? सोनकर भी उस हट्टी लौहार की भान्ति हैं जो लोहे को कूट-कूटकर औजार बना कर ही छोड़ता है| लेखक उसी दिशा में कार्यरत हैं| निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'गट्टर का आदमी' उपन्यास प्राकृतिक सर्जना, मौलिक चिन्तन, सामाजिक विसंगतियों एवं दलित जीवन की त्रासदी का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

****

संदर्भ :-

1. रूपनारायण सोनकर, गटर का आदमी, अनिरूद्ध प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.11
2. रूपनारायण सोनकर, गटर का आदमी, अनिरूद्ध प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.1
3. वही, पृ.82
4. रूपनारायण सोनकर, गटर का आदमी, अनिरूद्ध प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.79
5. वही, पृ.47
6. वही, पृ.48
7. वही, पृ.49
8. वही, पृ.49
9. रूपनारायण सोनकर, गटर का आदमी, अनिरूद्ध प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.30
10. वही, पृ.33
11. वही, पृ.32-33
12. वही, पृ.39
13. वही, पृ.40
14. रूपनारायण सोनकर, गटर का आदमी, अनिरूद्ध प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.42
15. वही, पृ.43
16. वही, पृ.64
17. वही, पृ.52
18. वही, पृ.67
19. रूपनारायण सोनकर, गटर का आदमी, अनिरूद्ध प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.73
20. वही, पृ.66
21. वही, पृ.59
22. वही, पृ. 98
23. वही, पृ.102

हिंदी कथा साहित्य में अस्मिता मूलक विमर्श:विविध आयाम

प्रो.डॉ.एम.डी.इंगोले,
(हिंदी विभागाध्यक्ष तथा शोधनिर्देशक)
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, गंगाखेड जि.परभणी-431514(महाराष्ट्र) मो.नं.9970721935

'अस्मिता' शब्द का मूल अर्थ है, "अहंता, अहंकार, अस्तित्व, विद्यमानता या मौजूदगी। इसके पर्यायवाची शब्द हैं, अभिमान, अहं, अहंभाव, अहंमन्यता, आत्मश्लाघा, गर्व, घमंड, दर्प, दंभ, मद, मिथ्याभिमान आदि कहे जा सकते हैं।"[1]अर्थात'अस्मिता' शब्द का अर्थ हुआ अपने होने का भाव, अपनी मौजूदगी, अपनी पहचान, अपनी सत्ता या हैसियत। इसे ही हम अस्मिता कह सकते हैं। अंग्रेजी में इसे 'आईडेंटिटी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। प्रथमतः इसे अज्ञेयजी ने हिंदी में प्रयुक्त किया हैं। मूलतः यह स्त्रीलिंगी शब्द है, जो लडकी का नाम दर्शक है। भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि, वर्णाधिरित समाज रचना, जाति व्यवस्था, विविध धर्म-संप्रदाय, तथा सांस्कृतिक भिन्नता भारतीय समाज की गुण विशेषताएँ हैं। साथ ही यह सफेदपोश पूँजीपति, जमींदार शोषक वर्ग तथा किसान, मजदूर, कामगार, कर्मचारी, दलित-अस्पृश, आदिवासी और स्त्री वर्ग आदि में विभाजित हैं। पारंपरिक दृष्टि से अगर देखा
जाए तो सफेदपोश पूँजीपति और जमींदार वर्ग द्वारा दलित, आदिवासी, मजदूर, किसान, दबे कुचले और स्त्री वर्ग का निरंतर शोषण होता आया हैं। समकालीन समय में भी शोषण की प्रक्रिया आज भी जारी है, उसका केवल स्वरूप बदलला है।शिक्षा जागृति और लोकतंत्रात्मक मूल्यबोध के कारण अपनी अस्मिता और अस्तित्व की पहचान हर कोई तलाशने लगा है। उसे बचाये रखने की कोशिश में भी लगा है। अर्थात,

"अगर किसी व्यक्ति या समुदाय के वंश, जाति, धर्म, भाषा, लिंग या राष्ट्र की पहचनों को मिटाने की कोशिश या साजिश की जाती है तो वह व्यक्ति या समूह इन पहचनों को बचाने की चेष्टा करता हैं।"[2] अर्थात अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए वह दमखम कै साथ लडने को तत्पर रहता है। इतिहास के पृष्ठों को पलटकर देखें तो पता चलता है कि, मदमस्त सत्ता के अंधे ऐसे अस्मिता के आंदोलनों को दमन की नीति अपना कर नेस्तनाबूद कर देते हैं। अपने शिकंजे में कसकर पकड़ लेते हैं। भारत वर्ष में सदियों पूर्व अस्पृश, दलित, पिछडा, आदिवासी और स्त्री वर्ग अपनी पहचान खो बैठा था। इसके मूल में द्रविड़ संस्कृति के समय आर्य अनार्यों के बीच संघर्ष में हुई हार के बीज छिपे हुए हैं। प्रस्तुत वर्ग अपनी अस्मिता और.अस्तित्व की पहचान से बेखबर था। वह अपनी गुलामी को ही अपना प्रारब्ध मान बैठा था। या यूं कहें कि ऐसा उनके मानसपटल पर वर्णवर्चस्वी व्यवस्था ने बिंबित किया था। उनकी गुलामी का कारण अशिक्षा, अज्ञान और घोर अंधविश्वास था। इससे उबारने के लिए म.ज्योतिराव फुले, छ.शाहु और डॉ.बाबासाहब आंबेडकरजी ने ताउम्र अथक प्रयास किया है। म.ज्योतिराव फुलेजी का सर्व ज्ञात संदेश यहाँ दृष्टव्य हैं,

"विद्या बिना मति गई, मति बिना गति गई।
गति बिना वित्त गया, वित्त बिना शूद्र हतबल हुए।
इतना बड़ा अनर्थ केवल एक अविद्या ने किया।"

इसलिए उन्होंने सर्व प्रथम महिलाओं के लिए स्कूल खोले। अस्पृशों के लिए हॉस्टल और स्कूल खोले। छ.राजर्षि शाहुजी ने भी इससे भी आगे जाकर अस्पृशों के छात्रों के शिष्यवृत्ति प्रदान की। डॉ.बाबासाहब आंबेडकरजी ने निम्न वर्ग के लिए, "पढो-लिखो-संगठित बनों और अधिकार के लिए संघर्ष करो" का केवल नारा ही नहीं दिया अपितु उनके अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए विभिन्न जन आंदोलन किएँ। जिनसे हम भली भांति वीदीत हैं। संविधान द्वारा शिक्षा का सभी को 14 वर्ष की उम्र तक मुफ्त में शिक्षा प्रावधान कर सामाजिक न्याय, भाईचारा, स्त्री-पुरूष समानता के मानवीय मूल्यों को स्थापित किया हैं। वर्तमान सरकार ने शिक्षा का नीजिकरण कर पिछड़े तपके के गरीब विपन्न वर्ग को इससे भी वंचित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। महाराष्ट्र डॉ.बाबासाहब आंबेडकरजी की कर्मभूमि होने से दलित, पिछड़े, वंचित लोगों की अस्मिता के अधिकांश आंदोलन यहीं हुए हैं। परिणाम स्वरूप मराठी दलित साहित्य का यहां अविर्भाव हुआ। जिसमें उन पर हुए अन्याय, अत्याचार, गुलामी, लाचारी, तारतार कर दी गई'अस्मिता' को साहित्य विश्व पटल पर प्रेषित किया। उन आत्मकथाओं के अनुवाद अनेकानेक भारतीय भाषाओं में हुए। हमारा हिंदी साहित्य भी उससे अछूता नहीं रह सका। अर्थात हिंदी में दलित साहित्य उभरकर आया। उसने अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को तलाशकर तराशना शुरू किया।

समकालीनता को पर अगर हम गौर करें तो पता चलता है कि, दलित साहित्य ही मुख्य धारा का साहित्य माना जाने लगा है। जो अपनी अस्मिता को सर्वोपरि मानता है। इसके समांतर में स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किसान विमर्श, दृद्ध विमर्श और हाल ही में हिंदी साहित्य पटल पर किन्नर विमर्श अपने पुख्ता कदम जमाने की होड में लगा हैं। ये सभी अपनी अपनी अस्मिता एवं मानवीय अधिकार की जायज लडाई संवैधानिक तरीक़े से लडने में जुड़े हुए हैं। अगर ये सभी ऐसा नहीं करते हैं तो मानों वे पशुवत हैं, जडवत हैं। यह अस्मिताबोध शिक्षा एवं ज्ञान से ही संभव हो सका हैं। हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता और अस्तित्व की लडाई ओमप्रकाश वाल्मीकि, भगवानदास मोरवाल, सूरजपाल चौहान, डॉ.माताप्रसाद, डॉ.तुलसीराम, श्यौराज सिंह बेचैन, जयप्रकाश कर्दम, अजय नावरिया, रूपनारायण सोनकर, कर्मानंद आर्य, आदि ने लडी हैं, लड रहें हैं। दलित, आदिवासी स्त्री विमर्श की बात करें तो कौशल्या बैसंत्री, सुशीला टाकभौरे, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, कौशल पंवार आदि का कथा साहित्य देखा परखा जा सकता हैं। भारतीय सामाजिक परिवेश अंधविश्वास, वर्ण,वंश, जाति, स्पृश्य-अस्पृश्यता, शोषण और विषमता से ग्रसित हैं।इसका अंकन दलित साहित्य में यथार्थ और विस्मयकारी हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने अपनी 'जूठन' आत्मकथा तथा 'सलाम' कहानी में प्रकट हैं। लेखक ने 'जूठन' द्वारा अपने समाज को दयनीय और हीनता बोध की स्थिति से अवगत कर उससे उबरने का मौलिक संदेश दिया है। यही नहीं अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष की नीति को भी अपनाया है। वरिष्ठ कथाकार मोहनदास नैमिशरायजी ने 'अपने अपने पिंजरे' (2भाग) आत्मकथा में वर्णवर्चस्वी व्यवस्था की गुलामी के पिंजरे को तोडकर खुले गगन में ऊंची उडान भरने का प्रयास किया है। 'महानायक डॉ.बाबासाहब आंबेडकर' इस ऐतिहासिक उपन्यास द्वारा डॉ. बाबासाहब आंबेडकरजी के समग्र जीवन दर्शन को हिंदी साहित्य के विश्व पटल पर 'महानायक' के रूप में विराजित किया हैं। जो अब तक के लब्धप्रतिष्ठ तथाकथित मुख्य धारा के हिंदी साहित्यकारों ने डॉ.बाबासाहब आंबेडकरजी को दुर्लक्षित, उपेक्षित किया था। वस्तुतः डॉ.आंबेडकरजी विश्वमान्य महानायक, महापुरुष हैं। हिंदी फिल्म जगत में मात्र इन्हें 'महानायक' के रूप में पहले ही स्वीकृत किया है। यह गौरव की बात है।जयप्रकाश कर्दमजी एक सशक्त हिंदी कथाकार हैं। उनका 'छप्पर' उपन्यास, "दलित जीवन की समस्याएं, दलितों का शोषण, दलितों के साथ किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार आदि बातों की अभिव्यक्ति और इसके खिलाफ दलितों में हुई जागृति के कारण संघर्ष करने के लिए चेतीत हुए दलितों का भी चित्रण उपन्यास में प्रकट हुआ है।... 'छप्पर' यह उपन्यास हमें सवर्ण अवर्ण की

स्थिति से ही नहीं बल्कि भारतीय समाज के मूल ढाँचे से परिचित कराता है। जिसका आधार वर्ण व्यवस्था है। ...हमारी समाज व्यवस्था सवर्ण-अवर्ण, ऊँच-नीच और जातिगत भेदभाव पर विभाजित हैं।"[4] अर्थात भारतीय समाज में हमारी आजादी के 75 वर्ष बाद भी दलित, आदिवासी, स्त्री अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। श्यौराज सिंह बेचैन की कहानी 'शोधप्रबंध' उल्लेखनीय हैं। यह कलात्मक शैली में लिखी गयी है। इसमें उच्च शिक्षा व्यवस्था में मेधावी, होनहार, बुद्धिवादी, स्वाभिमानी दलित छात्र-छात्राओं के विरुद्ध किए जाने वाले षडयंत्र तथा शोषण को उघाडकर रख देती हैं। साथ ही यह दलित छात्रों के आंदोलन द्वारा न्याय की गुहार लगातीं है। श्यौराज सिंह बेचैन जी अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' के माध्यम से मानों अपने बचपन को अपने कंधों पर 'अस्तित्व' तथा 'अस्मिता' की तलाश में ढोते हुए नजर आते हैं। डॉ.तुलसीरामजी ने 'मुर्दहिया' के द्वारा दलितों के अभिशप्त जीवन की प्रतीति कराई है। सूरजपाल चौहान आत्मकथा 'तिरस्कृत' के माध्यम से अस्पृश्य, दलित समाज का वर्णव्यवस्था ने छुआछूत की बीमारी, गुलामी, शोषण ग्रस्त और तिरष्कृत समाज को आगाह कर आत्मभान तथा स्वाभिमान की राह दिखाकर उससे उबरने का संदेश दिया है।

रूपनारायण सोनकर जी हिंदी कथा साहित्य में नये मिथक गढने, नए प्रतीक प्रयुक्ति के कारण प्रयोगधर्मी रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। रूपनारायण सोनकर एक ऐसे कथाकार हैं, जो मनुवादी व्यवस्था की' 'छल-छलनीति' के 'डंक' से आहत 'नागफनी' के कंटीले पाश से जकडी 'जहरीली जडें' उखाड़ फेंकने का महनीय कार्य करते हैं। साथ ही वे 'सूअरदान' के माध्यम से भारतीय परंपरा से चली आ रही मिथकीयता को खंडित ही नहीं करते अपितु आमजन, पिछड़े, शोषित, दलित, सर्वहारा वर्ग को आर्थिक सबलता प्राप्त करने का दिशानिर्देश भी उदाहरण सहित प्रस्तुत करते हैं। अनभिज्ञ समाज को स्वाभिमान, अस्मिता, अस्तित्व बोध का जीवन दर्शन भी अपनी रचनाओं में प्रकट करते हैं। यही नहीं अपने स्त्री वर्ग को भी अपनी इज्ज़त बचाने हेतु ईंट का जवाब पत्थर से देते हैं। यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि, जहाँ भी अन्याय होता है, उसका जवाब कडे संघर्ष और लडाई से देते हैं। भारतीयों का सांस्कृतिक त्यौहार होली के अवसर पर दलित स्त्रियों की इज्ज़त-आब्रू सवर्ण लोग गंदी-गंदी गालियाँ देकर सरेआम निलाम करते हैं तब सोनकर जी खामोश नहीं बैठते, वहीं उल्टा जवाब देते हैं। इस बात का खुलासा भी वे करते हैं कि, "हमारा उद्देश्य ब्राह्मणों की औरतों को गाली देना नहीं है। हमारा उद्देश्य अपनी औरतों को अपमानित होने से बचाना है। हम तो यह भी चाहते हैं कि, औरत औरत होती है, चाहे वह दलित हो या गैर दलित। सभी औरतों की गरिमा, मानसम्मान की रक्षा करना हम सभी का कर्तव्य है। ... समाज में अपमानित होने वाली परंपराओं को बंद करना मात्र दलितों का उद्देश्य है।"[5]भारतीय वर्ष में आज भी कुछेक धार्मिक स्थलों, पनघटों पर पिछड़े वर्ग के लोगों का प्रवेश निषिध्द है। अतः अपनी अस्मिता को बचाये रखने हेतु यह वर्ग धर्म परिवर्तन की राह अपनाते हुए नजर आते हैं।

रूपनारायण सोनकरजी के कथा साहित्य के चरित्रों की खास विशेषता है कि, वे समस्याओं के सम्मुख घुटने नहीं टेकते, हार नहीं मानते हैं बल्कि वे उसके साथ दो-दो हाथ, संघर्ष करने के लिए तत्पर रहते हैं। छायावादी कवियों पर यह आरोप लगाया जाता है कि, वे. जीवन की समस्याओं से विमुख होकर उसका समाधान प्रकृति में ढूंढते हैं। या उसीमें रममाण होते हैं। वास्तविक जीवन से पलायन करते हैं। परंतु सोनकर जी जीवन की हर मुसीबत का मुकाबला करते हैं। बडे साहस और संजिदगी से लडते हैं। परिस्थितियों से समझौता नहीं करते हैं। अपने सम्मुख कदमों में झुकने के लिए बाध्य करते हैं। प्रकृति में पशु-पक्षियों के साथ मानवीय सहजीवन को रूपायित करते हैं। यही मनुष्य जीवन की आर्थिक उन्नति में सहायक सिद्ध करते हैं। सोनकर जी अपने स्वाभिमान अधिकार की जंग संवैधानिक तरीक़े से लडते हैं। उनका उपन्यास 'सूअरदान' की मूल परिकल्पना 'पशु और मानव के क्लोन' से 'मानवर' की निर्मिति तथा उपन्यास के चरित्र 'सज्जन खटिक', 'सत्यनारायण त्रिपाठी' और 'पुजारी दयाशंकर' को आधार बनाकर राकेश रोशन ने 'क्रिश थ्री' फिल्म बनाई। जिसमें लेखक की कॉपी राईट की अवहेलना के जुर्म में 2013 में सोनकरजी ने इलाहाबाद हाईकोर्ट में मामला दर्ज कर लडाई लडी। समझौते के लिए उन पर दबाव भी डाला गया। धमकियां दी गई। उनके वकील को खरिदा गया। फिर भी वे मुकदमा जीत गये। इस स्वाभिमान और हक की लडाई का जिक्र उन्होंने खुद हंस पत्रिका-नवंबर-2019 के दलित विशेषांक में 'भटकटैया' शीर्षक के अंतर्गत की है। दलित, आदिवासी, पिछड़े, शोषित वर्ग से भी अधिक दयनीय स्थिति स्त्री-वर्ग की है। शूद्रों से भी अतिशूद्र स्त्रियों को माना गया है। उसे केवल भाग की वस्तु और वंश चलाने का साधन मात्र माना गया था। स्वातंत्र्योत्तर काल में संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार तथा शिक्षा जागृति के कारण अपनी अस्मिता, अस्तित्व और स्वाभिमान की लडाई वे लड रहीं हैं। स्त्रियों में दलित, आदिवासी स्त्रियों की स्थिति तो और भी गंभीर, भयावह, सोचनीय, दयनीय, हैं। इसका जिक्र लेखिकाओं ने अपनी कथात्मक रचनाओं में बडी संजिदगी से एवं खुलकर किया हैं। कौशल्या बैसंत्रीजी ने 'दोहरा अभिशाप' में स्त्री किस तरह मजबूर, शोषण, अवहेलना, अवमान, अपमान, घृणा, प्रताडना, तिरस्कृत अभिशप्त जीवन जीती हैं, इसे उद्घाटित किया है।

समकालीन समय में 'किन्नर विमर्श' या 'ट्रांसजेंडर' अपनी अस्मिता की जडों की तलाश में संघर्षरत हैं। वह भी एक मानव है। उसे भी अपने मानवीय संवेदनाओं तथा अस्मिता के साथ जीने पूरा पूरा अधिकार है। इसे स्थापित करने में अलीगढ़ के डॉ.फिरोज अहमद तथा उनके सहयोगी डॉ.शगुफ्ता नियाज प्रयासरत हैं। उन्होंने, 'अनुसंधान' तथा 'वाङमय' के अनेक विशेषांक प्रकाशित किए हैं। उन्होंने कहानी, उपन्यास एवं साक्षात्कार को केंद्र में रखकर इस विमर्श को स्थापित करने का प्रयास किया हैं। किन्नर समाज मुख्य धारा समाज से घृणित, तिरस्कृत, अपमानित, यौन पीडित-शोषित, बहिष्कृत जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। अतः वह भी अपनी अस्मिता, अस्तित्व, स्वाभिमान, मानवीयता की जंग लड रहा है। वह भी उच्च शिक्षा ग्रहण कर अपनी शापित जिंदगी को वैज्ञानिक अविष्कार का आधार लेकर सर्जरी द्वारा आम मनुष्य की तरह जीवन जीने के लिए प्रयासरत हैं। किन्नर की मनोदशा और उनके प्रति सामाज का रवैय्या क्या होता है, इसे 'दर्द न जाने कोय'(लवलेश दत्त), 'गुलाम मंडी'(निर्मला भूराडिया), 'यमदीप' (निरजा माधव), 'मैं पायल' (महेंद्र भीष्म), 'तीसरी ताली' (प्रदीप सौरभ), 'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' (चित्रा मुदगल), 'मैं भी औरत हूँ' (अनुसूया त्यागी), 'आधी दुनिया' (मेहराज अहमद), 'किन्नर गाथा' (महेंद्र भीष्म) आदि द्वारा बखूबी समझा जा सकता हैं। संक्षेप में अस्मिता मूलक विमर्श:विविध आयाम पर दृष्टिक्षेप करने से हमें यह ज्ञात होता है कि, भारतीय समाज व्यवस्था विभिन्नता से पूर्ण है। इसमें धार्मिक, सामाजिक गलत रूढि परंपरा, सांस्कृतिक, सांप्रदायिक, जातिगत भेदभाव, के कारण ऊँच नीच, स्पृश्य अस्पृश्य, छुआछूत, शोषण, हीनता भाव का शिकार वर्ग अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की लडाई आजादी के 75 वर्षों बाद भी लड रहा हैं।

जिसमें प्रधान रूप से दलित, आदिवासी, स्त्री और किन्नर आदि विमर्शों को इसका अधिक शिकार होते हुए पाया जा ता रहा हैं। हिंदी कथाकारों ने इसे अनोखे ढंग से इसे रेखांकित किया है। अतः हम कह सकते हैं कि, चाहे दलित हो, आदिवासी हो, स्त्री वर्ग हो या किन्नर हो सभी अपनी - अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व और स्वाभिमान की लडाई लड रहें हैं। अपना वतर्मान और भविष्य निर्माण में निरंतर प्रयासरत हैं। मानवीय मूल्यों- बंधुत्व, समता, न्याय, सौहार्द, सजग, संपन्न, समृद्ध आमन और शांतिपूर्ण मनुष्य जीवन की अभिलाषा हिंदी साहित्य करता है।

****

संदर्भ संकेत:

1.इंटरनेट
2.इंटरनेट
3.इंटरनेट:आलेख:जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर'उपन्यास में चित्रित दलित चेतना-डॉ.उत्तम लक्ष्मण थोरात
4.नागफनी:रूपनारायण सोनकर(पृ.60)

भारत में जनजातीय विकास: आशाएं और योजनाएं

डॉ. संजय यादव
सहायक आचार्य
जनजातीय अध्ययन, कला संस्कृति एवं लोक साहित्य
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक. म.प्र.

सभी जीव धारियों को भोजन की आवश्यकता होती है। मनुष्य सभी जीव धारियों में बुद्धिमान प्राणी माना जाता है। मनुष्य को भी भौतिक रूप से आहार आवास और आवरण की आवश्यकता है। सभी भौतिक आवश्यकताओं में यह तीन आवश्यकताएं जीवित रहने के लिए अनिवार्य है। इन्हीं के निमित्त व्यक्ति अपने सभी कार्यों को निष्पादित करता है। हमारे वैदिक परंपरा में इसे स्वीकार भी किया गया है कि- "सर्वारंभा: तण्डुलप्रस्थामूला:।" अर्थात जितने भी उद्योग हैं सब की जड़ में पाव भर चावल का बल है। विकास के मानक भी आवास आहार और आवरण से ही निर्धारित किए जाते हैं। अपनी इस भौतिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन करते रहते हैं। रोजी रोटी और रोजगार व्यक्ति को 'परदेसी' भी बना देती है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 705 से अधिक जातियों को अनुसूचित जनजाति के रूप में चिह्नित किया गया है। अपरिगणित जनजातियों की संख्या 254 घुमंतू जनजातियों की जनसंख्या 198 तथा अर्द्धघुमंतू जनजातियों की संख्या 13 है। अर्ध घुमंतु जनजातियां केवल राजस्थान राज्य में चिन्हित की गई है। भारत में ही नहीं अपितु वैश्विक फलक पर भी इन जनजातियों का जीवन परिश्रम और संघर्ष का जीवन है। शारीरिक श्रम ही इनकी आर्थिक पूंजी है। यह समुदाय आर्थिक तथा सामाजिक रूप से सर्वाधिक पिछड़ा समुदाय है। यह समुदाय या तो अपना श्रम बेच कर अपना जीवन यापन करता है अथवा आखेट या वनोपज संग्रहण इसके जीवन का आधार है। विकास के आधुनिक मानक आर्थिक आधार पर ही निर्धारित किए जाते हैं। विकास के इन आधुनिक मानक पर यह समुदाय अन्य समुदायों की तुलना में अत्यंत पीछे हैं। इनमें से अधिकांश पीढ़ियों से वंचित और बेसहारा जीवन जी रहे हैं साथ ही साथ उनका भविष्य के लिए भी कोई निश्चित आधार नहीं दिख रहा है। कोई भी राष्ट्र किसी समूह को वंचित कर सर्वांगीण विकास का दावा नहीं कर सकता है क्योंकि राष्ट्र निर्माण में सभी जन की भूमिका होती है। सभी समुदायों की सहभागिता होती है। अथर्ववेद के 1 मंत्र (19.41) में राष्ट्र के जन्म का इतिहास मिलता है जिसमें हमारे वैदिक ऋषियों ने सबके कल्याण की चेष्टा की है- भद्रमिच्छन्त ऋषय:। सबकी कल्याण में ही राष्ट्र का कल्याण निहित है। ऐसे में सरकार द्वारा क्रमबद नियोजन और विकासात्मक ढांचा तैयार कर बहुस्तरीय लाभ देने का प्रयास आवश्यक है।

बीज शब्द: जनजातीय, विकास, सरकार, योजनाएं, आत्मनिर्भर।

उद्देश्य:- हरियाणा पंजाब चंडीगढ़ पांडिचेरी और दिल्ली को छोड़कर जनजातीय समाज संपूर्ण भारत में पाया जाता है। यह सभी समूह विकास के अलग-अलग स्तरों पर हैं। कई जनजातीय समूह ऐसे हैं जो खाद्य संग्राहक अवस्था में है तो कई समूह विकास के उच्चतम स्तर पर हैं। इन विभिन्न अवस्था वाले समाजों निम्न आर्थिक स्तर पर जीवन यापन करने वाले समूहों का अध्ययन तथा उनकी स्थिति में सुधार हेतु आवश्यक प्रयास तथा सरकारी योजनाओं का अध्ययन इस शोधपत्र का उद्देश्य है।

भूमिका:-भारत में भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विविधता बहुतायत में है। उत्तरयंत समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं। वर्षं तद् भारतं नाम भारती संतति। विष्णु पुराण की यह पंक्तियां भारतीय विविधता में उसकी एकता निरूपित करती है। इस भौगोलिक विविधता में एक आत्मिक एकता है कि जो भारतवर्ष में है वह मां भारती की संतति है तथा वह किसी भी जाति धर्म से पहले भारतीय है। भौगोलिक वातावरण के आधार पर मानव का रहन-सहन तथा सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश भी निर्भर करता है। भारत की विविधता युक्त भौगोलिक पृष्ठभूमि में विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोग निवास करते हैं। कविवर रवींद्रनाथ टैगोर ने भारत की सांस्कृतिक विविधता में उसकी एकता को निरूपित करते हुए उसे महामानव समुद्र कहा था (त्रिवेदी 2022)। कविवर रवींद्रनाथ टैगोर के ध्यान में हिमालय से हिंद महासागर तक और कच से कामरूप तक फैली हमारी जीवन शैली और जीवन दर्शन रहन-सहन का सतरंगी इंद्रधनुष था। उन्होंने भारत की विविधता और लोक मान्यताओं को निहारा था। भारत में विभिन्न धर्मों संप्रदायों तथा अनेक विदेशी पृष्ठभूमि के लोगों का एक साथ रहवास है। जिसके कारण यहां सांस्कृतिक विविधता बहुतायत में है। यह न केवल जातियां पाई जाती है। अपितु अनेक जनजातियां भी पाई जाती हैं।

जनजातीय विकास वर्तमान समय का सर्वाधिक चर्चित विमर्श है।जनजातीय विकास पर विचार से पूर्व जनजाति और विकास पर विचार न्याय संगत प्रतीत होता है। मानवशास्त्रीय अध्ययन में उन समुदायों को जनजाति की श्रेणी में रखा गया है जिनमें निम्नलिखित लक्षण पाए जाते हो-कम जनसंख्या घनत्व, अर्थव्यवस्था का आदिम स्वरूप, आदिम राजनीति व्यवस्था, धर्म का आदिम स्वरुप लिपि का अभाव तथा अन्य सामाजिक समूहों से पृथक्करण (वैद्य 2003)। 1965 में गठित लोकुर समिति ने भी अपने प्रतिवेदन में यही मानक निर्धारित किया था कि उन समूहों को जनजाति की श्रेणी में रखा जाए जिनमें निम्नलिखित विशेषताएं हो-आदिम लक्षण, विशिष्ट संस्कृति, अन्य समुदायों से संपर्क से संकोच, आर्थिक पिछड़ापन तथा भौगोलिक अलगाव।

आज आदिवासियों की भगौलिक अलगाव वाली छवि पुरानी हो चुकी है। अब उन व्यापक गतिशीलता आ गई है। भारत तथा यूरोप में मानव शास्त्री अब यह मानने लगे हैं कि जनजातीय समाज समय के साथ अपने को बदलने लगे हैं। भारत में प्राय: ऐसे सामाजिक समूहों को जनजाति कहा जाता है जिन्हें भारतीय राष्ट्रपति अनुच्छेद 342 के आधार पर सार्वजनिक सूचना द्वारा जनजाति घोषित करता है (पांडेय 2007)। विकास को परिभाषित करना कठिन कर्म है। अलग-अलग विज्ञान में इसे अलग-अलग रूपों में परिभाषित किया जाता है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि एक निश्चित समय सीमा के अंतर्गत वांछित दिशा में परिवर्तन ही विकास है।

जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार जनजातियों की संख्या 10.45 करोड़ है जो संपूर्ण भारतीय जनसंख्या का 8.6% है। 1961 में इनकी जनसंख्या 6.9% थी जो 2011 में बढ़कर 8.6% हो गई। लेकिन विकास के विभिन्न मांगों पर जनजातियों की सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति बहुत कम रही। यद्यपि की इनके विकास हेतु अनवरत प्रयास होते हैं। जनजातीय विकास के आरंभ का श्रेय मौर्य सम्राट अशोक को दिया जाता है। सम्राट अशोक ने इस कार्य के लिए अपने मंत्रिमंडल में एक मंत्री (अंतमहामात्य) की नियुक्ति की थी। अंतमहामात्य समान नागरिकों के हितों का ध्यान रखता था परंतु जनजाति समाज के विकास में उसके किसी विशिष्ट योगदान का वर्णन अशोक के किसी भी शिलालेख में नहीं मिलता है (वैद्य 2003)। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में पहली बार जनजातियों के संदर्भ का स्पष्ट उल्लेख किया गया, परंतु इनके लिए किसी विकास कार्य का उल्लेख नहीं मिलता।

आधुनिक भारत के इतिहास में जनजातीय विकास को

व्यवहारिक धरातल अंग्रेजो द्वारा दिया गया परंतु उनका उद्देश्य जनजाति विकास नहीं था अपितु उनका लक्ष्य जनजातीय समाज की सरलता का लाभ उठाकर उसे ईसाईयत का पाठ पढ़ाना तथा अंग्रेजों का पक्षधर बनाना था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय विकास को एक नया मोड़ दिया गया। नेहरू एल्बिन वार्ता के बाद जनजाति विकास के उपागम को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया गया। हमारे संविधान में अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए अनेक प्रावधान किया गया।

संवैधानिक प्रावधान:- भारतीय संविधान निर्माताओं ने कमजोर वर्गो के विशेष जरूरतों को दृष्टिगत रखते हुए विशेषकर अनुसूचित जनजातियों की रक्षा के लिए कुछ विशेष प्रावधान किए हैं। अनुच्छेद 46 स्पष्ट रूप से उल्लेख करता है कि राज्य लोगों के कमजोर वर्गो विशेष रूप से अनुसूचित जातियों जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष सावधानी से बढ़ावा देगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।" इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 10 वर्ष का समय भी निर्धारित किया गया पर समस्या इतनी जटिल थी कि 10 वर्ष के भीतर कुछ विशेष कर पाना बहुत मुश्किल था। संविधान द्वारा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार हैं-

क्रमांक	अनुच्छेद	प्रावधान
1	14	सबको समान कानूनी संरक्षण
2	15	धर्म, नस्ल, जाति लिंग जन्म स्थान के आधार पर विभेद की वर्जना
3	15(4)	सरकारी समाज के पिछड़े वर्गों विशेषकर अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान कर सकती हैं
4	16(4)	नियुक्तियों में आरक्षण की व्यवस्था
5	38	लोक कल्याण को बढ़ावा देने का कार्य
6	46	अनुसूचित सूचित जनजातियों समेत सभी कमजोर वर्गों को बढ़ावा देने का कार्य
7	164(1)	बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश जैसे अनुसूचित जनजातियों की बड़ी आबादी वाले राज्यों में एक जनजाति कल्याण मंत्री
8	275(1)	अनुसूचित जनजातियों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए अनुसूचित क्षेत्रों में प्रशासन के सुधार के लिए विशेष अनुदान।
9	330,332,335	लोकसभा, विधानसभा, और सेवाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए पदों का आरक्षण।
10	340	सरकार सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति का पता लगाने के लिए एक आयोग का गठन करेगी।
11	342	अनुसूचित जनजाति चिन्हित करने के संबंध में राष्ट्रपति की घोषणा।
12	पांचवी अनुसूची	अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और जनजातीय सलाहकार परिषद के गठन के लिए निर्देश [244 (1)]
13	छठी अनुसूची	असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के कुछ क्षेत्रों स्वायत्त जिला या स्वायत्त क्षेत्र घोषित कर तथा जिला परिषदों के गठन के द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन।

ग्रामीण भारत में स्थानीय स्वशासन को बढ़ावा देने तथा महात्मा गांधी के सपने लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए 1992 में 73वां संविधान संशोधन किया गया तथा पंचायतों को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई। इस संशोधन द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज्य संस्था को कानून का रूप दिया गया। क्योंकि अनुच्छेद 343 (m) के अंतर्गत अनुसूचित और जनजातिय क्षेत्रों के लिए इसकी प्रासंगिकता सीमित थी। इस प्रासंगिकता के विस्तार के लिए पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम PESA-Panchayat extension to schedule areas-1996 पारित किया गया। इस अधिनियम को 24 दिसंबर 1996 को राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित किया गया था। इस अधिनियम द्वारा जनजातीय समुदाय को स्वशासन का अधिकार प्रदान किया गया। भूरिया समिति ने 1995 में जनजातीय स्वशासन पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस समिति के प्रतिवेदन के बाद अनुसूचित क्षेत्रों में रहने वाले इस समिति के प्रतिवेदन के बाद अनुसूचित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों हेतु आदिवासी स्वशासन सुनिश्चित करने के लिए पेसा अधिनियम 1996 अस्तित्व में लाया गया। यह ग्राम सभाओं के माध्यम से स्वशासन सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। यह अधिनियम आदिवासी समुदाय को स्वशासन की अपनी प्रणालियों के माध्यम से स्वयं को शासित करने का अधिकार देता है तथा प्राकृतिक संसाधनों पर उनके पारंपरिक अधिकारों को स्वीकार करता है।**पेशा अधिनियम और ग्राम सभाएं:-**

गांव के प्रधान को ग्रामीणी कहा जाता था। प्रियदर्शी अशोक ने गांव की भारतीय जनता के लिए एक अतिशय मनोहारी और सम्मानित शब्द का प्रयोग किया-'जनपद जन'। अशोक के लेखों का परायण करते समय बहुमूल्य शब्द मिलता है (अग्रवाल, 2009)। राजनैतिक जीवन में ग्रामवासी जन समुदाय की ओर सबका ध्यान आकृष्ट हुआ और चिरकाल से विस्मृत जन समुदाय की स्मृति सबको प्राप्त हो रही है। लोक स्थिति को सुधारने के लिए अशोक ने एक राज्यकीय पुरुष नियुक्ति किया जिसका कार्य केवल जनपद जन के हितों की चिंता करना था। प्रियदर्शी अशोक ने जनपद जन को शासन के केंद्र में रखकर एक नवीन आदर्श की स्थापना किया। बाद के समय में भी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में इसे प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया गया। पेसा अधिनियम के द्वारा ग्राम सभाओं को विकास योजनाओं को स्वीकृति देने और सामाजिक क्षेत्रों को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अधिकार दिया गया-

जल जंगल जमीन और संसाधन।

लघु वनोत्पाद।

स्थानीय बाजारों का प्रबंधन।

भूमि अलगाव को नियंत्रित करना।

नशाखोरी तथा नशीली पदार्थों पर नियंत्रण।

पहचान का संरक्षण तथा संघर्षों का समाधान।

यदि इस अधिनियम को वास्तविक रूप में क्रियान्वित किया जाए तो यह ग्रामीण स्वशासन प्रणाली तथा लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को पुनर्जीवित करने में सफल सिद्ध होगी। साथ ही साथ ही यह स्वशासन को अधिकाधिक लिंग समावेशी तथा लोकतांत्रिक बनाएगी। यह कानून जनजातीय समुदाय की धार्मिक एवं परंपरागत नीतियों के संरक्षण और संवर्धन पर विशेष जोर देती है। इसमें विवादों को प्रथा गत उपायों द्वारा समझाने तथा सामुदायिक संसाधन का प्रबंधन करने पर विशेष बल देती है। इस अधिनियम की धारा 4 (अ) तथा 4 (द) मैं यह उल्लेख किया गया है कि किसी राज्य की पंचायत से संबंधित कोई विधि उनके प्रथा गत कानून सामाजिक एवं धार्मिक नीतियों तथा सामुदायिक संसाधनों के परंपरागत प्रबंधन के व्यवहारों के अनुरूप होगी तथा प्रत्येक ग्रामसभा लोगों की परंपराओं एवं प्रथाओं के संरक्षण एवं संवर्धन उनकी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखेगी तथा विवादों को प्रथागत ढंग से निपटाने में सक्षम होगी (Behura 2006)।

जनजातीय विकास की योजनाएं एवं कार्यक्रम:-

जनजाति विकास को लेकर औपनिवेशिक शासन में कुछ प्रयास

अवश्य किया गया था पर इस शासन की नीति जनजाति विकास के संदर्भ में स्पष्ट नही थी। ओमे लेने ब्रिटिश राज्य जनजाति संबंधी कार्यों की आलोचना में लिखा है कि-"आदिम जातियों के तत्काल उपयोग में आने की बात तो दूर रही भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना ने लाभ से अधिक हानियां पहुंचाई है" (सिंह 1985)। ब्रिटिश शासन की जनजातीय विकास की नीति जनजातियों को सहायता देने की अपेक्षा उन्हें नियंत्रण में रखने की थी। जनजाति समस्याओं के समाधान के लिए मानव शास्त्री तथा स्वयंसेवी संस्थाएं भी कार्यरत रहीं। आज भी स्वयंसेवी संस्थाएं अपने उद्देश्यों और आदर्शों के अनुरूप जनजाति कल्याण में संलग्न है। यह संस्थाएं चंदा से प्राप्त धनराशि अथवा राज्य द्वारा प्राप्त अनुदान से जनजातियों के आर्थिक सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में कार्यरत हैं इन संस्थानों की कार्यों का प्रमाणित लेखा-जोखा नहीं है। इन संस्थानों का कार्य प्रणाली आदर्शोन्मुख हैं।अनुसूचित जातियों के विकास के लिए हमारे नीति निर्माताओं और योजनाकारों ने प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956) से ही सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। इस योजना में अनुसूचित जनजातियों के समग्र विकास के लिए प्रभावी एवं सघन अभियान चलाया गया। जनजातियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए समेकित एवं ठोस विकास कार्यक्रमों की आवश्यकता महसूस की गई। फलत: दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) जिसके योजनाकार पीसी महालनोबिस थे इस योजना में जनजातीय विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता दिया गया और इन्हें 4 वर्गों में विभाजित किया गया।

1.संचार

2.शिक्षा और संस्कृति

3.अर्थव्यवस्था का विकास

स्वास्थ्य आवास और स्वच्छ पेयजल आपूर्ति। आर्थिक असमानता को कम करने का विशेष ध्यान रखा गया। योजन निर्माण के समय जनजातीय समाज की सामाजिक आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं को केंद्र में रखा गया। साथ ही साथ यह विचारणीय रहा कि समस्त योजनाएं जनजातीय समाज की संस्कृति और परंपराओं के प्रति सम्मान रखते हुए क्रियान्वित की जाए (Ewans,1964)।

ग्रामीण विकास योजना में जनजातीय विकास के लिए 1954 में बहुउद्देशीय विकास परियोजना (multi purpose development project) का शुभारंभ किया गया। इस परियोजना का मूल उद्देश्य जनजातियों का आर्थिक विकास करना था। प्रारंभ में इस परियोजना पर 5 वर्ष के लिए ₹27000 खर्च करने का विधान था। 1956 में भारत सरकार ने वेरियर एल्विन की अध्यक्षता में जनजाति विकास का प्रारूप तैयार करने के लिए एक कमेटी गठित की। इस कमेटी ने जनजातीय विकास को बहुत सावधानी पूर्वक क्रियान्वित करने का सुझाव दिया। इस समिति के प्रतिवेदन में-आर्थिक विकास शिक्षा स्वास्थ्य आवागमन और संचार पर बल दिया गया और ब्लॉक बनाने के बाद की गई। गति ब्लॉक 25000 की जनसंख्या का निर्णय लिया गया। तिरालिस विशेष बहुउद्देशीय जनजाति प्रखंडों की स्थापना की गई जिन्हें बाद में जनजाति विकास खंड (tribal development block) कर दिया गया। इस प्रकार पहली पंचवर्षीय योजना में जनजातीय विकास के लिए जो कार्यक्रम तैयार किए गए थे उन्हें 1961 तक प्रभावी स्वरूप दे दिया गया।(Vidyarthi 1968)। जनजाति विकास कार्यक्रम तथा उन्हें अवसर की समानता प्रदान करने के लिए दूसरी योजना के कार्यक्रमों और नीतियों को तीसरी योजना(1961-66) में भी निरंतरता प्रदान किया गया (शाशा, 2008)।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) में भारतीय जनता के जीवन स्तर में त्वरित सुधार का संकल्प व्यक्त किया गया जिससे समानता व सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके। आर्थिक शक्ति के बढ़ते संकेंद्रण की प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए यह योजना गाडगिल फार्मूले पर अपनाई गई थी। स्थिरता के साथ आर्थिक विकास तथा आत्मनिर्भरता की प्राप्ति इसका प्रमुख लक्ष्य था। जनजातीय विकास की दृष्टि से इस योजना में कार्यक्रमों की एक श्रृंखला को अपनाया गया। जनजाति विकास एजेंसियां स्थापित की गई। पहली से चौथी योजना तक जनजाति विकास का क्षेत्रवार विवरण इस तालिका में देखा जा सकता है-

क्षेत्रवार जनजातीय विकास (रुपए करोड़ में

Plan	Education	Economic Uplifant	Health housing	Total
1st plan	5.10	8.46	3.81	17.37
2nd plan	8.05	22.70	9.76	40.51
3rd plan	13.23	30.72	7.10	51.05
4th plan	31.50	42.25	10.45	84.20

Source-Four Five year plan approch paper.

उपर्युक्त तालिका में जनजातीय विकास के सभी क्षेत्रों में वृद्धि के क्रम में आर्थिक अनुदान है।जनजातीय विकास की दृष्टि से पांचवी पंचवर्षीय योजना विशेष सफल मानी जाती है। इस योजना का समय 1974-78 तक रहा। इसमें विकास कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष लाभ अनुसूचित जनजातियों तक पहुंचाने के लिए जनजातीय उपयोजना (tribal sub plan) शुरू की गई। जनजातीय उपयोजना में जनजातियों के जीवन स्तर में सुधार आर्थिक विकास के साथ-साथ उनके कानूनी व प्रशासनिक हितों का भी ध्यान रखा गया। छठी पंचवर्षीय योजना में निर्धनता उन्मूलन के माध्यम से 50% जनजातीय परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर लाने का प्रयास किया गया (योजना आयोग. 85)। अनुसूचित क्षेत्रों में अवसंरचनात्मक सुविधाओं का विस्तार किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) के द्वारा जनजातीय आर्थिक विकास को ध्यान में रखकर दो राष्ट्रीय संस्थाओं का गठन किया गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में जन जातियों के शोषण को समाप्त, भूमि से बेदखली, न्यूनतम मजदूरी का भुगतान नहीं होने जैसी समस्याओं के समाधान का समुचित प्रयास किया गया। 9 वी पंचवर्षीय योजना में ऐसे परिवेश निर्माण को केंद्रित किया गया जिसमें जनजातीय समाज अपने संसाधनों और अधिकारों का सहज व स्वतंत्रता पूर्वक उपयोग कर सुखी जीवन व्यतीत कर सकें (योजना आयोग 1997-2002) दसवीं पंचवर्षीय योजना में जनजातीय समाज की समस्याओं को संभवत और न्याय व ढंग से सुलझाने पर ध्यान केंद्रित किया गया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) और 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) मैं जनजाति कल्याण संबंधी संरक्षण और सुरक्षा उपायों को सशक्त बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया। तत्पश्चात भारत सरकार की नीति आयोग द्वारा वार्षिक योजना में अनुसूचित जनजातियों के विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया है। नीति आयोग ने केंद्रीय मंत्रालयों और विभागों को प्रतिवर्ष अपने कुल योजना आवंटन का 4.30 से 70.5% तक अंश जनजाति विकास के लिए रखने हेतु अधिकृत किया है (त्रिपाठी 2022.)। 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर 73% थी जो अनुसूचित जनजातियों 59% है। कुल आबादी और जनजातियों के बीच साक्षरता दर का अंतर 14% है। भारत की संपूर्ण आबादी और जनजातियों की जनसंख्या के बीच साक्षरता दर का यह अंतर बहुत व्यापक है। नहीं संदेश सरकार की साक्षरता अभियानों का लाभ सभी वर्गों को मिल रहा है। किंतु इसका अपेक्षित लाभ सभी नागरिकों तक समान रुप में अभी भी नहीं पहुंच पा रहा है। भारत की साक्षरता दर को इस तालिका में देखा जा सकता है-

विभिन्न आयु वर्गों में साक्षरता दर जनगणना 2011						
उम्र समूह	कुल			जनजाति		
	व्यक्ति	पुरुष	महिला	व्यक्ति	पुरुष	महिला
सभी उम्र	73.0	80.9	64.6	59.0	68.5	49.4
10-14	91.1	92.2	90.0	86.4	88.3	84.4
15-19	88.8	91.2	86.2	80.2	85.7	74.6
20-24	83.2	88.8	77.3	69.2	79.6	59.0
किशोर (10-19)	90.9	81.8	88.2	83.6	87.1	79.9
युवा (15-24	86.1	90.0	81.8	75.0	82.9	67.1

स्रोत-महापंजीयक कार्यालय भारत (जनजातीय कार्य मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 2021-22) से उद्धृत।

जनजातीय छात्रों में साक्षरता की कमी कम नामांकन अनुपात प्राथमिक उच्च प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं से विद्यालय परित्याग जैसी समस्याओं के समाधान के लिए उन्हें विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है। निशुल्क शिक्षा तथा स्कूली पोशाक वितरित किए जा रहे हैं। पुस्तके भी मुफ्त प्रदान की जा रही हैं। जनजातीय बच्चों के लिए आवासीय विद्यालय खोले गए हैं। अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के शैक्षिक उन्नयन के लिए जिला प्रशासनिक शिक्षा कार्यक्रम कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय मध्यान्ह भोजन योजना नवोदय विद्यालय के अंतर्गत विशेष ध्यान दिया जा रहा है। जनजातीय समाज के समग्र विकास के लिए निम्नलिखित योजनाओं का सरकार द्वारा क्रियान्वयन किया जा रहा है इसके लिए राज्य सरकार से प्राप्त प्रस्तावों के आधार पर राज्य सरकार को फंड निर्गत किया जा रहा है।

1.प्री मैट्रिक एवं पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना।

2.संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के तहत अनुदान।

3.विशेष रुप से कमजोर जनजातीय समूहों के लिए अनुदान।

टी आर आई को सहायता।

वित्तीय चक्र 2021-26 के लिए योजनाओं को समन्वित कर दिया गया है। उन्हें नए कलेवर में प्रस्तुत किया जा रहा है तथा उनका विस्तार कर दिया गया है। जनजातियों के समग्र विकास के लिए कुछ महत्वपूर्ण योजनाएं इस प्रकार हैं-

प्रधान मंत्री आदि आदर्श ग्राम योजना:-इस योजना के अंतर्गत 36028 गांव को आदर्श ग्राम के रूप में विकसित करने के लिए लक्ष्य रखा गया है। 1354 करोड़ रुपए की धनराशि आवंटित की गई है। इसका उपयोग जनजातीय कल्याण कार्यक्रमों के लिए विभिन्न मंत्रालयों को उनकी संबंधित योजनाओं के लिए आवंटित किए गए 87524 करोड रुपए के एसटीसी घटक के अतिरिक्त गैप फिलिंग व्यवस्था के रूप में किया जाएगा।

प्रधानमंत्री जनजाति विकास मिशन:-यह भारत सरकार की दूरदर्शी योजना है। इस मिशन का लक्ष्य बंधन समूह के गठन के माध्यम से अगले 5 वर्षों में आजीविका संचालित आदिवासी विकास प्राप्त करना होगा। इन वन धन समूह को वनधन केंद्रों के रूप में संगठित किया गया है। इस योजना को लागू करने के लिए ट्राई फेड नोडल एजेंसी होगी। मिशन के तहत अगले 5 वर्षों के लिए 1612 करोड़ की धनराशि निर्धारित की गई (वार्षिक रिपोर्ट 2021-22) ।

वेंचर कैपिटल फंड-अनुसूचित जनजातियों के लिए उद्यम पूंजी कोष (वीसीएफ-एसटी) की नई योजना के लिए ₹50 करोड़ की धनराशि स्वीकृत की गई है। इसका उद्देश्य जनजातीय समुदाय में उधमिता को प्रोत्साहित करना है। इन तीनों योजनाओं के संबंध में यह जानकारी जनजातीय कार्य मंत्री श्री अर्जुन मुंडा ने 22 मार्च 2022 को लोकसभा में दी थी।

निष्कर्ष एवं सुझाव-सरकार की योजनाओं और कार्यक्रमों में जनजाति समाज के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए निरंतर प्रयास किया गया है लेकिन इस दिशा में अपेक्षाकृत प्रगति आज भी नहीं है। अन्य समुदायों की तुलना में जनजातीय समाज की प्रगति में अपेक्षाकृत व्यापक असमानता है। आदिवासी समुदाय का एक बड़ा भाग अजीविका के लिए लघु वनोपज और कम उत्पादकता कृषि पर निर्भर रहता है। आदिवासी समुदाय अपनी विशिष्ट संस्कृति के लिए जाना जाता है उसके प्राकृतिक ज्ञान की अकूत थाती है। उनके भेषज ज्ञान और कौशल को उधमिता के वातावरण और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति को केंद्र में रखकर उनकी भाषा में आधुनिक शिक्षा को उन तक पहुंचाया जाए। शैक्षिक अवसंरचना में इस बात का ध्यान हो परिवर्तनशील और प्रतिस्पर्धी परिवेश में किस तरह आधुनिक और आवश्यकता आधारित प्रशिक्षण और कौशल उन्नयन के माध्यम से जनजातीय युवाओं की दक्षता और ज्ञान को परिष्कृत और परिवर्धित किया जाए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार अनुभव आत्मक शिक्षण पद्धति को आदिवासी क्षेत्रों के स्कूलों क्रियान्वित किए जाने की जरूरत है। क्योंकि शिक्षा व्यक्ति की स्थिति परिवर्तित कर देती है। सरकारी योजनाएं सरकार की जनजाति विकास के प्रति कटिबद्धता व्यक्त कर रही है। भारत सरकार राज सरकार इन तथा क्षेत्रीय कार्यों को सामानता स्थापित कर योजनाओं को जरूरतमंदों तक पहुंचाएं जाने की आवश्यकता है। सरकारों द्वारा क्रमबद नियोजन और विकासात्मक ढांचा विकसित कर स्तरीय लाभ देने की आवश्यकता है जिसमें मूलभूत जानकारी सामाजिक आर्थिक परिस्थिति और जीवन स्तर के विभिन्न मानकों के आधार पर स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास रोजगार, खाद्य सुरक्षा, वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया जाए जिससे इनके समावेशी विकास का मार्ग तय हो तथा स्वास्थ्य भारत स्वच्छ भारत और सशक्त भारत का निर्माण हो सके।

****

संदर्भ

1. अथर्ववेद 19.41.
2. त्रिवेदी, सुशील. (2022) जनजातीय विरासत को उजागर करते वन क्षेत्र के मेले, कुरुक्षेत्र, प्रकाशन विभाग दिल्ली, पृष्ठ 45.
3. वैद्य, नरेश कुमार (2003) जनजातीय विकास: यथार्थ या मिथक, जयपुर, रावत पब्लिकेशन, पृष्ठ 03.
4. पांडे, जय नारायण. (2007). पृथ्वी पुत्र दिल्ली सस्ता साहित्य मंडल पृष्ठ 58.
5. बेहरा एन.के. और पाणिग्रही (2006), ट्राईबल एंड इंडियन कांस्टीट्यूशन, दिल्ली, रावत पब्लिकेशन पृष्ठ 365.
6. Ewans-prichard, (1966), applied anthropology in India principle problem and case studies Allahabad, kilab Mahal.
7. Xaxa, virginius (2008), state society and tribes issues in post-colony India New Delhi, person education.
8. योजना आयोग, भारत सरकार छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 नई दिल्ली, पृष्ठ 636 642
9. योजना आयोग, भारत सरकार, अप्रोच पेपर, नौवीं पंचवर्षीय योजना 1997-2002.
10. त्रिपाठी के के समग्र विकास कुरुक्षेत्र सितंबर 2022 वार्षिक रिपोर्ट 2021-22 जनजातीय कार्य मंत्रालय.
11. Https;// tribal.nic.in जनजातीय कार्य मंत्रालय

बालाघाट जिले के जनजातीय समाज की समस्याएँ

डॉ.मधुलिका श्रीवास्तव
प्राध्यापक, समाजशास्त्र
ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

नीतेश मेश्राम
शोधार्थी, समाजशास्त्र
ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

ऐतिहासिक मान्यता है कि बालाघाट जिले की उत्पत्ति बुढ़ा गांव से हुई है। बालाघाट जिले की उत्पत्ति के संबंध में अनेक किवदंतियॉ प्रचलित है। प्राचीनकाल में बुढ़ी नामक दम्पत्ति का आगमन नगर में हुआ। जिसकी संतान का नाम बाला था, दूसरी श्रीराम जी रामपायली आयें जिसका अर्थ बाला जी से है। तिसरी मान्यिता है कि जिला घाटों के बीच में बसा है। इसलिए फारसी बाला ऊँचाई पर बालाघाट,बालाघाट चौथी मान्यता है कि बारह घाट होने के कारण तथा अंग्रेजों ने विभिन्न घाटों से प्रतिष्ठ होने के कारण बुढ़ा जिले का नाम बदलकर बारह घाट रखने का प्रस्ताव किया जो कि संशोधन के उपरान्त वर्ष 1895 में बालाघाट स्वीकृत हुआ। जिले का वर्तमान नाम भले ही अधिक प्राचीन न हो परन्तु इस भू-भाग का गौरवमय प्राचीनतम इतिहास तथा प्रगतिहासिक काल से अंग्रेजों के शासनकाल से प्राप्त पुरातात्विक अवशेष अवश्य ही प्राचीनतम है। वर्ष 1854 में लगभग इस भू-भाग पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। वर्ष 1854 से 1867 तक इस जिले के परसवाड़ा, बैहर, क्षेत्र मण्डला जिले के अंतर्गत था। कंटगी, लालबर्रा क्षेत्र सिवनी जिले के अंतर्गत और लांजी, किरानापुर भण्डारा जिले के अधीन थे। वर्ष 1861 में जब अंग्रेजों से मध्यप्रांत सी.पी. नामक प्रांत का निर्माण किया तब उसमें बालाघाट नाम का कोई जिला नहीं था। वर्ष 1867 में मध्यप्रांत के मुख्य आयुक्त सर रिचर्ड टेम्पल ने एक नये बालाघाट जिले का निर्माण किया जिसके अंतर्गत परसवाड़ा, लालबर्रा लांजी आदि क्षेत्र शामिल है। केन्टन लॉक प्रथम बार बुढ़ा कलेक्टर बनाकर भेजा गया स्थायी तौर पर जिले की घोषणा वर्ष 1871 में किया गया। जो कि संशोधनोपरान्त 1895 में बालाघाट जिला स्वीकृत होकर आया और नवम्बर 1956 में स्वतंत्र जिला घोषित किया गया। बालाघाट जिला मध्यप्रदेश राज्य के दक्षिण में स्थित उड़ते पंक्षी के आकार में परिलक्षित होता हुआ स्थित है। सम्पूर्ण जिला पर्वत शिखाओं से घिरा है। जिले के उत्तर में जबलपुर, मण्डला, जिला स्थित है। तथा दक्षिण में महाराष्ट्र के राज्य के विदर्भ भण्डारा जिला की सीमा लगी है। जिले का कुल क्षेत्रफल 9229 वर्ग किमी. है। बालाघाट जिला मध्यप्रदेश राज्य के दक्षिण भाग में 21.19 से 22.24 उत्तर अक्षांश तथा 79.39 से 81.3 पूर्व देशांत के मध्य स्थित है।

बालाघाट जिले में सभी वर्गो के लोग निवास करते हैं, जिले के चार विकासखण्ड-बैहर, बिरसा, परसवाड़ा एवं लॉजी आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र है। यहॉ के आदिवासी लोगों में विशेष रूप से बैगा, गोंड़ जाति के लोग निवास करते हैं। इस जिले की बैगा जनजाति वर्ग के लोग विशेष रूप से जंगलों में निवास करते हैं। इसके अलावा जिले के शेष 6 विकासखण्डों में भी आदिवासी वर्गों के साथ सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लोग भी निवास करते हैं। इस जिले की आदिवासी बाहुल्य चार विकास खण्ड पूर्णतः नक्सल प्रभावित क्षेत्र है। जिले में नक्सली अपना प्रभाव दिखाने के लिए आये दिन अप्रिय घटनाए एवं गतिविधियॉ करते हैं। जनजाति समान नाम धारण करने वाले परिवारों का संकलन है। जो समान बोली बोलते है। एक ही भू-खण्ड पर अधिकार, करने का दावा करते है। तथा जो साधारण अन्तर्विवाही न हो जन जनजाति के परिपेक्ष में विभिन्न विद्वानों का मत निम्नबत है। सामान्यतः प्रत्येक जनजाति की अपनी भाषा होती है कुछ जनजातियाँ जिनकी जनसंख्या सीमित है तथ जो लिपि को विकसित नहीं कर सकी है। जनजातियें की अपनी अलग-अलग भाषा होने के कारण भारत को ''भाषाओं का अजायबघर'' कहा है। जनजातीय समाज की अपनी परंपराए और मान्यतायें होती है। जनजातीय समाज आर्थिक दृष्टि से विपन्न है। अतः उसे अपनी परंपराओं और मान्यताओं को अपने जीवन में कुछ इस तरह ढालकर रखना पड़ा कि वे बहुत अधिक प्रदर्शनकारी न बन जाये। इस तथ्य को अक्सर ही गलत समझ गया। पश्चिमी विद्वानों ने इस बात पर बार-बार जोर देकर लिखा है कि अधिकतर जनजातीय अपनी सामाजिक या व्यक्तिगत परंपराओं में पुरोहितों को बहुत अधिक महत्व नहीं देती। जनजातियों के पारिवारिक कृत्यों, नामकरण और विवाह में पुरोहितों का महत्व इसलिए नहीं है कि अब भी इस प्रकार के अवसरों पर पुरा समाज की एकत्रित हो जाता है। जहॉ समूचा समाज एकत्रित हो वहॉ 'रस्म' का गौण हो जाना मामूली बात है किन्तु इसके ठीक विपरीत जब मड़ई का आयोजन होता है तब पुरोहित ही इस शुभ कार्य को प्रारम्भ कराता है। इस तरह लोक कल्याण के कार्यो में जनजातीय पुरोहित का महत्व सुनिश्चित ही है। जनजातियों का समूह जब-जब आर्थिक समाजिक समानता एवं राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए संगठित हुआ, तो तभी राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी जी ने इनके विकास के लिए मार्ग खोलने का प्रयास किया आजादी के पश्चात संविधान में आरक्षण की व्यवस्था दे कर जनजातियों को सूचीवद्ध किया गया इन्हीं जनजातियों को ही अनुसूचित जनजाति का नाम दिया गया है।

भारतीय समाज में विभिन्न जनजातियों का पाया जाना हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। आधुनिक युग की खोज उपभोगवाद पर आधारित है। किन्तु आदिम इतिहास के संदर्भ में आदिम जनजातीय का अध्ययन करना भी आधुनिक समाज की आवश्यकता है। ये आदिम आदिवासी जनजाति जंगलों में निवास करती है, जंगल ही इनका जीवन है तथा आधुनिकता की चकाचौंध से कौसों दूर है। कभी कभी ऐसा लगता है कि ये जनजाति अपने जंगली वातावरण में ही मदमस्त जीवन यापन करने के लिए बनी है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मानवीय विकास का चक्र निरन्तर चलता रहता है। समाज का कर्तव्य है कि समाज का प्रत्येक प्राणी सुखी-सम्पन्न जीवन-यापन करें। इस हेतु सरकार ने विभिन्न प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वयन किया है। वर्तमान परिवेश में आदिवासी जनजाति समुदाय का विकास सरकार की प्रमुखता है। भारतीय समाज में किसानों, दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों और जनजातियों का एक ऐसा विशाल समूह हमेशा से विद्वमान रहा है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीति और सरकारी योजनाओं से हमेशा से ही वंचित और विकास से विमुख रहा है। सरकार ने पहले तो इन वंचित समूहों के विकास हेतु कोई खास योजना ही नहीं बनाई और यदि वर्तमान में इन समूहों को मुख्य धारा से जोड़ने की योजना बनाई भी गई तो सरकारी योजनाओं का समुचित लाभ ये समूह नहीं उठा पा रहे हैं।

अर्थ व्यवस्था एवं आर्थिक जीवन दोनों एक दसरे के पूरक है। अर्थ व्यवस्था हमारे आर्थिक जीवन को प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में मनुष्य अपने भौतिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं को जिस ढंग से पूरा करता है, उस सम्पूर्ण प्रक्रिया को अर्थ व्यवस्था कहा जाता है। अर्थ व्यवस्था की मूलभूत प्रक्रियाओं एवं अवधारणाओं का विस्तृत अध्ययन तो अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। किन्तु सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाली आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन समाजशास्त्र मानवशास्त्र दोनों के अन्तर्गत किया जाता है। किसी भी समुदाय का अध्ययन करते समय चाहे वह जनजाति हो या विकसित आधुनिक समाज आर्थिक जीवन हमारी संस्कृति का एक मौलिक

पक्ष है। मानवीय सभ्यता एवं विकास के इतिहास को बिना आर्थिक जीवन के अध्ययन सही ढंग से समझा नहीं जा सकता। भारतीय समाज में जनजाति से आशय वन्य जाति, आदिवासी, वनवासी, आदिमजाति, गिरिजन आदि से है। ये जनजाति ऐसे लोगों का समुदाय है जो आज भी जंगलों में निवास करते हैं। प्राकृतिक साधनों से ही अपना भोजन ग्रहण करते हैं। आधुनिक सभ्य समाज से दूर रहते हैं तथा शिक्षा, कृषि, उद्योग-धन्धे आदि से अपरिचित है। भारत की जनगणना 1991 के अनुसार- ''ये अपने सीमित साधनों से केवल जीवित रहना ही सीख सके हैं और आज भी विज्ञान की इस चकाचौंध व सभ्यता की होड़ से अपरिचित ही है। ऐसे ही अपरिचित लोगों का उल्लेख भारतीय संविधान में अनुसूचित आदिमजाति या जनजाति (ट्रायबल) के अन्तर्गत किया गया है।''

भारतीय समाज में जनजातीय विकास के लिए गांधीवादी चिंतन को आधार मानकर कार्यक्रम को योजनाबद्ध किया गया है। मध्यप्रदेश में जनजातियों के संदर्भ में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जनजातियों के विकास के लिए मध्यप्रदेश सरकार ने जिन नीतियों एवं कार्यक्रमों को रखा है। वे जनजातीय कल्याण के साथ-साथ आदिम जाति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। मध्यप्रदेश शासन द्वारा निर्मित योजनाओं संकल्पना निम्नानुसार है। जनजातीय बाहुल्य राज्य शासन द्वारा जनजातियों के विकास के लिए अनेक योजनाएं चलाई जा रही है। किन्तु वास्तविकता यह है कि आज भी जनजातीय वर्ग के लोग समाज के असरदार लोगों के कारण प्रभावित हो रहे हैं। उन्हें जनजातीय भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। प्रशासन अमला भी इन्हें चाकर भी सहायता नहीं पहुचा रहा है। जिससे असरदारों के हौसले बढ़ रहे हैं। जिसके कारण जनजातीय लोग प्रताड़ित हो रहे हैं।

****

संदर्भ सूची:-

1. सेन्सेस ऑफ इण्डिया - 1991 (मध्यप्रदेश पार्ट) स्पेशल टेबिल्स शेड्यूल ट्राइबर भोपाल (म.प्र.)
2. डॉ. श्रीनाथ, जनजातीय समाज, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2015
3. डॉ0 श्री नाथ शर्मा - जनजातीय समाजशास्त्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
4. आदिवासी समाज में आर्थिक परिवर्तन: राकेश कुमार तिवारी
5.गोयल अंजू, मध्यप्रदेश के सरगुजा जिले के आदिवासी और जड़ी बूटियॉ, बुलेटिन आफ ट्राइबल एण्ड डेबलमेंट, इंस्ट्यूट भोपाल मध्यप्रदेश, 1991

शिक्षा पर डॉ आंबेडकर के विचार

#1.यह जानते हुए की शिक्षा ही जीवन में प्रगति का मार्ग है, छात्रों को कठिन अध्ययन करना चाहिए और समाज के वफादार नेता बनना चाहिए। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर

#2 हमें शिक्षा के प्रसार को उतना ही महत्व देना चाहिए जितना कि हम राजनीतिक आंदोलन को महत्व देते हैं। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (मनमाड, 9 दिसंबर, 1945)

#3.तकनीकी और वैज्ञानिक प्रशिक्षण के बिना देश की कोई भी विकास योजना पूरी नहीं होगी। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (कोलकाता, 24 अगस्त 1944)

भीमराव अम्बेडकर के विचार

#4. शिक्षित बनो, आंदोलन करों, संगठित रहो, आत्मविश्वासी बनो, कभी भी हार मत मानो, यही हमारे जीवन के पांच सिद्धांत हैं। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (नागपुर, 29 जुलाई, 1942)

#5.किसी भी समाज का उत्थान उस समाज में शिक्षा की प्रगति पर निर्भर करता है। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (मनमाड, 16 जनवरी 1949)

#6 ज्ञान मानव जीवन का आधार है। छात्रों की बौद्धिक क्षमता को बढ़ाना और बनाए रखना; साथ ही उनकी बुद्धि को उत्तेजित करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (कोल्हापूर, 24 दिसंबर 1952)

#7 आप शिक्षित हो गए इसका मतलब यह नहीं है कि सब कुछ हुआ। शिक्षा के महत्व में कोई संदेह नहीं है, लेकिन शिक्षा के साथ-साथ शील (नैतिकता) भी सुधारी जानी चाहिए… नैतिकता के बिना शिक्षा का मूल्य शून्य है। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (मुंबई, 3 जून, 1953)

#8.लड़कों और लड़कियों को शिक्षित करें, उन्हें पारंपरिक व्यावसायिक कामों में शामिल न करें। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (मुंबई, 13 जुलाई 1941

#9 मेरा जीवन तीन गुरुओं और तीन उपास्य दैवतों से बना है। मेरे पहले और श्रेष्ठ गुरु बुद्ध हैं। मेरे दूसरे गुरु कबीर हैं और तीसरे गुरु ज्योतिबा फुले हैं… मेरे तीन उपास्य दैवत भी हैं। मेरा पहला दैवत 'विद्या', दूसरा दैवत 'स्वाभिमान' और तीसरा दैवत 'शील' (नैतिकता) है। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (मुंबई, 28 अक्टूबर 1954)

#10 प्राथमिक शिक्षा का सार्वत्रिक प्रचार सर्वांगीण राष्ट्रीय प्रगति के भवन का आधार है।…. इसलिए प्राथमिक शिक्षा के मामले में अनिवार्य कानून बनाया जाना चाहिए।- डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (महाबळेश्वर, 6 मई, 1929)

#11 इस दुनिया में स्वाभिमान से जीना सीखो। इस दुनिया में कुछ करके ही दिखाना है यह महत्वाकांक्षा हमेशा आपके अंदर होनी चाहिए। (याद रखना) जो लड़ने हैं वही आगे आते हैं। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (मुंबई, फरवरी 1933)

#12 स्वच्छ रहना सीखें और सभी दुर्गुणों से मुक्त रहें। अपने बच्चों को शिक्षित करें। उनके मन में धीरे-धीरे महत्वाकांक्षा जगाएं। उन्हें विश्वास दिलाएं कि वे महान व्यक्ति बनने जा रहे हैं। उनके अंदर की हीनता को नष्ट करें। उनकी शादी करने में जल्दबाजी न करें। – डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (नागपूर, 20 जुलाई, 1942)

****

त्रैमासिक साहित्यिक शोध पत्रिका- 'नागफनी' वर्ष-13 अंक 44,जनवरी-मार्च-2023

अनुवाद में प्रोक्ति, परिवृत्ति की अवधारणा

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1473

डॉ. श्रीराम हनुमंत वैद्य
श्री शिवाजी महाविद्यालय बार्शी,
तहसील- बार्शी, जिला-सोलापूर
महाराष्ट्र, पिन- 413411 मो.-9657243507

प्रस्तावना:-प्रत्येक भाषा का अपना एक विशिष्ट परिवेश होता है, जिसमें वह भाषा पलती है, फुलती है। कोई भी दो भाषाएं ध्वनि, शब्द, अर्थ, उच्चारण, लय, पदबन्ध, वाक्य विन्यास, मुहावरे, कहावतें, लोकोक्ति, अलंकार, छंद आदि भाषा के संरचनात्मक अवयव के स्तर पर एक दूसरे से भिन्न होती हैं। फिर भी हर भाषा का अपना एक सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक परिपेक्ष होता है। उसी परिवेश गत विशेषताओं के आधार पर उनका अपना एक अभिव्यक्ति कौशल्य भी होता है। उसी के भाषा संरचना और भाषा व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग अभिव्यक्ति पक्ष को माना जाता है। "अभिव्यक्ति पक्ष का तात्पर्य उस माध्यम से हैं जो कथ्य को व्यक्त रूप देने का साधन बनाता है"१ डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अभिव्यक्ति को विशेष स्थान दिया है। उनके अनुसार" एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव सम्मान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है"२ अर्थात अनुवाद का मूल लक्ष्य है, स्रोत भाषा की सामग्री को लक्ष्य भाषा में यथावत अपने मूल रूप में लाना। यह कहा जा सकता है कि भाषा अपनी मूल प्रकृति में शाब्दिक इकाइयों के बीच संबंधों की व्यवस्था है और व्याकरण, विभिन्न स्तर और संबंधों की व्यवस्था का अध्ययन करता है।

बीज शब्द:- अनुवाद, समतुल्यता, विचलन, परिवृत्ति, प्रोक्ति, स्रोत भाषा, लक्ष्य भाषा, भाषिक संरचना, अभिव्यक्ति आदि।

अनुवाद कार्य आसान नहीं है क्योंकि हर स्रोत भाषा अपनी विशिष्ट परिवेश में पनपती हैं। उनकी ध्वनि, शब्द या पद, पदबंध, वाक्य, प्रोक्ति, परिवृत्ति, प्रयुक्ति आदि महत्वपूर्ण इकाइयां है। जो एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के आधार बने हुए हैं। यही इकाइयां भाषा को प्रभावशाली एवं संप्रेषनीय बनाती हैं। अनुवाद में इन गहन अभिव्यक्तियों के लिए अनुवादक का लक्ष्य भाषा पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। मूल पाठ की मूल अभिव्यक्तियों को लक्ष्य भाषा में अनूदित करने के लिए प्रोक्ति, परिवृत्ति का अध्ययन करना आवश्यक है।

प्रोक्ति:- भाषा का प्रयोग किसी विचार या मंतव्य को अभिव्यक्ति देने के लिए होता है। विचार या मंतव्य को अभिव्यक्ति देने के लिए वाक्य की आवश्यकता होती है,जिसे भाषा की सार्थक और महत्तम इकाई मानते है लेकिन कई बार वाक्य से पूर्ण अर्थ का संप्रेषण नहीं होता है। इसलिए आधुनिक भाषा वैज्ञानिक मानते हैं कि विचारों के आदान-प्रदान के लिए केवल वाक्य परिपूर्ण नहीं है बल्कि पूर्ण संप्रेषण के लिए वाक्य की सीमा को पार करना पड़ता है। वाक्य के इस ऊपरी संरचना को प्रोक्ति कहते हैं। विचार या मंतव्य को अभिव्यक्ति देने के लिए एकाधिक वाक्यों का प्रयोग करना पड़ता है, उस एकाधिक वाक्य समुच्चय को प्रोक्ति कहते हैं। "वक्ता का संदेश और श्रोता तक उस संदेश को संप्रेषित करने वाला भाषिक व्यापार वाक्योंपरी स्तर का होता है। वाक्योंपरी स्तर की इस संरचना में वाक्यों का अनुक्रम होता है। इसमें अनेक वाक्य एक साथ मिलकर अभिव्यंजना की दृष्टि से एक इकाई का रूप धारण करते हैं। वाक्य के इस अंतर्संबंध से पाठ या प्रोक्ति का निर्माण होता है। अतः व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से यदि वाक्य भाषा की महत्तम इकाई है, तो संप्रेषणीयत्ता की दृष्टि से प्रोक्ति भाषा की महत्तम इकाई है।"३ अर्थात प्रोक्ति, वाक्य या वाक्यों के ऊपर की व्यवस्था है। प्रोक्ति में अंतर वाक्य संयोजन होता है, जो अर्थ को स्पष्ट करने में सहायक है। प्रोक्ति केवल वाक्यों का समुच्चय नहीं है,बल्कि उसमें एक निर्दिष्ट संदेश भी नहित रहता है। वह वाक्य एक दूसरे से जुड़े होते हैं। प्रत्येक वाक्य में वक्ता का कोई ना कोई प्रयोजन होता है। उनके आंतरिक संरचना में संप्रेषण तत्व की प्रधानता होती है। विषय के अनुरूप ही वाक्यों का क्रम होता है। इसी अंतरिक्ष संगति के कारण प्रोक्ति अपने आप में पूर्ण होती है। अनेक विद्वानों ने प्रोक्ति की परिभाषाएं निम्नानुसार की है-कृष्ण कुमार गोस्वामी-"प्रोक्ति यह संकल्पना व्याकरणिक और अर्थपरक इकाई के रूप में विकसित हुई है। इसमें अंतरवाक्यीय संयोजन होता है, जो अर्थ को स्पष्ट करने में सहायक होता है व्याकरणिक और आर्थिक दृष्टि से इसकी वाक्योंपरी संरचना को प्रोक्ति कहते हैं।"४

कुसुमकुमार अग्रवाल-"तर्कपूर्ण, क्रमयुक्त और आपस में आंतरिक रुप से सबद्ध ऐसी व्यवस्थित इकाई को प्रोक्ति कहते हैं, जो संदर्भ विशेष में अर्थ-द्योतन की दृष्टि से पूर्ण हो।"५कुसुकुमार प्रोक्ति को तात्पर्ययुक्त संसक्त वाक्यों की एक कड़ी मानते हैं, जो वाक्यों की कड़ी से बीच संबंधों की व्यवस्था होनी चाहिए। उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि प्रोक्ति वाक्य या वाक्यों के ऊपर की व्यवस्था है। जिसमें वह वाक्य एक दूसरे से जुड़े होते हैं। वह वाक्य केवल वाक्यों की श्रृंखला नहीं होते हैं। तो वह एक तात्पर्ययुक्त संदेश का वाहन करते हैं और मूल कथ्य को एकसंघ बनाकर पूर्ण अर्थरूप ग्रहण करते है।

अनुवाद में प्रोक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुवाद करते समय पाठ का अर्थ ग्रहण शब्द तथा वाक्य की सीमा से आगे बढ़कर समग्र वाक्यों के स्तर पर होने लगता है। वहां अनेक वाक्यों की योजना संस्क्तिपूर्ण, संदर्भपरक एवं तर्कपूर्ण होता है। वास्तव में कई बार शब्दों तथा वाक्यों से अनुवाद नहीं होता बल्कि समूचे पाठ या प्रोक्ति का अनुवाद होता है। अनुवादक स्रोत भाषा के किसी पाठ के समूचे खंड का विश्लेषण करता है। उसका अर्थ ग्रहण करके फिर लक्ष्य भाषा में प्रोक्ति के रूप में अनूदित करता है। मराठी के श्रेष्ठ नाटककार वसंत कानेटकर का 'प्रेमा तुझा रंग कसा?' नाटक का हिंदी अनुवाद प्रा. वसंत देव ने 'ढाई आखर प्रेम का' शीर्षक से किया है। वसंत देव ने मूल नाटक के विषय, आशय और प्रस्तुति की ताजगी अनूदित नाटक में कायम रखी है। इस नाटक में मध्यमवर्गीय जीवन में आने वाले प्रेम के विविध रंगों का हंसता खेलता चित्रण किया है। उसे अनुवादक ने मूल के अनुरूप सुरक्षित रखने का यथासंभव सफल प्रयास किया गया है। जैसे-

मूल मराठी

"बब्बड: (अस्वस्थतेने खिडकीतून मागे वळत) बाबा-
बल्लाळ: (मान वर करीत) ऊं? (ती गप्प पाहून) काय ग पोरी?
बब्बड: माझ्याकडे कोणी आल होत का?
बल्लाळ: तुझ्याकडे? म्हणजे तुला भेटायला?
प्रियवदा: कोण यायचं होत?
बब्बड: (चाचरत) नाही….. नाही….. तसं यायचं नव्हतं कोणी…!
प्रियवंदा: म्हणजे?
बब्बड: नाही, तसं विशेष कोणी नाही गं-!
प्रियवंदा: कोणी मैत्रीण का यायची होती तुझी?
बब्बड: मैत्रीण…… नाही……. हो मैत्रीणच!! (जिन्याकडे जात) आई, मी बाहेर जाणार आहे आत्ता!!
प्रियवदा: अगं पण आत्ताच कॉलेजातून आलीस ना?
बब्बड:हो, पण-जरा इकडं….. (घुटमळत) म्हणजे फिरायला जाईन म्हणते. अभ्यासानं अगदी डोकं उठले माझं!
प्रियवंदा: अगं माझ्याबरोबर चल! येतेस, थोडसं 'मार्केटिंग' करून येऊ?

बब्बड- नको नको!! फार दमलेय ग मी. खोलीत पडते थोडा वेळ. (जिन्याच्या दोन पायऱ्या चढून, मागे वळते आणि विशेष चौकसपणे) पण तू जाऊन येते आहेस ना?प्रियंवदा: ही काय, निघालेच की मी. अगं चल येत असशील तर. तेवढंच पाय मोकळे केल्यासारखे वाटेल तुला. काही फार लांब जायचं नाही कोपऱ्यावर-
बब्बड: नको नको बाई! अभ्यास पुष्कळ करायचा राहिलाय. मी वाचत बसते थोडसं!! " [६]

हिंदी अनुवाद:-

बबली: (किंचित अन्यमस्कन होकर खिड़की की तरफ जाकर) पापाजी-
वर्मा: (गर्दन उठाकर) अयँ? (उसे चुप देखकर) क्या है बबली?
"बबली: कोई आया था यहाँ ?
वर्मा: यहाँ ? यानी तुमसे मिलने ?
प्रियम्वदा: कौन आनेवाला था?बबली: (सिटपिटाकर) क - कोई नहीं- कोई नहीं आनेवाला!
प्रियम्वदा: क्या मतलब?
बबली: सच मम्मी, कोई खास नहीं- सच-
प्रियम्वदाः कोई सहेली आनेवाली थी?
बबली: सहेली?- नहीं - हाँ, सहेली ही तो (जीने की ओर मुड़कर) मम्मी, हम बाहर जा रहे हैं।
प्रियम्वदाः वाह! अभी-अभी तो कॉलेज से चली आ रही हो-
बबली: हॉ- मगर- यहाँ- (हकलाकर) जरा घुम आऊँ। पढ़ते पढ़ते दिमाग चकरा गया है।
प्रियम्वदाः तो चलो न हमारे साथ। शॉपिंग भी हो जाएगा। चलती हो?
बबली: नही मम्मी। बहुत थक गई हूँ। लेटूंगी कमरे में (जीने पर दो सीढ़ियों चढ़कर मुड़ती है और खास ढंग से पूछताछ कर) तुम तो जा रही हो ना?
प्रियम्वदाः जा ही तो रहे हैं। अरे भाई, चलती हो तो चलो। घूम आओगी तो जी बहल जाएगा। और दूर थोड़े ही जाना है। यही जरा नुक्कड़ तक-
बबली: नहीं मम्मी, नहीं। बहुत सा पढ़ना बाकी है। मैं कमरे में पढूंगी" [७]

उपर्युक्त उदाहरण में बब्बड उर्फ़ बबली के मानसिक द्वंद्व को चित्रित किया है। पात्रों के कथन तात्पर्य युक्त है, जिसमें आवश्यकतानुरूप सामान्य निवेदन,जिज्ञासा,व्यग्रता,आश्चर्य,क्रियाशीलता,विस्मयआदि भावाभिव्यक्ति स्तर पर और कथन के विषय के रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। लक्ष्य भाषा पाठ में प्रोक्ति के स्वरूप को सुरक्षित रखा है। मूल के समस्त वाक्य अनुवाद में है। वाक्यों में अनेकार्थता की स्थिति नहीं है। संलाप में पात्र सक्रियता से भाग लेकर संदेश को अभिव्यक्त करते हैं। संलाप में निश्चित संदर्भ के कारण वाक्य का एक ही अर्थ व्यंजित होता है। यह वाक्य वक्ता और श्रोता के कथनों के अंग है। इसमें कथन और संवाद से जुड़ी संसक्ति आयी हैं। मूल पाठ में वाक्य संसक्त पूर्ण है। इन वाक्यों की संसक्ति में तर्कपूर्ण मानसिक स्थिती का विधान है। यहाँ नायिका का कथन तात्पर्ययुक्त है। भक्ति में संवाद और संपादिता की स्थिती हमेशा बनी रही है। अनुवाद करते समय अनुवादक ने प्रोक्ति के सभी रूपों को सुरक्षित रखा है.

परिवृत्ति का स्वरूप:-परिवृत्ति का सामान्य अर्थ है दो भाषाओं के विभिन्नस्तरीय संवादिता से विचलन की स्थिति। हर भाषा के अपने नियम होते हैं। ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, तथा अभिव्यक्ति को विभिन्न स्तरों पर अपनी व्यवस्था होती है। भाषा का व्याकरण इन्हीं नियमों और व्यवस्थाओं से बनता है। सामान्य भाषा इन नियमों से बंधी होती है. किंतु नाटक में सामान्य भाषा के साथ-साथ विशिष्ट अनुभव को अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया जाता है। विशिष्ट भाषा प्रयोग के कारण कई बार विचलन की स्थितियां उत्पन्न होती है। सामान्यतः विचलन या परिवृत्तियों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। "विचलन की दो स्थितियाँ होती है- अनिवार्य तथा ऐच्छिक। अनिवार्य विचलन भाषा की शब्दार्थगत एवं व्याकरणिक संरचना का अंतरंग है, उदाहरण के लिए मराठी नपुंसक लिंग संज्ञा हिंदी में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग संज्ञा के रूप में ही अनूदित होगी। कुछ इसी प्रकार को बात अंग्रेजी वाक्य I have fever के हिंदी अनुवाद 'मुझे बुखार है' के लिए कहा जा सकता है, क्योंकि मैं बुखार रखता हूं हिंदी में संप्रेषणात्मक तथ्य के रूप में स्वीकृत नहीं। ऐच्छिक विचलन में विकल्प की व्यवस्था होती है। अंग्रेजी The rule ststes that.... को हिंदी में दो रूपों में कहा जा सकता है-' इस नियम में यह व्यवस्था है कि /कहा गया है कि. या 'यह नियम कहता है कि.. इन दोनों में पहला वाक्य हिंदी में जितना स्वभाविक प्रतीत होता है, उतना दूसरा नहीं। अनुवाद के संदर्भ में ऐच्छिक विचलन को विशेष प्रासंगिकता इस दृष्टि से है कि इससे अनुवाद को स्वभाविक बनाने में सहायता मिलती है। अनिवार्य विचलन, तुलनात्मक व्यतिरेकी भाषा विश्लेषण का एक सामान्य तथ्य है जिसमें अनुवाद का प्रयोग एक उपकरण के रूप में किसा जाता है।" [८]
स्पष्ट है कि दो भाषाओं के बीच विभिन्न स्तरीय संवादिता विचलन स्वाभाविक रूप से होता है। उस स्थिति को परिवृत्ति कहते है। अनुवाद कार्य में या परिवृत्ति अनिवार्यता आती है।

पाश्चात्य विद्वान पापोविच ने अनुवाद परिवृत्ति के निम्नलिखित प्रकारों की चर्चा की है-

"**संरचनात्मक परिवृत्ति:** दो भाषाओं की संरचना, शैली आदि में मौलिक भिन्नता होने के कारण होने वाली अनिवार्य परिवृत्ति। विधा परिवृत्तिः साहित्यिक विधाओं में होने वाली अनिवार्य प्रवृत्ति; जैसे अंग्रेजी सानेट या ओड का हिंदी में सामान्य प्रगीत के रूप में अनुवाद
व्यक्तिनिष्ठ परिवृत्ति: अनुवाद की अपनी शैली के विशिष्ट से निष्पन्न तथा फलस्वरूप मूल पाठ की शैली से विचलन, परिवृत्ति। निषेधात्मक परिवृत्ति: मूल भाषा की संरचना से अपरिचय या न्यून परिचय के कारण मूल कथ्य में परिवर्तन। सूचनात्मक परिवृत्ति: मूल के सूचना पर बिंदुओं को किन्ही कारणों से अनुवाद में परिवर्तित कर देना" [९]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि दो भाषाओं के बीच संरचनागत, विधागत, व्यक्तिनिष्ठ, निषेधात्मक, सूचनापरक आदि परिवृत्ति के कारण अनुवाद कार्य में शत प्रति शत कथ्य का अंतरण नहीं हो सकता है। विचलन की यह स्थिति अनुवाद में आती ही है। अनुवाद परिवृत्ति को विद्वानों ने अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित किया है। संरचनात्मक परिवृत्ति,व्याक्तिनिष्ठ परिवृत्ति निषेधात्मक परिवृत्ति,सूचनात्मक परिवृत्ति आदि।

संरचनात्मक परिवृत्ति:-दो भाषाओं के बीच संरचना के स्तर पर विचलन संरचनात्मक परिवृत्ति हैं। हर भाषा की अपनी एक भाषा व्यवस्था और व्याकरणिक संरचना होती हैं। मराठी और हिंदी भाषाओं में काफी समानताएं मिलती हैं, किंतु कई असमानताएं भी विद्यमान है। हिंदी में दो लिंग हैं जबकि आर्य परिवार की और द्रविड़ परिवार की भाषाओं में तीन लिंगों की व्यवस्था है। पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। हिंदी में दो लिंग होते हैं। अर्थात नपुंसकलिंग नहीं है। कामता प्रसाद गुरु के अनुसार "हिंदी में लिंग का निर्णय करना कठिन है। इसके लिए व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते, क्योंकि इसके लिए भाषा के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं हैतथापि हिंदी में लिंग निर्णय दो प्रकार से किया जाता है-१. शब्द के अर्थ से और २. उसके रूप से। बहुधा प्राणीवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार और अप्राणीवाचक शब्दों का लिंग रूप के अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दों का लिंग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है; और इसके लिए व्याकरण से पूर्ण सहायता नहीं मिल सकती।"१० मराठी भाषा में तीन लिंग की व्यवस्था है जैसे- पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। मराठी भाषा में भी लिंग का निर्णय करना कठिन कार्य है। लिंग निर्धारण के लिए जो नियम बनाए हैं वह परिपूर्ण नहीं है। मराठी भाषा में एक ही शब्द दो या तीन लिंगों में प्रयुक्त होता है। मराठी की नपुंसक लिंग संज्ञाओं में से कुछ संज्ञाओं का हिंदी में पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग में समावेश होता है।

अनुवाद करते समय स्त्रोत भाषा की सामग्री का लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय अनुवादक स्रोत भाषा की व्याकरणिक संरचना और व्यवस्था से परिचित होना आवश्यक है। यदि अनुवाद इस बात का ध्यान न रखकर जों-का -त्यों अनुवाद करेगा तो अनुवाद हास्यास्पद बन जाता है। हर भाषाओं में व्याकरणिक कोटियां अर्थात लिंग वचन पुरुष कारक विशेषण सर्वनाम अव्यय तथा क्रिया के प्रयोग में वैषम्य होता ही है इसलिए अनुवादक को इसका ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक होता है। मराठी नाटक 'हिमालयाची सावली' का हिंदी अनुवाद 'हिमालय की छाया' में संरचनात्मक परिवृत्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं-

मूल मराठी: कृष्णा- (आश्चर्याने) तार आली? अगं बाई खरं काय झालं?" [११]

हिंदी अनुवाद: कृष्णा: (आश्चर्य से) तार आ गया? अरे सच? क्या हुआ? [१२]

उपर्युक्त उदाहरण में मूल मराठी के तार आली? का हिंदी अनुवाद तार आ गया? किया है। मराठी भाषा में एक ही शब्द दो या तीन लिंगों में प्रयुक्त होता है। यही स्थिति हिंदी में भी देखने मिलती हैं। 'तार' शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के अंतर्गत प्रयुक्त हुआ है। इस वाक्य में लिंग के अनुरूप क्रिया में परिवर्तन किया है। अतः यह परिवृत्ति अनिवार्यता आती हैं। मराठी नाटक 'अखेरचा सवाल' का हिंदी अनुवाद 'आखरी सवाल' में भी संरचनात्मक परिवृत्ति के कुछ उदाहरण मिलते हैं-

मूल मराठी:नंदा: माझी निवड तुला पसंत नाही का, मम्मी?[१३]

हिंदी अनुवाद:नंदू: क्या मेरा चुनाव तुम्हें पसंद नहीं है, मम्मी?[१४]

उक्त उदाहरण में मराठी के 'माझी निवड' का हिंदी अनुवाद 'मेरा चुनाव' के रूप में किया है। मराठी में निवड शब्द स्त्रीलिंग है और चुनाव शब्द पुल्लिंग है। अनुवादक ने यहां शब्द अनुवाद करने का प्रयास किया है जो गलत लगता है। उक्त उदाहरण का अनुवाद 'क्या मेरी पसंद तुम्हें अच्छी नहीं लगी, मम्मी?' अपेक्षित था।

व्यक्तिनिष्ठा परिवृत्ति:स्रोत भाषा सामग्री का लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय अनुवादक की निजी शैली का प्रभाव दिखाई देता है। "अनुवाद में अनुवादक की अपनी शैलीगत विशिष्टता के कारण मूल शैली में विचलन आ गया हो तो उसे व्यक्तिनिष्ठ परिवृत्ति कहते हैं"१५ इस परिवृत्ति में अनुवादक मूल वाक्य की वृत्ति में परिवर्तन करता है। मूल एक वाक्य के लिए अनेक वाक्य की योजना, अनेक वाक्य के लिए एक वाक्य की योजना, वाक्य क्रम में परिवर्तन आदि अनेक शैली के तत्व अनुवादक के व्यक्तिगत शैली से प्रभावित होते हैं। मराठी नाटक 'हिमालयाची सावली' का हिंदी अनुवाद 'हिमालय की छाया' में व्यक्तिनिष्ठ परिवृत्ति के उदाहरण मिलते हैं।

मूल मराठी:पुरुषोत्तम:(चुकचुकत)कसा रे राहतोस तू त्या आफ्रिकेच्या जंगलात.[१६]

हिंदी अनुवाद:पुरुषोत्तम: चचच चच! तू कैसा रहता है रे, अफ्रीका के जंगलों में? [१७]नाटक में एक साथ दो प्रकार की भाषाओं का प्रयोग मिलता है। एक हरकत की भाषा और दूसरी शब्दों की भाषा। जो बात हरकतों से व्यक्त होती है, वह शब्दों से नहीं कही जा सकती और जो शब्दों से कही जाती है, वह हरकतों से व्यक्त नहीं होती है। इसलिए अभिनय के अंतर्गत इन तत्वों को अधिक महत्व दिया जाता है। पात्रों के हरकतों का संकेत नाटक का कोष्टक में देते हैं उसी के अनुरूप पात्र मंच पर प्रस्तुत होते हैं। अनूदित नाटक में भी नाटककार के इन संकेतों का अनुवाद करना अनिवार्य है। अनुवादक अगर उसमें परिवर्तन करता है या छोड़ देता है तो नाटक के प्रदर्शन में समस्या आती है। उपयुक्त उदाहरण में पात्र के हरकतों का संकेत कोष्टक में दिया है। उसे अनुवादक ने कोष्टक के बाहर रखा है। इसलिए अनुवाद बोझिल या कृत्रिम बना है। यह स्थिति अनुवादक के व्यक्तिगत प्रभाव के कारण आई है। अतः इसे व्यक्तिनिष्ठ परिवृत्ति के अंतर्गत रखा जाता है।

निषेधात्मक/अर्थगत परिवृत्ति:-स्रोत भाषा की पाठ्य सामग्री का लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय दो भाषाओं की संरचना की विशेषताओं का परिचय अपेक्षित है। कई बार अनुवादक की असावधानी से अनूदित पाठ के अर्थ में क्षति उत्पन्न होती है तो मूल पाठ से अनूदित पाठ में अर्थगत परिवृत्ति आती है। इस परिवृत्ति का अर्थ है- मूल कृति के बारीकियों से अपरिचित या अज्ञानवश लक्ष्य भाषा में मूल अर्थ से विचलन। मराठी नाटक 'हिमालयाची सावली' का हिंदी अनुवाद 'हिमालय की छाया' में अर्थगत/निषेधात्मक परिवृत्ति परिवृत्ति के उदाहरण मिलते हैं।

मूल मराठी:"बयो: (हसून) हां रे रांडेच्या! त्यात काय चमत्कार आहे डोंबलाचा? आपले माणूस ज्याचे त्याला कळते."[१८]

हिंदी अनुवाद:"बयो: (हँसकर) इसमें कौन सा चमत्कार है रे? अपने लोगों की बात किसे नहीं समझ में आती?"[१९]स्रोत भाषा पाठ का लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय न्यूनानुवाद,अधिकानुवाद, अर्थांतरण की स्थितियों से अर्थगत विचलन की आती है। उक्त उदाहरण में अनुवादक ने मूल सामग्री के कुछ सामग्री को छोड़ दिया है। अंतिम विधि वाक्य का अनुवाद प्रश्नार्थक वाक्य के रूप में किया है। उसका अनुवाद 'अपने लोगों की बात अपने ही लोग समझते हैं' करते तो अनुवाद अधिक प्रभावशाली बन सकता था।

सूचनात्मक परिवृत्ति:

इस परिवृत्ति में मूल सूचनात्मक बिंदुओं का परिवर्तन किया जाता है। इस प्रकार की परिवृत्ति लक्ष्य भाषा पाठक को मूल आशय ग्रहण से विचलित कर देती देती है। यह परिवर्तन कभी-कभी स कारण होता है।

मूल मराठी:-बल्लाळ: "आणि हातपाय तोडून, डोळे काढून, तुझ्या बाबाची ती गाढवावरून गावभर दिंड काढणार!"[२०]

हिंदी अनुवाद:"वर्मा: और हाथ पाव कटवाकर, आंखें फुड़वाकर, तुम्हारे पापा को चौराहे पर फिकवा देगी!"[२१]उपर्युक्त उदाहरण में मूल पाठ 'गाढवा वरून गावभर दिंड काढणे' का हिंदी अनुवाद 'चौराहे पर फिकवा देना' किया है। अर्थात अनुवादक ने लक्ष्य भाषा प्रकृति के अनुरूप अनूदित किया है। अपितु मूल पाठ की अभिव्यक्ति लक्ष्य भाषा पाठ में नहीं आई है। यहां अनुवादक ने मूल पाठ के सूचनात्मक बिंदओं को बदल दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रौक्ति, प्रयुक्ति, परिवृत्ति और समतुल्यता अनुवाद सिद्धांत एवं मूल्यांकन के महत्वपूर्ण तत्व है। डॉ. सुरेश कुमार ने क्षतिपूर्ति नियम को अनुवाद मूल्यांकन का प्रेरक माना है। वे मानते हैं कि मूल पाठ को लक्ष्य भाषा पाठ में अनूदित करते समय मूल पाठ की क्षति होती ही है और इस क्षति को कम करने का प्रयास ही असली अनुवाद है।

****

संदर्भ:-

1. भाषा संरचना के विविध आयाम- रवीद्रनाथ श्रीवास्तव, पृ- २०४
2. भाषा संरचना के विविध आयाम- रवीद्रनाथ श्रीवास्तव पृ- २०५
3. अनुवाद विज्ञान की भूमिका- कृष्णकुमार गोस्वामी,राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली ११०००२, संस्करण-२०१२ पृ-२३०
4. अनुवाद विज्ञान की भूमिका- कृष्णकुमार गोस्वामी,राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली ११०००२, संस्करण-२०१२ पृ-२०६
5. अनुवाद शिल्प समकालीन संदर्भ- डॉ. कुसुम कुमार अग्रवाल, साहित्य सहकार प्रकाशन,२९/६२-भी विश्वास नगर, दिल्ली, सं-२००८, पृ-३९
6. प्रेमा तुझा रंग कसा?-वसंत कानेटकर, पॉप्युलर प्रकाशन महालक्ष्मी चैंबर्स मुंबई स- पृ १२-१३
7. ढाई आखर प्रेम का - वसंत देव पॉप्युलर प्रकाशन,३५ सी ताडदेव रोड, बम्बई संस्क-१९६५ ,पृ- १०
8. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा- सुरेश कुमार, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली - पृ- ६४
9. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा- सुरेश कुमार, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली - पृ- ६०
10. हिंदी व्याकरण-कामता प्रसाद गुरु, हिंदी मराठी प्रकाशन नागपुर-१२, पृ-१६१
11. हिमालयाची सावली-वसंत कानेटकर, पॉप्युलर प्रकाशन, महालक्ष्मी चैंबर्स मुंबई, पृ-०३
12. हिमालय की छाया- अनु. कुसुमकुमार, लिपि प्रकाशन, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली -पृ- ०९
13. अखेरचा सवाल- वसंत कनेटकर, वसंत कानेटकर, मेहता पब्लिकेशन हाउस १९४१,सदाशिव पेठ, पुणे संस्करण-२००६ पृ-५३
14. आखरी सवाल-अनु. श्रीमती कुसुम तांबे, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली,-पृ- ७७
15. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा- सुरेश कुमार, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली - पृ- ६७
16. हिमालयाची सावली-वसंत कानेटकर, पॉप्युलर प्रकाशन, महालक्ष्मी चैंबर्स मुंबई,- पृ-३९
17. हिमालय की छाया- अनु. कुसुमकुमार, लिपि प्रकाशन, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली - पृ- ५५
18. हिमालयाची सावली – वसंत कानेटकर, पॉप्युलर प्रकाशन, महालक्ष्मी चैंबर्स मुंबई,-पृ-७८
19. हिमालय की छाया- अनु. कुसुमकुमार, लिपि प्रकाशन, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली पृ- १०५
20. प्रेमा तुझा रंग कसा? -वसंत कानेटकर, पॉप्युलर प्रकाशन महालक्ष्मी चैंबर्स मुंबई - पृ-१८
21. ढाई आखर प्रेम का – वसंत देव पॉप्युलर प्रकाशन,३५ सी ताडदेव रोड, बम्बई -,पृ- १६

श्रीमद्भागवत में तरु पूजा

डॉ. राखी गुप्ता

प्रस्तावना-तरु-पर्वत भी हमारी आस्था के द्योतक हैं। हमारी संस्कृति धर्म-प्रधान है। वृक्ष-गिरि देवी-देवता के रूप मान्य हैं। वे आस्तिक सोपान के अभीष्ट तत्व हैं। अश्वत्थ, पारिजात, तुलसी, वट और मन्दार आदि अनेक तरु में सनातन धर्ममतावलम्बी अपनी आस्था द्वारा पूज्य बुद्धि रखते हैं। धर्मशास्त्र इस प्रेरणा के मूल प्रेरक हैं। श्रीमद्भागवत में पूज्य वृक्षों का स्पष्ट उल्लेख मिलता हैं। भगवान ने विभूतियों के वर्णन में 'वनस्पतीनामश्वत्थ '[1] अर्थात् वनस्पतियों में 'अश्वत्थ' हूँ। महाराज पृथु ने पृथ्वी दोहन के समय श्रेष्ठ एवं व्यापक रूप वाले तट को वृक्षों के द्वारा बछड़ा बनाकर अनेक प्रकार का रस रूप दूध दुहा-

'वटत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः [2]

बीज शब्द-समुद्र-मंथन से स्वर्गलोक की शोभा बढ़ाने वाला कल्पवृक्ष (पारिजात) निकला। वह याचकों की इच्छायें पूर्ण करता है अर्थात उनको इच्छित वस्तु प्रदान करता है। जैसे पृथ्वी पर राजा परीक्षित सबकी इच्छायें पूर्ण करते हैं-

ततोऽभवत पारिजातः सुरलोक विभूषणम्।
पूरयत्यर्थिनो योऽर्थेशश्वद् भुवि यथा महा॥ [3]

तुलसी-तरु की विशाल महिमा है। श्री हरि तुलसी से अपने श्री विग्रह को सजाते हैं और तुलसी की गन्ध का ही अधिक आदर करते हैं। यह देखकर वहां के मन्दार, कुन्द, कुरवक, उत्पल, चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल, अम्बुज और पारिजात आदि पुष्प सुगन्धयुक्त होने पर भी तुलसी का ही अधिक तप मानते हैं।

मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्ण पुन्नागनागबकुलम्बुज पारिजाताः।
गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या, यस्मिंस्तपः सुमनसो बहुमानयन्ति ॥ [4]

'तुलसी' का नाम 'वृन्दा' भी है। जहाँ वृन्दा के अनेक पेड़ होने के कारण उस स्थान की समष्टि संज्ञा 'वृंदावन' हुई। यह वृन्दावन भगवान की लीलाओं के लिये दिव्य स्थान रहा है। यहां प्रभु नित्य श्याम-श्याम के रूप में रहते हैं। गीता में भगवान ने 'अश्वत्थः' सर्ववृक्षाणाम् का उद्घोष किया है। 'वटवृक्ष' की पूजा सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने ऐश्वर्य की समृद्धि के लिये करती है। केशवप्रिया तुलसी और देववृक्ष अश्वत्थ की विस्तृत विवेचना अन्य पौराणिक ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत है-

उद्देश्य-अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम् भारतीय जनजीवन में वनस्पतियों, वृक्ष आदि में भी देवत्व की अवधारणा परम्परा से चलती आ रही है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अश्वत्थ वृक्ष को अपनी विभूति बतलाया है। **5** वैसे भी पच्चवट विशेष रूप से पूजनीय है। भारत के अधिकांश प्रदेशों में पीपल, गूलर, बरगद, पाकड़ और आम की 'पञ्चवृक्षों' में गणना की जाती है। धार्मिक आस्था के अनुसार इनमें भी अश्वत्थ (पीपल) का स्थान सर्वोपरि है।

अश्वत्थ वृक्ष के आरोपण का पुण्य अक्षय होताहै। कहा जाता है कि इस लोक मे अश्वत्थ वृक्ष के छायातल में जिस प्रकार प्राणी स्वच्छन्दता से भ्रमण करते हुए सुख प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार इस वृक्ष का आरोपकर्ता मृत्यु के पश्चात् विराम ओर विश्राम प्राप्त करता हुआ नियन्ता के निकट निवास करने का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। उन्हें न यमलोक की यन्त्रणा हो सकती न दारुण संताप ही।विविध पुराणों में अश्वत्थ वृक्ष का अनेकधा उल्लेख करते हुए इसके माहात्म्य की अधिक विशिष्टता प्रतिपादित की गयी है। स्कन्द पुराण के अनुसार अश्वत्थ वृक्ष के मूल में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में भगवान श्री हरि और फलों में सब देवताओं से युक्त अच्युत सदा निवास करते हैं। यह वृक्ष मूर्तिमान् श्री विष्णुस्वरूप हैं। महात्मा पुरुष इस वृक्ष के पुण्यमय मूल की सेवा करते हैं। इसका आश्रय करना मनुष्यों के सहस्त्रों पापों का नाशक तथा सभी अभीष्टों का साधक है। [6]श्रीमद्भागवत के अनुसार द्वापर युग में परमधामगमन से पूर्व योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण इस परम पवित्र अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यानावस्थित हुए थे। [7]पीपल के वृक्ष को बिना प्रयोजन के काटना अपने पितरों को काट देने के समान है। ऐसा करने से वंश की हानि होती है। यज्ञादि पवित्र कार्यों के उद्देश्य से इसकी लकड़ी काटने से कोई दोष न होकर अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अश्वत्थ वृक्ष की पूजा करने से समस्त देवता पूजित हो जाते हैं।

छिन्नो येन वृथाश्वित्थश्छेदिताः पितृदेवताः।
यज्ञार्थ छेदितेऽश्वत्थे ह्यक्षयं स्वर्गमाप्नुयात् ॥
अश्वत्थः पूजितो यत्र पूजिताः सर्वदेवताः ॥ (अश्वत्थस्त्रोतम्)

अश्वत्थ वृक्ष की परिक्रमा करने एवं नित्यप्रति उस पर जल चढ़ाने से अशुभ नष्ट हो जाता है। इस वृक्ष के मूल में थाला बनाकर वैशाख मास में जल देने से महान फल की प्राप्ति होती है। इस वृक्ष के दर्शन एवं श्रद्धापूर्वक नित्यप्रति नमन से सम्पदा में वृद्धि तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। विष्णुरूप अश्वत्थदेव की इस प्रकार प्रार्थना की जा सकती है-

अश्वत्थ सुमहाभाग सुभग प्रियदर्शन।
इष्टकामांश्च मे देहि शत्रुभ्यस्तु पराभवम्॥
आयुः प्रजां धनं धान्यं सौभाग्यं सर्वसम्पदम् ।
देहि देव महावृक्ष त्वामहं शरणं गतः ॥

अश्वत्थ वृक्ष की प्रायः तीन बार प्रदक्षिणा करने का विधान है। प्रायः हिन्दू बालिकाएँ बाल्यकाल से ही अश्वत्थ वृक्ष से सम्बद्ध अनेक व्रतों का पालन करती हैं। 'ज्ञानभास्कर' नामक ग्रन्थ के अनुसार प्रबल वैधव्य योगवाली कन्या को 'अश्वत्थ-व्रत' का अनुष्ठान करना चाहिये। बृहद्वेताकार महर्षि शौनक ने 'अश्वत्थोपनयन' नामक महान् व्रत की महिमा बतलाते हुए कहा हैं कि किसी शुभ दिन में पुरुष पीपल वृक्ष का आरोपण कर उसे आठ वर्षों तक निरन्तर जल दान करें। इस प्रकार उसका पुत्रवत पालन एवं पोषण करता रहे। तत्तपश्चात् उस वृक्ष का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कर यदि उसका विधिवत् पूजन किया जाय तो अक्षय लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अश्वत्थ वृक्ष का रोपण करने वाले व्यक्ति की वंश परम्परा कभी समाप्त नहीं होती, अपितु अक्षय रहती है। इसके आरोपण से समस्त ऐश्वर्य एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है तथा पितृगण नरक से छूटकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

अश्वत्थः स्थापितो येन तत्कुलं स्थापितं ततः।
धनायुषां समृद्धिस्तु पितॄन् क्लेशात् समुद्धरेत्॥

अश्वत्थ की पूजा एवं उसका स्पर्श प्रायः शनिवार को ही विशेष रूप से किया जाता है। 'व्रतराज' में अद्भुत सागर से संगृहीत अश्वत्थोपासना एवं उसकी प्रदक्षिणा की विधि विस्तार से वर्णित है, जिसमें इस विषय की विवेचना करते हुए अथर्वण ऋषि ने पिप्पलाद ऋषि से कहा है।' प्राचीन काल में दैत्यों से पीड़ित ब्रह्मादि सभी देवता श्री विष्णु की शरण में गये। उन देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना करते हुए कहा-'भगवान! हम राक्षसों से निरन्तर पीड़ित रहते हैं। हमारे दुःख की शान्ति किस प्रकार हो सकती है?' तब श्री विष्णु ने कहा-'मैं अश्वत्थ रूप से भूतल पर विद्यमान हूँ। इसलिये सभी प्रकार से तुम्हें अश्वत्थ वृक्ष का सेवन करना चाहिए।' अश्वत्थ व्रती को प्रातः नदी आदि में स्नान करना चाहिए। तत्पश्चात् नित्य-नियम से अश्वत्थ की जगह जाकर गोबर से उसे लीपना एवं सूत्र तथा गेरु से सुशोभित करना चाहिये। पूजा के द्रव्यों को एकत्रकर पुण्याहवाहन कराना चाहिये तथा ऋत्विजों का वरण करके पूजन प्रारम्भ करना चाहिए। ध्यान और आह्वान के साथ विष्णु की उपासना करने एवं उसी प्रकार नारायणमय पीपल वृक्ष को श्वेत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य समर्पित करते हुए

ध्यानपूर्वक पुरुषसूक्त द्वारा पूजन करने का विधान है। तत्पश्चात् उसी से हवन, तर्पण एवं नमस्कार करना चाहिये। श्वेतवस्त्रा लक्ष्मी के साथ पुरुषोत्तम विष्णु के चिन्तनपूर्वक अश्वत्थ को अभिमन्त्रित कर प्रार्थना करे तथा व्रतोत्सव के समय अनुष्ठानादि में अश्वत्थ वृक्ष की एक सौ आठ प्रदक्षिणा करनी चाहिए।

अश्वत्थोपासना करने वाले भक्तों को हविष्यान्न का भोजन, भूमि का शयन, जितेन्द्रिय एवं मौन होकर ध्यानपूर्वक स्तुति करनी चाहिये। विष्णु सहस्त्रनाम, पुरुषसूक्त एवं विष्णुसूक्त का पाठ पवित्र दिनों में करना चाहिए। तत्पश्चात् स्नानादि के द्वारा पवित्र होकर व्रत का उद्यापन करना चाहिये।भगवान बुद्ध को सम्बोधि की प्राप्ति बोधगया में अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ही हुई थी। इस वृक्ष का बोधिगम भी कहा जाता है। आयुर्वेद के अनुसार अश्वत्थ मधुर, कषाय और शीतल है। इसके अनुपान-भेदपूर्वक सेवनक से कफ, पित्त और दाह नष्ट होते हैं। इसके फल के सेवन से रक्त-पित्त, विष, दाह,शोथ एवं अरुचि आदि दूर होते हैं। इस वृक्ष की कोमल छाल एवं पत्ते की कली पुरातन प्रमेह रोग में अत्यन्त लाभप्रद है। पीपल के फल का चूर्ण अत्यन्त क्षुधापूर्वक है। इसके अतिरिक्त अन्य कई व्याधियों के उपचार में भी अश्वत्थ-वृक्ष के महत्व का संकेत आयुर्वेद के विविध ग्रन्थों में यथास्थान दृष्टिगत होता है।

निष्कर्ष- निष्कर्ष यह है, कि अश्वत्थ धार्मिक, आयुर्वेदिक एवं सामाजिक सभी दृष्टिकोणों से भारतीय जनमानस के लिये आराध्य एवं वन्दीय है। इसकी महिमा अनन्त एवं अक्षय है। यह वृक्षराज उपासक की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ तथा पापहारी है।

****

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भागवत - 1/11/21
2. श्रीमद्भागवत-4/18/23
3. श्रीमद्भागवत - 8/8/6
4. श्रीमद्भागवत-3/15/19
5. मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च।
नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान हरिः ।।
फलेऽच्युतो न संदेहः सर्वदेवै समन्वितः।
स एव विष्णुर्द्रुम एव मूर्तो महात्मभिः सेवतिपुण्यमूलं।
यस्याश्रयः पापसह;त्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुधो गुणाढ्यः।
(स्कन्दपुराण, नागर. 247/41-42, 44),
6. भागवतपुराण 3/4/8
7. परमादरणीय डॉ. राकेशमणिजी त्रिपाठी (देवता अंक) पृष्ठ 255-56

भारत में विवाह के बदलते आयाम सामाजिक विधिक अध्ययन

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1480

दिनेश कुमार
शोध छात्र
मानवाधिकार विभाग
बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय
लखनऊ उत्तर प्रदेश 226025मो. 9506155988

सारांश -किसी समाज की संस्कृति एक गत्यात्मक सामाजिक यथार्थ है जो निरन्तर परिवर्तनशील है। संस्कृति में परिवर्तन होने पर समाज की संस्थाओं जैसे विवाह, परिवार, जाति, धर्म, नातेदारी आदि पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। परिवर्तन समाज की प्रकृति है। विवाह संस्था पर भी इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ा है समकालीन समाज में विवाह में अनेक परिवर्तन हो रहे है। यह परिवर्तन पति- पत्नी परिवार तथा समाज से संबंधित है। विवाह के प्रति बदलते दृष्टिकोणों को विवाह संस्था के अनेक लक्षणों को बदला है, जैसे विवाह की आयु विवाह के उद्देश्य, प्रकार, विधि-विधान, रीति-रिवाज, पति-पत्नी के अधिकार, संस्कारात्मक प्रकृति आदि। इनमें परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है क्योंकि आज हमारी विचाराधारा दृष्टिकोणों एवं संस्थाओं को कुछ कारक जैसे नगरीकरण, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, संचार, यातायात के साधन, आधुनिक शिक्षा, व्यवसायिक सामाजिक गतिशीलता, मीडिया, वैश्वीकरण आदि प्रभावित कर रहा है।

प्रस्तावना-विवाह समाज द्वारा मान्यता प्राप्त तरीके से स्त्री पुरुष की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसे एक निश्चित तरीके से नियंत्रित करने, वंश आगे बढ़ाने तथा मान्य सामाजिक स्थिति को स्थिर रखने, और स्थाई रूप देने के लिए इस संस्कार का विकास अथवा निर्माण हुआ है। विवाह वह बहुमूल्य संस्कार है जो मानव का घर बसाता है बच्चों का भरण पोषण, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक, विधिक एवं नैतिक उत्तरदायित्व की नींव डालता है। मानव के यौन इच्छाओं की पूर्ति, वंश आगे बढ़ाना, सुखमय जीवन निर्वाह, समाज की निरंतरता को कायम रखना एवं एक दूसरे के प्रति नैतिक दायित्वों अधिकारों और कर्तव्य समर्पण का समावेशी परिवार होता है। विवाह मानव संस्कृति के मूलभूत दायरे में सदैव अस्तित्व में रहेगा।

वर्तमान समय में विवाह का दायरा जातिगत न रहकर अंतर जातीय, एवं अंतर धार्मिक प्रथा का रूप ले रहा है। समाज में उन्नत पढ़े लिखे पुरुष एवं स्त्री ढांचागत दायरे से बाहर आकर सांस्कृतिक, धार्मिक परंपराओं के बाहर अंतर जातीय एवम अंतर धार्मिक विवाह विधिक क्रिया द्वारा करने लगे हैं।

बीज शब्द... विवाह, सामाजिक एवं कानूनी मान्यता, विवाह का बदलता स्वरूप

हिंदुओं में प्रमुख चार वर्ण की धार्मिक व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है। जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र है। भारतीय समाज का जातीय ढांचा, स्तरीकरण मूलतः चर्तुवर्ण सिद्धांत पर आधारित है। वर्ण का मुख्य अर्थ रंग और संदर्भ प्रजातीय है। ब्राह्मण के मुख्य कार्य ज्ञान, अध्ययन करना एवं कराना, यज्ञ करना एवं कराना, दान देना एवं लेना, संयम, सदाचारी, न्यायप्रियता आदि कार्य निर्धारित थे। क्षत्रिय के मुख्य कार्य, धर्म का पालन कराना, जीवन एवं समाज की रक्षा शौर्य पूर्वक करना, अध्ययन करना, यज्ञ करना, दान देना, स्वभाव से तेजवान, धैर्य एवं चातुर्य से युद्ध में विचलित न होना आदि कार्य थे। वैश्य के मुख्य कार्य, अध्ययन करना, यज्ञ करना व दान देना, उत्पादन व व्यवसाय, क्रेषि एवं पशुपालन भरण पोषण की क्षमता आदि कार्य थे। शूद्र के मुख्य कार्य तीनों वर्णों की सेवा करना अच्छा सेवक बनकर रहना, आज्ञाकारी, संयमी विनम्रता पूर्वक व्यवहार आदि कार्य थे। इस प्रकार यह परिलक्षित होता है कि इसका मुख्य उद्देश्य समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति व्यवस्थित रूप से हो। कालांतर में हर वर्ण में अनेक उपजातियों का विकास हुआ और उनमें अनेक रीति-रिवाजों, चाल-चलन, रूढ़िवादिता, स्थानीय संस्कृति का जन्म हुआ। जातियों में रक्त शुद्धता का प्रचलन प्रारंभ हो गया जिसके अंतर्गत सगोत्र, सप्रवर, पूर्वज एवं सपिण्ड, बिर्हिविवाह अपनी उपजातियों में प्रारंभ हो गया।

हिंदू विवाह, हिंदू धार्मिक वेदशास्त्रों द्वारा मान्य परंपरा के आधार पर संपन्न होते हैं। विवाह का संपूर्ण कार्यक्रम वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ संपन्न कराएं जाते हैं धार्मिक विधि के अनुसार जन्म जन्मांतर तक साथ निभाने का संस्कार होता है हिंदुओं में अंतर जातीय विवाहों का प्रचलन नगण्य था इसका कारण हिंदू शास्त्र प्रतिलोम विवाह निम्न जाति का पुरुष उच्च जाति की कन्या का विवाह होना था। इनसे उत्पन्न संतान हिंदू वर्ण में न रखा जाना था इनको चाण्डाल या निषाद कहा जाता था।

हिंदू धर्म अनुलोम विवाह की अनुमति प्रदान करता था जिसमें इस प्रकार के विवाह को वैध माना गया लेकिन इसे उच्च कोटि का नहीं माना गया । मनुस्मृति की व्यवस्था के अनुसार चारों वर्ण के पुरूष अपने से निम्न वर्ण की कन्या से विवाह कर सकते हैं महाभारत में उल्लेख है कि भीष्म के पिता शांतनु ने एक धीवर कन्या से विवाह किया था ।

इस्लाम का शाब्दिक अर्थ होता है अल्लाह की शरण में आना समर्पण एवं उत्सर्ग जिसका अभिप्राय होता है अल्लाह खुदा की इच्छा के सामने झुकना इस्लाम केवल एक ही अल्लाह को मानता है। पैगंबरों में मुहम्मद साहब अन्तिम पैगंबर थे उनका उद्देश्य पथ भ्रष्ट मानवता को अल्लाह का संदेश समझाना था। जिसे उन्होंने अबरील नामक देवदूत से प्राप्त किया। पैगंबर साहब का अल्लाह द्वारा प्रदत्त ज्ञान कुरान शरीफ नामक धर्म ग्रंथ में संग्रहित किया गया है । कुरान शरीफ मुस्लिम रीति रिवाजों का मुख्य स्रोत व जीवन पद्धति का सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रंथ है । इसी के अंतर्गत मुस्लिम विवाह एक संविदात्मक स्वरूप लिए हुए है। मुस्लिम विवाह को निकाह के नाम से जाना जाता है । हिंदू धर्म में जहां लड़की के पक्ष से रिश्ते की पहल की जाती है । इस्लाम धर्म में यह पहल लड़के के पक्ष से रिश्ता लड़की के घर में भेजा जाता है । हिंदू विवाह में लड़का एवं लड़की जन्म जन्मांतर तक साथ निभाने के लिए धार्मिक परंपरा के अनुसार कार्य करते हैं हिंदू में लड़की पक्ष से धन आदि दिया जाता है जबकि इस्लाम धर्म में लड़की को मेहर एक निश्चित निर्धारित धन शादी के समय या बाद में देने की सहमति होती है । यह कन्या धन होता है जिसका उपयोग पत्नी तलाक के बाद या पति की मृत्यु के उपरांत करती है । इससे यह परिभाषित होता है कि इस्लाम धर्म में निकाह एक संविदा या समझौते का स्वरूप लिए है । निकाह में वर एवं वधू की सहमति काजी के सामने होना आवश्यक होता है । और पुरुष दो की संख्या में या एक पुरुष और दो औरत गवाह के रूप में रखे जाते हैं । जबकि हिंदू धर्म में सप्तपदी अग्नि को साक्षी मानकर जीवन पर्यंत साथ निभाने का व्रत पालन करना होता हैं।

ईसाई धर्म में हिंदू धर्म या इस्लाम धर्म की तरह कोई अनिवार्य संस्कार या रूढ़िवादिता नहीं है। ईसाई धर्म में अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यंत महत्वपूर्ण पवित्र कार्य माना जाता था। कैथोलिक संप्रदाय में यह आदर्श बहुत दढ़ था। बाद में ईसाई धर्म की प्रोटेस्टेंट शाखा के विकास के साथ विवाह की यह अवधारणा परिवर्तित हो गई और विवाह को वंश परंपरा एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में स्वीकारा गया इसका एक उद्देश्य समाज में व्यभिचार रोककर पवित्र जीवन जीने का आधार भी माना गया । विवाह के इस आधार को सेंट पॉल के अनुसार ''यदि अविवाहित और विधवाएं संयम नहीं रख सकती हों तो पाप करके चलने की अपेक्षा विवाह करना अति उपयुक्त है'' ।भारत में ईसाई समुदाय का अधिकांश भाग ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन करके बना है । मूल ईसाई परिवार जो ब्रिटेन से आए थे। भारत को आजादी मिलने के बाद स्वदेश चले गए उनमें अधिकांशतः विवाह परंपरा लड़के - लड़की द्वारा स्वतः पसंद करके संपन्न होता है ।लेकिन भारत में विवाह माता-पिता द्वारा तय करके संपन्न होने लगा है। लड़के - लड़की द्वारा स्वयं पसंद करके होने वाले विवाह को अच्छा माना जाता है। ईसाइयों में लड़की के चयन के पश्चात सगाई के लिए पादरी को सूचना दी जाती है । भारत का हर ईसाई परिवार किसी न किसी चर्च का सदस्य होता है । पादरी की अनुमति के पश्चात, पादरी तीन रविवार तक चर्च में प्रार्थना के समय चर्च के समक्ष उपस्थित सदस्यों को सूचना देता है । यदि किसी सदस्य द्वारा कोई एतराज नहीं होता तो पादरी वर वधु को एक स्थान पर बिठा कर दोनों की स्वीकृति लेकर मॅगनी की रस्म की स्वीकृति प्रदान करता है । मंगनी की रस्म के समय लड़के वाले नारियल, अंगूठी, मिठाई, वस्तु लेकर जाते हैं । पादरी बाईबिल के कुछ पाठ पढ़कर लड़का लड़की को अंगूठी, नारियल, वस्त्र, बाईबिल की प्रति आदि देता है । इसी प्रकार का सामान वधू पक्ष की ओर से भी लड़के को दिया जाता है । पादरी एक दूसरे को अंगूठियां पहना कर मंगनी की रस्म पूरी कराता है । इस रस्म अदायगी के बाद विवाह की रस्म के समय वर वधु के परिवार विवाह की स्वीकृति के लिए उपस्थित रहते हैं । पादरी वर वधू की स्वीकृति लेकर विवाह संपन्न करवा करके आशीर्वाद देता है । यदि कोर्ट मैरिज होता है तो लड़का लड़की चर्च में आशीर्वाद के लिए जाते हैं । भारत में इस्लाम एवं ईसाई धर्म के अलावा हिंदू धर्म के समानांतर बौद्ध धर्म, सिख धर्म, एवं जैन धर्म भी है जिनमें धार्मिक कट्टरता नहीं है । इसलिए भारत सरकार ने हिंदू विवाह अधिनियम 1955 में बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तन करके तमाम प्रचलित धार्मिक मान्यताओं को निरस्त कर दिया हैं। यह विधान हिंदू, बौद्ध, सिक्ख, के लिए मील का पत्थर साबित हुआ है ।यह अधिनियम 18 मई 1955 को लागू हुआ इसमें धारा 2 के अनुसार हिंदुओं पर वे चाहे जिस वर्ग के हो इस प्रकार यह लिंगायत, ब्रह्म, आर्य समाजियों पर लागू होता है भले ही वें रूढ़िवादी हिंदू समाज से अलग हो गए हो यह हिंदू धर्म से, धर्म परिवर्तन करके गए जैन, सिक्ख, बौद्धों पर भी लागू होता है विवाह के संदर्भ में यह अधिनियम अत्यंत व्यापक रुप से उपरोक्त धर्म मानने वालों के बीच विवाह संबंध स्थापित करने की अनुमति प्रदान करता है।

यह अधिनियम पूर्व प्रचलित नियमों, मान्यताओं, रुढियों को निरस्त करता है भारत में अंतर धार्मिक विवाह का विधिक रूप ब्रिटिश शासन में विशेष विवाह अधिनियम 1872, अधिनियम 1923 द्वारा संशोधित, इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गयी कि रजिस्ट्रार के सम्मुख हिंदू, बौद्ध, जैन, सिक्ख धर्म वालों के बीच आपस में वैध रूप से संपन्न विवाह वैध माना जाएगा ।प्राचीन भारत में अंतर धार्मिक विवाह का उल्लेख मिलता है यूनानी राजा सेल्यूकस जो पारसीक था चंद्रगुप्त मौर्य से हार के बाद अपनी पुत्री का विवाह किया था । महाभारत काल में अंतर जातीय विवाह का उल्लेख मिलता है ये विवाह अनुलोम विवाह थे । भीष्म ने हिडिंबा राक्षसी से विवाह किया था । राजा शांतनु ने सत्यवती के साथ विवाह किया था । महाभारत में प्रतिलोम विवाह एकमात्र ययाति और देवयानी का मिलता है । यह प्रतिलोम विवाह था जो हिंदू धर्मानुसार अति निंदनीय था ।बुद्ध काल में सजातीय विवाहों की प्रधानता थी । अंतर जातीय विवाह का भी उल्लेख मिलता है दिव्यावदान में शूद्रपुरुष और ब्राह्मण कन्या का विवाह मिलता है । यह प्रतिलोम विवाह है । कौशलराज प्रसेनजित ने श्रावस्ती के मालाकार की कन्या के साथ विवाह किया था जो अनुलोम विवाह था । मध्यकालीन युग में अकबर ने क्षत्रिय वंश की जोधाबाई से विवाह किया था जो अंतर धार्मिक विवाह था।

निष्कर्ष-भारतीयों की वर्षों से रूढ़िवादी मानसिकता रही है। वे एक ही जाति से बाहर विवाह की कल्पना नहीं कर सकते थे। उनका मानना था कि विवाह एक ही समुदाय और जाति के भीतर ही संभव है। सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन कर अंतर्जातीय विवाह करने का दुस्साहस करने वालों को हिंसा, सामाजिक बहिष्कार, पारिवारिक बहिष्कार और मृत्यु (ऑनर किलिंग) का परिणाम भुगतना पड़ा। इस इक्कीसवीं सदी में भी भारत के अधिकांश हिस्सों ऑनर किलिंग प्रचलित है, जब अंतर्जातीय विवाह के मामले सामने आते हैं। इतिहास बताता है कि विभिन्न समाज सुधारकों और व्यक्तियों द्वारा भारत को जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता और नस्ल भेदभाव के चंगुल से मुक्त करने के लिए प्रयास किए गए हैं और जब हम भारतीय विवाहों की बात करते हैं जो अंतर्जातीय और अंतर्धार्मिक हैं, तो यह अधिकांश लोगों को वर्जित लगता है। लेकिन जाति व्यवस्था और जातिगत भेदभाव को मिटाने के लिए यह आवश्यक है कि अंतर-जातीय और अंतर-धार्मिक विवाह हो।वर्तमान समय में विशेष विवाह अधिनियम 1954 ने प्रचलित मान्यताओं को दरकिनार कर अब जाति, उपजाति, अनुलोम, प्रतिलोम, गोत्र, प्रवर सभी बंधनों को समाप्त कर दिया है । सपिण्ड व्यक्तियों को छोड़कर स्त्री पुरुष आपस में विवाह कर सकते हैं।

****

सन्दर्भ :-

1. भारत का सविधान 1950
2. हिन्दू विवाह अधिनियम 1955
3. विशेष विवाह अधिनियम 1954
4. भारत का विधि आयोग रिपोर्ट संख्या 212
5. पारस दीवान आधुनिक हिंदू विधि
6. अकील अहमद मुस्लिम विधि

वेदों में वनस्पति व औषधीय प्रबंधन

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1461

डॉ दीप्ति वाजपेयी
एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत विभाग
कु०मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बादलपुर गौतमबुद्ध नगर
गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

मोनिका सिंघानिया
शोध छात्रा "संस्कृत विभाग"
कु० मायावती राजकीय महिला
स्नातकोत्तर महाविद्यालय बादलपुर, उत्तर प्रदेश

सारांश:-सम्पूर्ण प्राणी जगत हेतु वनस्पतियों का विशेष महत्व हैं। प्रकृति ने अनेक भाँति-भाँति प्रकार की वनस्पति, जड़ी-बूटियाँ, औषधि रूपी रत्न मानव को प्रदान किए। जिसके अभाव में मानव जीवन कल्पना मात्र हैं। मनुष्य के लिए रोटी, कपड़ा, मकान के साथ-साथ रोगों से रक्षा करने, चिकित्सा, श्रृंगारिक प्रसाधनों हेतु औषधियां उपयोगी सिद्ध होती हैं। यह वनस्पतियाँ फल-फूल-काष्ठ रूप में अनेकों प्रकार से सुख प्रदान करती हैं। वेदों में वनस्पतियों की उपयोगिता को मन्त्रों की दृष्टि से समझाया गया हैं। ऋषियों के द्वारा प्रकृति को किसी भी रूप से हानि न पहुँचाने की कामना की गयी हैं। वैदिक संहिताए भारतीय संस्कृति व सभ्यता का ही स्रोत नहीं हैं अपितु वेद, चिकित्सा विज्ञान, पर्यावरण, भू गर्भ, गणित, ज्योतिष, आयुर्विज्ञान कृषि, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान आदि का भी अक्षय कोश हैं। कल्याणकारी औषधियों के सम्यक् प्रयोग द्वारा हमें सौ वर्ष की आयु प्राप्त करने वाला माना हैं। वनस्पतियों की उत्पत्ति मानव से पूर्व हुई मानी हैं जो सम्पूर्ण मानव जीवधारीयों की पोषक व, प्रदूषण नष्ट करने वाली, रोग, शोक का शमन करने वाली हैं। वनस्पतियाँ मानव में उर्जा, उत्साह,शक्ति, व प्राणवायु का सञ्चालन करने वाली हैं।

मुख्य शब्द- वनस्पति, वेद, प्राणवायु, चिकित्सा, उपयोगिता।

वैदिक संहिताए भारतीय संस्कृति, सभ्यता व ज्ञान की अनुपम निधि होने के साथ-साथ विज्ञान का भी अक्षय स्रोत हैं। वेदों के अन्तर्गत वनस्पति प्रबन्धन हेतु प्रकृति को देवतुल्य मानकर स्तुति की हैं। वनस्पति प्रबन्धन पृथ्वी पर निवास करने वाले मानव-जीव-जंतुओं के जीवन हेतु अति महतवपूर्ण हैं। वैदिक काल में ईश्वर प्रदत्त प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का अंश मानकर प्रकृति को पूज्यनीय मानकर स्तुति की गई हैं। तथा वनस्पतियों व ओषधियों के संरक्षण पर बल दिया गया हैं। ओषधियों द्वारा मानव शरीर हष्ट-पुष्ट व पराक्रम युक्त बनता हैं। यह मनुष्य को मृत्यु के मुख से बचाकर, रोगों से मुक्त कर निरोगी बनाती हैं। वेदों में औषधियों को समूल नष्ट न करने का उपदेश दिया हैं। उनका कहना हैं की यदि वनस्पतियों, औषधियों को उपयोग हेतु काटा जाता हैं तो उनका उपयोग करें व्यर्थ में उन्हें न उखाड़े। क्योंकि इससे भविष्य में उनका संवर्धन किया जाना दुर्लभ होगा। वनस्पतियों ओज का स्रोत हैं। वह अपने सम्यक् समय पर अन्नसम फल देती हैं। सुन्दर तेजयुक्त फलों के रूप मे ये वनस्पतियों शक्ति प्रदान करती हैं। वनस्पतियों का औषधि रूप में फल-कंद-मूल, छाल आदि का किसी भी रूप में प्रयोग किया जाता हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद के अन्तर्गत वनस्पतियों की रक्षा हेतु कामना की गई हैं। वनस्पतियों में वायु को शुद्ध करने की सामर्थ्य हैं। जिससे यह वायुरक्षक हैं- "वायुगोपा वै वनस्पतयः"। यह समस्त जीवों के लिए महत्वपूर्ण ऑक्सीजन प्रदान करती हैं। यजुर्वेद के अन्तर्गत इन्हें विकसित होने की कामना की गई हैं। तथा मानव को पापों से रक्षा करने वाली दूषित विचारों को दूर करने वाली व पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने में ये महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वेदों में व्यर्थ में इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न देने की कामना की हैं। वैदिक ऋषियों द्वारा मान्य हैं कि वनस्पतियों की उत्पत्ति सृष्टि से पूर्व परमेश्वर द्वारा कर दि गई थी जो मानव को त्रिदोषो (तीन दुःखों आध्यात्मिक, मानसिक, भौतिक) से मुक्ति प्रदान करते हैं।भूमि को खोदकर प्राप्त की गई मुञ्ज नमक औषधि जो मानव शरीर को विनाश की ओर ले जाने वाले देह को क्षीण करने वाले, रोग रूपी असुरों का विनाश करने वाली व बड़े-बड़े फोड़ों को नष्ट करने वाली, घावों को भरने वाली अति उत्तम औषधि हैं। यह औषधि मानव के रोगों को नष्ट करने में सहायक हैं।

नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत्।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत्॥ (अथर्ववेद २।३।३)

अथर्ववेद के द्वितीय कांड के तृतीय सूक्त के षष्ठं मंत्र में औषधियों से प्रार्थना की हैं कि ये जल, अग्नि, औषधि हमारे रोगों का शमन करते हुए हमें शांति प्रदान करें। इंद्र के द्वारा सन्धान किए गए वज्र के प्रहार से जैसे शत्रु का नाश किया जाता हैं उसी प्रकार ये औषधि भी हमारे रोग रूपी असुरो को औषधि रूपी वज्र के प्रहार से दूर गिराने वाले हो-

शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः। इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु
रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम्॥ (अथर्ववेद २।३।६)

अथर्ववेद के अंतर्गत जंगिड़ नामक औषधि की स्तुति करते हुए उसकी महिमा को कहा है। जंगिड को कौशिक सूत्र के अंतर्गत अर्जुन वृक्ष नाम से अभिहित किया गया है। जबकि सायणाचार्य ने जंगिड औषधि वृक्ष को वाराणसी में प्रसिद्ध बताया है। यह जंगिड नामक औषधि सहस्त्रों गुणों को धारण करने वाली हैं। हमारे शरीर का क्षय करने वाले रोगों से निवारण करने वाली मणिरुपी औषधि है। जो हमें हिंसा से, मृत्यु भय से, शारीरिक और मानसिक दुःखों से व अन्य शारीरिक व्याधियों से सुरक्षित करती है।

जङ्गिडो जम्भाद विशराद् विष्कन्धादीभशोचनात्।
मणिः सहस्त्रवीर्यः परिणः पातु विश्वतः॥ (अथर्ववेद २।४।२)

जंगिड वनस्पति की महिमा- सह्स्त्रवीयरः, विश्वभेषजः, मयोभुवा, अमितवीयरः तथा सह्स्त्रचक्षः द्वारा परिलक्षित होती है। प० देवदत्त शास्त्रीनुसार - जंगिड वनस्पति अर्जुन वृक्ष है। उनके अनुसार इसके शाखामूल को मणिरूप में अभिमंत्रित कर चाँदी, सोना, तांबा, रागा, जस्तापंच धातुओं में भरकर ताबीज रूप में धारण करने पर अनेक रोगों से निवृत्ति मिलती है। वेदों मे चार प्रकार की वनस्पतियाँ- पुष्पित, फलवती, अपुष्पित, अफलित हैं जिनका हम औषधि रूप में प्रयोग करते हैं. कुछ वनस्पतियों पर पुष्प न आने पर उनके सीधे फल को औषधि रूप में प्रयोग किया जाता हैं। और कुछ वनस्पतियों पर फल न लगकर सीधा पुष्प ही औषधि के रूप में प्राप्त होता हैं। हे ब्रहस्पति देव अपुष्पित अफलित पुष्पित व फलित ये सभी प्रकार की वनस्पतियाँ हमारी रोगों से रक्षा करें।

याः फलिनीर्य अफलां अपुष्पा याश्चपुष्पिणीः।
वृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥१५॥ (ऋग्वेद १०।९७।१५)

द्यौलोक से अवतरित होने वाली औषधियों का कहना है कि जो पुरुष उनसे आच्छादित हैं उस पुरुष का विनाश नहीं होता है। वह उसके सभी रोगों का शमन करती है। अर्थात् द्यौलोक से वर्षा होने पर ये वनस्पतियाँ, औषधियां उत्पन्न होती है। और जो जीव इनका संरक्षण करते हुए इनका उपभोग करते हैं। इनका समूल नाश नहीं करते हैं जड़ से उखाड़ कर नहीं फेंकते हैं। ये उसके दैहिक मानसिक सभी विघ्नों, पापों, रोगों का विनाश करती है। और उस पुरुष को संरक्षण प्रदान करती है-

अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्यति पुरुषः॥ (ऋग्वेद १०.९७.१७)

हे औषधि, हे वनस्पति मेरे द्वारा हिंसित कार्य न किया जाए, जिस कार्य उदेश्य हेतु मेरे द्वारा आपका खनन किया जा रहा है। आप उन द्विपद व चतुष्पद (मनुष्य व पशु आदि) सभी जीवो को रोगमुक्त करें वह उन्हें आनंद प्रदान करें।

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः
द्विपदच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ।। (ऋग्वेद १०.९७.२०) ।।

हे औषधियों! जो भी निकटस्थ दूरवर्ती लताएं वनस्पति सुन रही हो आप सभी का जिस कार्यों हेतु उपयोग किया जाए आप उसी रोगी को स्वस्थ जीवन देकर बल व शक्ति प्रदान करें। अर्थात जिस रोगी के रोग को नष्ट करने हेतु वीरुध औषधियों को (चारों प्रकार की वनस्पति) हमारे द्वारा ले जाया जा रहा है। आप उन्हें रोकमुक्त करते हुए बल व शक्ति प्रदान करें। स्वस्थ्य जीवन व बल प्रदान करें-

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।
सवार्ः संगत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्यम् ।। (यजुर्वेद १२।९४) ।।

शुक्ल आयुर्वेद के 12वें अध्याय में वनस्पतियों को न काटने की प्रार्थना करते हुए कहा है कि उनका व्यर्थ में हमारे द्वारा खनन न किया जाए हमारे द्वारा उनका उपयोग हमें दीर्घजीवी व रोग मुक्त बनाएँ।

दीर्घायुस्तऽ औषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् ।। (शुक्लयजुर्वेद १२।१००)

अतः कामना की जा रही है कि हे! औषधि हे! वनस्पति, आपका खनन करने वाला मैं हिसां से रहित होकर आपके उपयोग द्वारा दीर्घ आयु को प्राप्त करने वाला बनूँ और जिस रोगी के रोग नष्ट करने हेतु आपको खनन कर रहा हूं वह भी दीर्घायु व रोगमुक्त स्वास्थ जीवन प्राप्त करें। और है! औषधि आप स्वयं भी दीर्घायु होकर सौ अंकुरों से युक्त होते हुए वृद्धि को प्राप्त करों। अर्थात फिर से ऊपर उठो। हे ओषधे! आप उत्तम गुणों से युक्त है। संपूर्ण वनस्पतियों के अंतर्गत विघातक तत्वों को नष्ट करने की शक्ति विद्यमान होती है। कहा भी है- हे ओषधे! आपमें सभी कष्टों को दूर करने की सामर्थ्य है। आप शारीरिक शक्ति को क्षीण करने वाले कफरोग, बवासीर, गंडमाला, खाँसी आदि अन्य असंख्य रोगों को मुक्त करने में सक्षम व रक्तविकार से उत्पन्न हुए फोड़े-फुंसियों को दूर करने वाली हो।

नाशयित्री बलासस्यर्शसऽ उपचितामासि ।
अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ।। (यजु० १२। ९७)

यजुर्वेद में औषोधियोंको माता कहा है। माता जिस प्रकार से शिशु की रक्षा करती है उसी प्रकार वनस्पतियां, वृक्ष, औषधियां भी इस संसार की रक्षा करती है। वह दुग्धरूपी प्राणवायु (ऑक्सीजन) के द्वारा संपूर्ण जगत को जीवन प्रदान करती हैं यह दिव्य गुणों से संपन्न है। हम यज्ञपुरुष द्वारा आपसे गाय, घोड़े, वस्त्र व निरोगी काया का सुख प्राप्त कर आपका उपभोग करते रहें-

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरूप ब्रुवे ।
स्नेयमश्वं गां वासं आत्मानं तव पुरुष ।। (यजुर्वेद १२.७८)

यह वेदों में वर्णित कुछ औषधियों को वर्णित किया जाता हैं। जो मानव हितकारी सिद्ध हो।

असिकनी वनस्पति- श्वेतकुष्ठ शमनार्थ हेतु। यह औषधि श्याम वर्ण, नील वर्ण, काले वर्ण वाली होती है जो रात्रि में उत्पन्न होती है तथा श्वेत कुष्ठ रोग के कारण हुई विभिन्न वर्णों वाली त्वचा को समान रंग प्रदान करने वाली है। हे कृष्णा वर्ण वाली तथा असिक्नी औषधियों, आप रात्रि में पैदा हुई है। आप उत्तम रंग प्रदान करने वाली है। कुष्ठ रोग से ग्रसित रोगी के श्वेत वर्ण को त्वचा सम् उत्तम रंग प्रदान करने वाली हो।

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ।। (अथर्ववेद २।२३।१)

यहां धन्वन्तरि के अनुसार रामा से रामा तुलसी, घृतकुमारी, आरामशीलता आदि, कृष्णा से कृष्णा तुलसी, कृष्णामूली, पुनर्नवा, पिप्पली आदि, और असिक्नी से असिशिम्वी का बोध होता है।

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत
आ त्वा स्वो विशतां वणर्ः परा शुक्लानि पातय ।। (अथर्वेद १।२३।२)

हे औषधियों! आप, कुष्ठ रोग से त्वचा पर हुए श्वेत धब्बों आदि को विनष्ट करने में सहायक आप इस रोग से ग्रसित रोगी के शरीर में पुनः पूर्ववत् लालिमा वे उत्पन्न करें। हे औषधि! आप इन श्वेत धब्बों को दूर कर रोगी को अपना रंग प्रदान करें व उसे निरोगी बनाएँ। जिससे वह पूर्ववत् सुन्दर व मनोहर शरीर प्राप्त करे। शरीर में विद्यमान अस्थि और त्वचा के मध्य स्थित मांस तथा औषधि के प्रयोग से त्वचा पर उत्पन्न श्वेत कुष्ठ के धब्बों को ब्रह्मा मंत्र प्रयोग द्वारा विनष्ट किया जाता हैंअथर्ववेद के प्रथम कांड के २३ वे सूक्त में दो प्रकार के रोगों को कहा हैं। एक शरीर के भीतरी हड्डी से सम्बंधित ब्रह्माचर्य का खण्डन व गरिष्ठ भोजन के द्वारा उत्पन्न होने वाला रोग हैं । और दूसरा बाहरी शरीर से सम्बंधित व मलिन वायु, जल व घर से उत्पन्न रोग जो त्वचा से सम्बन्धित कुष्ठ आदि रोग हैं।

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ।। (१।२३।४)

कुष्ठ रोगों की नाशक औषधि का वर्ण बताते हुए उसके शमन की कामना की जा रही है। हे औषधे! आप काले रंग वाली हो, आप त्वचा पर उत्पन्न निशानों को समान रंग में बनाने वाली हो। दैवीय शक्ति द्वारा आपको पृथ्वी पर पैदा किया गया। आप इस कुष्ठरोग से भलीभांति रोगमुक्त करके पूर्ववत् रंग वाला बना दो।

श्यामा सरूपङ्करणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ।।(अथर्ववेद १।२४।४)

अर्जुन वृक्ष की छाल- क्षेत्रीयरोगनाशन अर्थात् (वंशानुगत रोगों के निवारणार्थ) यहां अथर्ववेद के द्वितीय कांड के अष्टम सुक्त के अंतर्गत वंशानुगत रोग निवारण हेतु अर्जुन वनस्पति से कामना की गई है कि यह औषधि (अर्जुन की लकड़ी) हमें क्षेत्रियरोग से मुक्ति प्रदान करें। इस औषधि का प्रयोग करने का समय ब्रह्मामुहूर्त बताया है।

अपेयं रत्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः ।
विरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ।। (अथर्ववेद संहिता २।८।२।)

जिस प्रकार रात्रि चली गई उसी प्रकार वंशानुगत रोग के रोगाणु भी चले जाएं। रात्रि के समापन काल, ब्रह्म मुहूर्त में औषधि का प्रयोग करने का आभास होता है। तभी रोगी लाभान्वित होता है।

अर्थात् यह औषधि वंशानुगत रोग को विनष्ट करने में सहायक है जिस प्रकार नदी पार जाने का इच्छुक व्यक्ति एक कुशल नाविक के समीप जाता है और कुशलतापूर्वक अपने स्वदेश लौट जाता है। उसी प्रकार गुग्गुल, पिलु, नलदी, औक्षगंधी और प्रमोदिनी आदि नामक औषधियों के प्रयोग द्वारा हवन से उत्पन्न सुगंध से भयभीत होकर ये अप्सराए (जल, वायु में उत्पन्न कृमि) भी वापिस अपने निवास स्थान लौट जाती है। वह गति हीन होकर निष्प्राण से हो जाएँ एसी कामना की गई है ।

अजश्रृंगी वनस्पति- कृमियों के शमन हेतु ।अजश्रृंगी औषधि का प्रयोग वायु व जल द्वारा फैलने वाले रोगाणुओं के उपचार हेतु अजश्रृंगी (जिसे काकडासिगी भी कहते हैं) नामक औषधि का प्रयोग करने की बात कही है। क्योंकि जल में ही मलेरिया जैसे रोग फैलते हैं उन्हें अपरस् भी कहते हैं।

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वाश्चातयामहे ।
अजशृङ्गयज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ।। (अथर्ववेद ४ । ३७ । २)

यहाँ कामना की गयी है कि हे अजश्रृंगी औषधे, आपके द्वारा हम उपद्रव करने वाले (रोगों का उत्पन्न करने वाली कृमि) गन्धर्वो और अप्सराओं (वायवीय व जलीय उत्पन्न कृमि) वाले कृमियों को नष्ट करते हैं। आपके प्रयोग द्वारा उत्पन्न गंध से हम अपने आस-पास रोग उत्पन्न करने वाले राक्षसों को दूर भगाने में समर्थ होते हैं।कृमियों के वापिस इनके निवास स्थान लौटने की कामना की गयी है कि वह अपने निवास स्थान- पीपल, वट, षिलखन, हरे-भरे अर्जुन वृक्ष तथा श्यामल वृक्ष, कर्करी वृक्षों वाली जगह चले जाएँ, उनके द्वारा हमें न सताया जाएँ।जीवनदायिनी वनस्पति पीपल- वेदों में पीपल वृक्ष को देव तुल्य कहकर उसको पूज्यनीय कहा गया है उसे न काटने की कामना की गई है।

क्योंकि पीपल वृक्ष हमे जीवन देने वाला है. वह सर्वाधिक ऑक्सीजन छोड़ने वाला वृक्ष है या पर्यावरण शुद्धि में सहायक है तथा रोगाणुओं को नष्ट करता है। पीपल को शुचिद्रम भी कहते हैं। पीपल वृक्ष के नीचे ही भगवान बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था। इन वृक्षों की लंबाई ६० से ८० फिट होती है। इसके अलावा नीम वृक्ष जो उनके औषधीय गुणों से पूर्ण हैं। जो पर्यावरण की शुद्धि में सहायक है। यह भी सर्वाधिक ऑक्सीजन देने वाला तथा प्रदूषित वायु- कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर और नाइट्रोजन को ग्रहण करने वाला है. बरगद पेड़ जो हिंदू धर्म के पवित्र माना जाता है। अर्जुन वृक्ष, अशोक वृक्ष आदि अनेक पर्यावरण शुद्धि में अपनी भूमिका निभाते हैं। वेदों में इसलिए बारम्बर वृक्षों को लगाने की कामना की गयी हैरोहिणी वनस्पति - यह टूटे अंगों को जोड़ने तथा जले- कटे घावों को भरने में प्रयोग। वैद्यक ग्रंथों में इसे रोहिणी वनस्पति को वीरवति, चर्मकषा, मांसरोही प्रदारवल्ली आदि नाम कहे हैं। यह औषधि अस्थि भंग, व घावों को ठीक करने में सहायक है। यहां इसके उपचारात्मक विशेषता को कहा है।पूर्व में युद्ध में घायल हुए सैनिकों, व्यक्तियों के घावों को ठीक करने के लिए इसका प्रयोग की बताया गया हैं। इसको पीसकर पेस्ट बनाकर घाव पर प्रयोग किया जाता था।

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्टूं त आत्मनि ।
धाता तद भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ।। (अथर्ववेद ४ । ९२ । २ ।)

यह रोहिणी वनस्पति लाल वर्ण की होती है। जो टूटी हड्डियों को पूर्णता प्रदान कर सुख प्रदान करने वाली है। अंग छिद्र, मज्जा, मांस, चर्म के घावों को मिलाकर उसे ठीक कर, रुधिर व हड्डी को सुदृढ़ अंग करने वाली है। हे! अरुन्धती, रक्त वर्णा औषधि! हमसे उपचार करने में कोई बाधा ना आए आप इस घांव को शीघ्र ही ठीक करने वाली सिद्ध हो।

"रोहण्यसि रोहण्यस्थनश्छिन्नस्य रोहणी। रोहयेदमरुन्धति ॥
(अथर्ववेद ४ ।१२ । १)

मधुक औषधि- विष भेषज्य हेतु प्रयोग।मधुक ओषधि का प्रयोग बिच्छू, मच्छर, सर्प, वृच्छिक्षक, आदि अन्य विषधारी व रेंगने वाले कीड़ों के द्वारा प्राणी को काटने पर उसके विष को शांत करने हेतु प्रयोग किया जाता है।

तिरच्छिराजेरसितात् प्रदाकोः परि संभ्रतम् ।
तत् कड़क्पर्वणो विषमियं वीरूदनीनशत् ।। (अथर्ववेद ७।५६।१)

अर्थात् तिरछी रेखा वाले, काले व फूंकार मारने वाले सर्प के विष तथा कंकपर्वा नमक प्राणी के विष को यह 'मधुक' नमक औषधि नष्ट करने में सहायक हैं। यह मधुक नामक औषधि मधु से उत्पन्न होने के कारण यह मानव शरीर में काटे जाने पर शरीर में मधुर रस को बढ़ाकर विष को शांत करने में समर्थ होती है।

इयं विरुन्ममधुजाता मधुचक्षन्मधुला मधुः ।
सा विद्युतस्य भेषज्यथो मशकजम्भानी ।। (अथर्ववेद ७।५६।२)

काटे जेने के उपरांत विष के प्रभाव से रोगी के शरीर में उत्पन्न लक्षणों को बताया जा रहा है। विष के प्रभाव से रोगी के अंग सिकुड़ने लगते हैं, शिथिल संधियों वाला होकर वह मुंह टेढ़ा-मेढ़ा करने लगता हैं. तब रोगी को यह औषधि देकर स्वस्थ किया जाता है। यह रोगी के काटे जाने के उपरांत लक्षण टिटनेस जैसे कहे गए हैं ।तथा इनके शांति के उपचारों का संकेत भी यहाँ प्राप्त होता है-

अयं यो वक्रो विपरुव्यडगो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्राहाणस्पत इषीकामिव सं नमः ।। (अथर्ववेद ७।५६।४)

अथर्ववेद की चतुर्थ कांड ३७ सूक्त के में अनेक वनस्पतियों औषधियों का वर्णन किया गया है। इस अजश्रृंगी, गुग्गुल (गूगल), पीला पिलु, नलद-नलदी, जटामाँसी या मांसी, औक्षगंधी, प्रमोदिनी, धर्वड, गंधमासी औषधियों का प्रयोग बताया गया है। इनका प्रयोग से जल, वायु, नदियों में फैलने वाले कृमियों को नष्ट किया जाता है. इनकी सुगंध वातावरण में मौजूद कृमियों को विनष्ट करने में सहायक है।

नेर्दी यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् । गुल्गुलूः पीला नलद्यौअक्षगन्धिः
प्रमन्दनी ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ।। (अथर्ववेद ४।३७।३)

ऋग्वेद में भी अनके वनस्पतियाँ वर्णित है जिनसे रोगों के शमन हेतु प्रार्थना की गई है। यज्ञ प्रयोजन हेतु इन्हें काटा जाता है उनके लिए सौभाग्य की बात कहा हैं। परंतु वह पुनः सैकड़ों शाखाओं, अंकुरों से युक्त होकर स्वयं का संवर्धन करे एसी कामना की है। हे वनस्पते! आप सैकड़ों शाखाओं से युक्त होकर अपनी वृद्धि करो। हमारे द्वारा आपको जिस प्रयोजन हेतु काटा गया है वह हमारे रत्न प्राप्ति हेतु कल्याणकारी सिद्ध हो। तथा आप भी पुनः अपना संवर्धन करने वाले हो।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्त्रवल्शा वि वयं रूहेम ।
यं त्वामयं स्वाधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ।। (ऋग्वेद ३।८।११)

ऋग्वेद के 10 वे मंडल के ९७ सूक्त के अंतर्गत वेदों से दिव्य औषधियों के गुणों को माता के समान पालन करने वाली कहा है।माता कहने से आशय हैं की जैसे माता द्वारा बच्चों का पालन-पोषण किया जाता है। वैसे ही औषधिया भी मातृस सृष्टि का पालन-पोषण करती है। माता जिस प्रकार से अपने दुग्ध से शिशु के शरीर को पोषित करती है उसी प्रकार वनस्पतियां, औषधियां मानव के शरीर के निर्माण में स्वयं की अहम भूमिका निभाती है। हमें इनका उपभोग स्वयं को समर्पित करते हुए करनी चाहिए। ये हमें, गौ, अश्व रत्न प्रदान करने वाली है. अतः वनस्पतियों की सेवा करना वेदों में धर्म कहा है।

औषधीरिति मातरस्तद्वों देवीरूप ब्रुवे ।
सनेयमक्ष्वं वास आत्मानं तव पूरुष ॥ (ऋग्वेद १०।९७।४)

औषधियों के द्वारा ही रोगों से क्षीण हुआ व्यक्ति शतायु को प्राप्त करता है। औषधियों को हजारों नेत्रों वाली (सहस्त्रक्षेण शतायुषा) होकर हजारों पुरुषों का ध्यान रखने वाली कहा है। अतः औषधियों के द्वारा ही रोगों से क्षीण हुआ तथा मृत्यु शय्या के निकट पहुँचा व्यक्ति रोग मुक्त हो कर निरोगी शतायु बलयुक्त होता हैं।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरूपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ।। (ऋग्वेद १०।१६१।२)

ऋग्वेद के 10 मंडल १६२ में सूक्त के अंतर्गत औषधीयों, वनस्पतियों से कामना की गयी है कि हे! ओषधे आप ही गर्भास्थ मांस को क्षीण करने वाले कृमियों को दूर करने में समर्थ है। आप ही स्त्री के गर्भास्थ रोगों को तथा भयवह अशुभ नाम वाला अर्शस् (बवासीर) जैसा रोगों को उत्पन्न करने वाले कृमियों का नाश कर निरोगी बनाने में सहायक है। आप कुशल वैद्य रूप में समस्त रोगों को उखाड़ फेंकने में समर्थ्य रखती हैं।

ब्रह्मणाअग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णागा योनिमाशये ।। (ऋ० १०।१६२।१)

आयुर्वेद के १२ वे अध्याय के ७६ सूक्त के अंतर्गत औषधीय वनस्पतियों को मात्र तुल्य हितकारणी कहा है। वह माता के समान पालन करने वाली है। इनमें कुछ औषधि पर्वत मूल पर, कोई मध्य भाग, कोई पर्वतशिखर पर और कुछ समुद्रतट पर प्राप्य होती है। यह औषधि अत्यंत तेज व दिव्य शक्तियों को स्वयं में समेटे हुए हैं। जिससे यह उत्तमकर्मों को करने वाली होकर रोगी को रोगमुक्त करती है।

शतं वौऽअम्ब धामानि सहस्त्रमुत वो रूहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत ।। (यजुर्वेद १२।७६) ।

यह औषधियों को उत्पन्न करने वाली ऋतुओं का वर्णन है. क्योंकि भिन्न -भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न औषधियों को उत्पन्न किया जाता है। ऋतु तीन- बसंत ऋतु, ग्रीष्म वर्षा ऋतु, शरद ऋतु है। जिसके अंतर्गत बसंत ऋतु के आने से पूर्व में ही कफनाशक औषधि, वर्षा ऋतु में वातविकारों से संबंधित और शरद ऋतु आने से पूर्व पित्त विकार दोष से संबंधित औषधि पूर्ववत् लेने से हम सभी रोगों से दूर रहकर निरोगी व स्वस्थ रहते हैं। इन औषधि प्रयोग बालक, वृद्ध, युवक की आयु अनुसार व अंगों के अनुसार सम्यक् प्रकार से देना ही श्रेयकर व लाभकारी होता है।

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रुणामहम् शतं धामानि सप्त च ॥ (यजुर्वेद १२।७५)

आयुर्वेद के प्रस्तुत मंत्र के अंतर्गत औषधीय गुणों को बताया है कि वह अश्व के सामान संग्राम क्षेत्र में विजयी होने वाले अश्व की तरह है। औषधि पुष्पवती व अपुष्पा, फलवती व अफला चार प्रकार की होती है ।कहा जाता है कि इन प्रशस्त फुलोवाली व फलोवाली औषधियों का सम्यक प्रयोग रोगी को भी (हृष्ट-पुष्ट) कर देनी वाली है। उत्तम औषधियां विजयशीला अश्व कि भांति रोगों पर विजय प्राप्त करने वाली होती है।

औषधीः प्रतिगोदश्वं पुष्यवतीः प्रसूवरीः।
अश्वाऽइव सजित्वरीव्रीरूधः पारयिष्णतः ॥ (यजुर्वेद १२।७७) ॥

यजुर्वेद में औषधियों की शक्ति को बताते हुए कहा है कि यह वनस्पतिय औषधि मनुष्य के पैत्तिक विकारों को दूर कर उसे स्वस्थ्य बनाती है। यह रोगी के रोगों पर उसी प्रकार आक्रमण करती है जिस प्रकार कोई चोर गौओं के समूह से गौ को चुरा ले जाता है। यह जल विकार से उत्पन्न कफ, वायुविकार से खांसी, जुकाम गठिया अंग गृह क्षय रोग व पित्त विकार से उत्पन्न उच्च रक्तचाप आदि रोगों से यह चारों प्रकार की औषधि रोगों उखाड़ फेंकती है। अतः यह औषधीया शरीर में प्रवेश करने वाली रोगों ज्वार, अतिसार, रक्त चाप व अन्य पाप रूपी रोगों को गौ के मालिक द्वारा भनाए गए चोरों की भांति ही रोगों पर आक्रमण कर उन्हें दूर भगाकर निरोगी बनाती हैं।

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनऽइव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः॥ (यजुर्वेद१२।८४)

यजुर्वेद के षोडशोऽध्याय के अंतर्गत प्रकृति की उन सभी वस्तुओं को नतमस्तक हो नतमस्तक किया गया है जो राष्ट्रहित, प्रजाहित से अपनासर्वस्व देती है। वृक्षों को व्यर्थ में न काटने पर बल दिया है। हरित वर्णा पत्ते रूपी केशो वाली सूर्य की किरणों को धारण करने वाले वृक्षों वनस्पतियों, औषधियों आपको नमस्कार है। आप राष्ट्रहित, प्रजाहित में अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं हम भी आपका पूरा ध्यान रखने वाले हो। हम ध्यान रखेंगे कि आपकी राष्ट्र में वृक्षों, वनस्पतियों की कमी ना हो व्यर्थ में आपका दोहन ना हो। "पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः" क्योंकि आप ही मनुष्य को बल, वीर्य, शौर्य, शक्ति प्रदान कर रोगों से दूर रख स्वस्थ जीवन प्रदान करती है. हम नमस्कार करते हैं जो अन्न का रक्षक है. पशुओं का रक्षक है। जंगल व वनों की रक्ष करने वाले हैं हम आपको नमस्कार करते हैं "अन्नानां पतये नमो नमो" । जिस अन्न के उपभोग द्वारा मानव स्वस्थ रहता है बल प्राप्त करता है उस अन्न के रक्षक को मेरा नमस्कार है जो सभी कष्टों को सहकर इनकी रक्षा करता है।वेदों में अनेक प्रकार की वनस्पतियों औषधियों का वर्णन किया गया हैं। वेदों में इनके संरक्षण की कामना की गई हैं। जिससे हम इनके उपयोग द्वारा लाभान्वित होते रहे। अतः मनुष्य को वृक्षों, वनस्पतियों के प्रति रक्षित होना चाहिए। क्योंकि मानव कल्याण दान पूर्वक उपभोग करने में है ना कि वासनापूर्वक स्वार्थपूर्ण दोहन में है। अतः लोकत्रयी शांति की कामना वेदों में प्राप्त होती है।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वंम शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ (यजुर्वेद३६।१७)

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संपादक पुस्तक प्रकाशन पृष्ठ स०
1)डॉ० आर खन्ना औषधीय पादप संरक्षण, संवर्धन एवं उपयोगिता दया पब्लिशिंग हाउस दिल्ली-२००७ पृ० २२१
2)डॉ० विजय एस० वैदिक संस्कृति और सोजित्रा पर्यावरण संरक्षण पैराडाईज पब्लिशर्स पृ० २०२, २०४, २०६
3)डॉ० आभा कुलश्रेष्ठ संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण ईस्टर्न बुक लिकर्स दिल्ली
4)अथर्ववेद संहिता
5)ऋग्वेद संहिता
6)यजुर्वेद संहिता

भारत में समावेशी शिक्षा और उसकी उपादेयता: एक शैक्षिक अध्ययन

डॉ.राजकुमारी गोला
सहायक आचार्य
शिक्षा विभाग आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

इतिहास मे हमे विभिन्न विशिष्टाओ वाले व्यक्ति देखने को मिलते है। जैसे-महान कवि सूरदास जन्मान्धे थे। अमेरिकी राष्ट्पति रूजवेल्ट स्वय पोलियो के शिकार थे। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमे देखने को मिलते है। इस प्रकार के लोगो को विशिष्टता की श्रेणी मे रखा गया हैं। ऐसे बालको को विशिष्ट प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है। शिक्षा प्राप्त करना सबका जन्म सिद्ध अधिकार है। शिक्षा मनुष्य के समुचित विकास मे अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। इसके द्वारा बालक की अर्न्तनिहित शक्तियो को बहार निकाला जाता है। विशिष्टता शारीरिक, मानसिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। विशिष्ट बालक अपने आपको सामान्य बालको से भिन्न रखते है। अतः इन बच्चो की देख भाल करना तथा इनकी शिक्षा का प्रवन्ध करना, शैक्षिक अवसरो की समानता, सामाजिक न्याय एवं राष्ट्य विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गई, क्यो की विशिष्ट बालक सामान्य बालको से अलग होते है। लेकिन मनोवैज्ञानिको ने महसूस किया कि इससे बालको मे हीन भावना का विकास हो रहा है। इसलिए विशिष्ट व सामान्य बच्चो के लिए एक अलग शिक्षा अर्थात समावेशी शिक्षा को अपनाया गया। यह शिक्षा सामान्य व विशिष्ट बच्चो को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करती है। समावेशी शिक्षा तो विशिष्ट शिक्षा का पूरक है। कम शारीरिक रूप से बाधित बालको को समावेशी शिक्षा संस्थान मे प्रवेश कराया जा सकता है। देश पर बोझ माने जाने वाले विकलांग व्यक्तियो को आज समाज मे शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर न समझकर उपयोगी व्यक्ति समझा जाने लगा है। प्राचीन सभ्यता पर नजर डाले तो पाते है कि या तो शारीरिक रूप से बाधित बालको की हत्या कर दी जाती थी या उन्हे समाज कलंक की नजरो से या दयालुता की नजर से देखता था उन्हे बोझ समझा जाता था। आज कोई ऐसा कार्य नही जहाँ किसी न किसी विकलांग विभूति ने अपने असाधारण कृतित्व मे अमिट छाप न छोडी हो। अमेरिकी राष्ट्पति रूजवेल्ट, पोलियोग्रस्त क्रिकेटर चन्द्रशेखर, श्रवणहीन वैज्ञानिक थॉमस एडीसन, अस्थि विकलांग स्टीफन हाकिन्स एवं नकली टॉगो के सहारे विमान चलाने वाले पायलट मरैस्येव आदि इसके उदाहरण है। बीजिंग ओलाम्पिक के पैरालंपिक गेम्स मे (विकलागो से सम्बन्धित) दर्शको की बढती संख्या से जाहिर होता है कि विश्व समुदाय की विकलांग के बारे मे धारणा बदली है। विकलांग बालक आवश्यकता की पूर्ति चाहता है तथा इन आवश्यकताओ की पूर्ति न होने पर उसमे निराशा, कुण्ठा व असन्तोष की भावना उत्पन्न हो जाती है। अतः ऐसे बालको को समाज मे उचित स्थान दिलाने के लिए, समाज के अनुकूल बनाने के लिए विशेष प्रकार की सुविधाओ की आवश्यकता होती है। विकलांग बच्चे शिक्षा मे सबसे समूहो मे से एक है। जहाँ तक हो सके प्रत्येक बच्चे की व्यक्तिगत विशेषताओ की परवाह किये बिना प्रत्येक स्थानीय स्कूल में सिखाने की व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे बच्चां को विकलांगता से 'अलग' एवं 'एकीकृत' दृष्टिकोण से बचाना चाहिए।

समावेशी शिक्षा का अर्थ:- समावेशी शिक्षा वह शिक्षा है, जिसके द्वारा विशिष्ट क्षमता वाले बालक जैसे मन्द बुद्वि, अन्धे, बहरे बालक एवं प्रतिभाशली बालकों को शिक्षा दी जाती हैं अर्थात सामवेशी शिक्षा वह होती है जिसके द्वारा सभी बच्चे चाहे वे किसी भी प्रकार के हो एक ही स्कूल में एक साथ सीखते है। यह सभी शिक्षार्थियां तक पहुचने वाली शिक्षा की बाधाओं को दर करने के लिए उपयोगी है, जो कि

सभी बच्चों की भगीदारी और उपलब्धि को सीमित करता है। यह सभी बच्चों और युवाओं की विभिन्न आवश्यकताओं, क्षमताओं और विशेषताआं का सम्मान करती है, यह सभी प्रकार के भेद भावों से मुक्त है। समावेशी शिक्षा व्यवस्था समाज को अधिक समावेशी बना सकती है। समावेशी शिक्षा सर्वप्रथम छात्रों के बौद्विक एवं शैक्षिक स्तर की जॉच करती है, तत्पश्चात उन्हें दी जाने वाली शिक्षा का स्तर निर्धारित किया जाता है। अतः यह एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था है, जो कि विशिष्ट क्षमता वाले बालकां हेतु निर्धारित की जाती है। अर्थात ''समावेशी शिक्षा को एक आधुनिक सोच की तरह परिभाषित किया जा सकता है, जो कि शिक्षा को अपने में सिमटे हुए दृष्टिकोण से मुक्त करती है और उसे ऊपर उठने के लिए प्रोत्साहित करती है। ''समावेशी शिक्षा अधिगम के ही नही, बल्कि विशिष्ट अधिगम के नये आयाम खोलती है।'' यह भी पाया गया है कि कुछ शिक्षाविद् विशिष्ट शिक्षा के पक्षधर नही है। उनके अनुसार यह शिक्षा के अवसरों के समान नहीं तथा बालकों के विचारो में भिन्नता पैदा होती है। सामान्य कक्षाए्ं अपंग बालकों में हीन भावना उत्पन्न करती है। कुछ समय पहले, मनोवैज्ञानिको ने विचार दिया कि समावेशी शिक्षा हमारे सामान्य विद्यालयों में दी जाये, जिससे सभी बालकों को शिक्षा के समान अवसर मिलें। विकलांग बच्चे शिक्षा से सबसे बहिष्कृत समूहां मे से एक है। विश्व स्वास्थय संगठन के अनुसार विश्व भर में लगभग 150 मिलियन बच्चें विकलांग है। विकलांग बच्चों को उनकी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था या प्रणाली में कैसे शामिल किया जाए। यह एक महत्वपूर्ण विचार है। उपयुक्त शिक्षण सामग्री की कमी के कारण स्कूल में उनकी पहु्ंच और सीखने में मुश्किल हो जाती हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सभी बच्चों का एक मौलिक अधिकार हैं। विकलांग बच्चों कोई समस्या नही है वरन यह विश्व शांति का निर्माण करने और सतत् विकास को बढावा देने का आधार भी है। सतत् विकास, किसी को पीछे छांडने पर अपना ध्यान केन्द्रित करने के साथ, अपनी शिक्षा व्यवस्थाओं या प्रणालीयों को अधिक समावेशी और न्याय सगंत बनाने के लिए अवसर प्रदान करता है। समावेशी शिक्षा सभी विकलांग बच्चां को फलने-फूलने में मदद करती है। यह समाज में एक महत्वपूर्ण और सक्रिय भूमिका निभा सकती है। समावेशी शिक्षा विविधता एवं गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रित करने और बच्चां की विभिन्न आवश्यकताओं के प्रति इसकी जबाबदेही के साथ सभी शिक्षार्थियों के लिए लाभोपयोगी है।

समावेशन शब्द का अपने आप में कुछ खास अर्थ नहीं होता है। समावेशन के चारों ओर जो वैचारिक, दार्शनिक, सामाजिक और शैक्षिक ढांचा होता है वही समावेशन को परिभाषित करता है। समावेशन की प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतंत्र में भागीदारी के लिए सक्षम बनाया जा सकता है, बल्कि यह सीखने एवं विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है कि लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अंतर्क्रिया करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। (एन.एफ.सी.2005, पृष्ठ 96) यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा कार्य बहुआयामीय, वैश्विक, राष्ट्रीय तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के चक्के का हाथ लगाना है। रिपोर्ट 2001 के पृष्ठ क्रमांक 2 में कहा गया है ''विश्व के विकास की कार्य सूची में सभी विषयों जैसे निर्धनता उन्मूलन, स्वास्थ्य संरक्षण, तकनीकी जानकारी का आदान प्रदान, पर्यावरण का रक्षण, लिंगभेद समापन, प्रजातान्त्रिक प्रणाली को सुदृढ़ करना तथा शासन प्रशासन में सुधार सबके लिए न्याय सुलभता, शिक्षा के माध्यम से इन सभी विषयों को एकात्मक भाव से देखा जाना चाहिए।

भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्त मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है। हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आय एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है। लोकतांत्रिक की स्थापना के लिए हमारे संवैधानिक मूल्य स्पष्ट रूप से दिशा निर्देशन प्रदान करते हैं और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में बच्चे को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखें जाने के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है, जिससे लोकतांत्रिक समाज में बच्चें के समुचित समावेशन हेतु वातावरण का सृजन किया जा सके। समावेशन की ठोस प्रक्रिया प्रतीकात्मक लोकतंत्र में भागीदारी आधारित लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त करती है।

समावेशी शिक्षा की आवश्यकता:-समावेशी शिक्षा का आशय विकलांग विद्यार्थियों (जिन्हें आजकल विशेष आवश्यकताओं वाले विद्यार्थी कहा जाता है) को सामान्य बच्चों के साथ बिठाकर सामान्य रूप से पढ़ाना है, ताकि सामान्य बच्चों और विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों में कोई भेदभाव न रहे तथा दोनों तरह के विद्यार्थीयों एक-दसूरे को ठीक ढ़ंग से समझते हुए आपसी सहयोग से पठन-पाठन के कीर्य को कर सकें। समावेशी शिक्षा का एक व्यापक लक्ष्य यह भी प्रतीत होता है कि एक साथ शिक्षित होने पर भविष्य में समाज के अन्दर विशिष्ट आवश्यकता वाले व्यक्तियो के सरोकारों को आम लोग बेहतर ढंग से समझ सकें तथा उनमें उनके प्रति अपेक्षित संवेदनशीलता का विकास हो सके। समावेशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने का अपना एक राजनीतिक अर्थशास्त्र भी है जो भू-मण्डलीकरण या उदारीकरण की प्रक्रियाओं से प्रेरित है। यह राजनीतिक अर्थशास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि सरकार को जनकल्याण, सामाजिक तथा गैर-उत्पादक कार्यों पर कम से कम खर्च करना चाहिए। विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए विशेष विद्यालय चलाना महँगा सौदा है (वो भी विकलांगों की कम से कम पाँच श्रेणियों के लिए) इसलिए समावेशी शिक्षा की अवधारणा को प्रोत्साहित किया जा रहा है। समावेशी शिक्षा को जमीनी स्तर पर लागू करने के लिए देश के विभिन्न राज्यो के विकलांगों की मुख्य श्रेणियाँ-दृष्टिबाधित, अस्थिबाधित, मूक-बधिर, मन्दबुद्धि तथा स्वलीनता से ग्रसित लोगों को पढ़ाने के लिए अलग-अलग नामो से अंशकालीन शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ रखे जाते हैं। इन्हें अधिकतर राज्यों में न्यनतम मजदूरी से भी कम वेतन तथा अपर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाता है। चूँकि समावेशी शिक्षा भू-मण्डलीकरण की देन है, इसलिए इसे अन्तर्राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का भी व्यापक समर्थन हासिल है। इस समर्थन की भी अपनी राजनीति, गणित और विज्ञान है। विकलांगों के विषयों में कार्यरत विभिन्न जन-संगठनों तथा समाजसेवी संस्थाओं की भी अपनी राजनीति है। किसी भी योजना से सबसे अधिक लाभ प्राप्त करने वाले अस्थिबाधित लोगों तथा मूकबधिर लोगों से जुड़े अत्यधिक संगठन समावेशन के नाम पर समावेशी योजनाओं के लाभो से अपेक्षाकृत वंचित लोगों, खासतौर पर दृष्टिबाधित लोगों के अधिकतर संगठन इसका विरोध करते हैं। इस तरह समावेशी शिक्षा के समूचे माड्ल में शिक्षा की पहुँच तथा शिक्षा की गुणवत्ता दोनों ही गम्भीर प्रश्नों के घेरे में हैं। इसके लिए चलाऊ नीतियाँ तथा तत्कालिक मसलों की क्षणिक रूप से हल कर लेने की प्रवृतियां काफी हद तक जिम्मेदार हैं।विशेष बच्चों की शिक्षा के लिए भारत में पिछले तीन दशकों में विश्वव्यापी स्तर पर आमुलचूल सुधार पर प्रतिक्रिया दी है और विशेष बच्चों की आवश्यकता को समुचित और व्यावहारिक रूप से पूरा करने के लिए अनेक नीतियाँ, कार्यक्रमों और कानूनो को लागू किया गया है। हालांकि 0-6 वर्ष की 15 करोड़ 87 लाख की जनसंख्या के साथ यह कार्य किसी भी आकार और क्षमता की सरकार के लिए समुचित सेवाएँ प्रदान करने के लिए पिछले तीन दशको से सतत प्रयास कर रहा है। हालांकि विविधता के संदर्भ में सरकार की प्रतिबद्धता के मूल को समेकित बाल विकास सेवा (आई0सी0डी0एस0) योजना में खोजा जा सकता है, जो देश के चयनित 33 सामदायिक खंडों में 1975 में लागू की गई थी। इस शीर्ष कार्यक्रम की अब देश के सभी 36 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों की 5,659 स्वीकृत परियोजनाओं और 7,48,059 आंगवाड़ी केन्द्रों तक विस्तारित कर दिया गया है। हालांकि यह परिवर्तन रातों-रात नहीं आया। इसमे नीति निर्माताओं, प्रशासकों, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं, शिक्षकों

अभिभावकों और शोधकर्ताओं सहित सभी हितधारकों की कड़ी मेहनत, दृढ़-संकल्प और निष्ठा की आवश्यकता थी। भारत में नीति निर्माताओं को सभी छात्रों के लिए अधिक न्यायसंगत शैक्षिक अवसरों को प्रोत्साहन देने वाले कानूनों, नीतियों और कार्यक्रमों जैसे-विकलांगता अधिनियम 1995, एस0एस0ए0 2001 और संयुक्त राष्ट्र द्वारा किए गए कार्यक्रम (उदाहरण के लिए यूनेस्को, 2000) से चुनौती मिली। अभिभावक समूह बहुत ज्यादा मुखर हो गए और उन्होंने अपने बच्चों के लिए समान अवसरों की मांग करते हुए अपने अधिकारों पर जोर दिया। प्रशासकों, शिक्षकों और शोधकर्ताओं ने अन्य देशों में शिक्षण के बेहतर समावेशी माडल का अवलोकन किया और अपनी शैक्षिक संस्थापनाओं में इन माडलों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया। पिछले तीन दशकों में इस दिशा में धीरे-धीरे बहुत प्रगति हुई है और इसने लाखों छात्र-छात्राओं को लाभान्वित किया है। हालाँकि भारत में विकलांगता से ग्रस्त लगभग 3 करोड़ बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए अभी और भी कार्य किये जाने की आवश्यकता है।

समावेशी शिक्षा हेतु रणनीतियाँ:-

परिवार:- बच्चों के समाजीकरण में परिवार की अहम भूमिका होती है। परिवार में बच्चों के समाजीकरण की उचित प्रक्रिया समावेशन हेतु आधार भूमि तैयार करती है। इसलिए जरूरी है कि अक्षम बालक की स्वीकृति सबसे पहले अपने परिवार में हो यह अति महत्वपूर्ण बात है क्योंकि अक्षम बालक को अपना परिवार खुशीपूर्वक स्वीकार कर लिया है तो वह सारा संसार जीतने की क्षमता रखता है एक सामान्य बालक की तरह ही।

समाज:- अक्षम बालक की समाज भी सहर्ष स्वीकार करें जिससे की अक्षम बालक में हीन भावना उसके अंदर न प्रवेश कर जाए और वह जो समाज को अपने कार्य से बहुत कुछ दे सकता था वो अब हीन भावना के कारण नहीं दे पाया इसलिए समाज सभी अक्षम बालक को सहर्ष स्वीकार कर उसका मनोबल बढ़ाए एक सामान्य बालक की ही तरह जिससे की वो अपने जीवन में एक नई ऊँचाई प्राप्त कर समाज को भी गौरांवित करें।

विद्यालय:- अक्षम बालक के लिए विद्यालय भी सौहाद्रपूर्ण व्यवहार कर उसका नामांकन करें अपने विद्यालय में जिससे की अक्षम बालक के अंदर सक्षम बालक के लिए ही भाव न पैदा हो इसलिए विद्यालय प्रबंधन की ये जिम्मेदारी है कि जिस प्रकार से आप सामान्य (सक्षम) बालक का अपने विद्यालय में नामांकन लेते हैं। ठीक उसी प्रकार से आप अक्षम बालक का अपने विद्यालय में नामांकन कर उसको अपने जीवन में आगे बढ़ने में मदद करें।

वातावरण:-विद्यालयी वातावरण सौहार्द्रपूर्ण हो जिससे की अक्षम बालक उस विद्यालय में नामांकन प्राप्त कर अपने आप को कुंठित न महसूस करें। अक्षम बालक विद्यालय का सौहाद्रपूर्ण वातावरण प्राप्त कर अपने आप को खुशी महसूस करें इसलिए की सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में सभी सक्षम बालक तथा शिक्षक अक्षम बालक को अपनी ज्ञान प्राप्ति में मदद करें।

पाठ्यक्रम:- पाठ्यक्रम का निर्माण भी इस प्रकार का हो सक्षम बालक के साथ-साथ अक्षम बालक भी उसी पाठ्यक्रम को पढ़कर अपना ज्ञानार्जन कर सके।

सहायक तकनीकी:-अक्षम बालक को उसके पाठ्यक्रम के अनुसार सहायक तकनीकी के माध्यम से शिक्षक पढ़ाए जिससे की अक्षम बालक उस विषय-वस्तु को आसानी पूर्वक समझ सके और अपना ज्ञानार्जन कर सके।

विशेष प्रशिक्षित शिक्षक-: क्षम बालक के अध्यापन कराने के लिए विशेष प्रशिक्षित शिक्षक का होना अति आवश्यक है। इसलिए विशेष रूप प्रशिक्षित शिक्षक ही अक्षम बाल की कठिनाईयों को अच्छी तरह से जान एवं समझ सकते हैं। इसलिए अक्षम बालक के अध्यापन कराने के लिए विशेष प्रशिक्षित शिक्षक का होना अतिआवश्यक हो जाता है।**समावेशी शिक्षा का महत्व:-**समावेशी शिक्षा प्रत्येक बच्चे के लिए उच्च और उचित उम्मीदों के साथ उसकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है।समावेशी शिक्षा अन्य छात्रों को अपनी उम्र के साथ कक्षा के जीवन में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर काम करने हेतु अभिप्रेरित करती है।समावेशी शिक्षा बच्चों को उनके शिक्षा के क्षेत्र में और उनके स्थानीय स्कूलों की गतिविधियों में उनके माता पिता को भी शामिल करने की वकालत करती हैं।समावेशी शिक्षा सम्मान और अपनेपन की संस्कृति के साथ-साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए भी अवसर प्रदान करती है। समावेशी शिक्षा अन्य बच्चे अपने स्वयं के व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ प्रत्येक का एक व्यापक विविधता के साथ दोस्तों का विकास करने की क्षमता विकसित करती है।

इस प्रकार कुल मिलाकर यह समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने की बात का समर्थन करती हैं यह सही मायने में सर्व शिक्षा जैसे शब्दों का ही रूपांतरित रूप है जिसके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों की शिक्षा, लेकिन दुर्भाग्यवश हम सब इसके विस्तृत अर्थ को पूर्ण तरीके से समझने की कौशिश न करते हुए इन समावेशी शिक्षा का अर्थ प्रमुखता से केवल विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा से ही लेने लगते हैं जो की सर्वथा ही अनुचित जान पड़ता है क्योंकि समावेशी शिक्षा का एक उद्देश्य विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा से ही हो सकता है। इसका सम्पूर्ण उद्देश्य सभी का विकास है। अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक स्कूल व सभी शिक्षा व्यवस्था में समावेशन की नीति को व्यापकता प्रदान करने की जरूरत है जिससे बच्चे, जीवन के हर क्षेत्र में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें तथा इस कार्य हेतु भारतीय संविधान, शैक्षिक कार्यक्रम व योजनाएँ, सरकारी एवं गैर सरकारी संगठन इत्यादि प्रयासरत प्रतिबिम्बित होती है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने वर्ष 2020 तक देश के सभी स्कूलों को (अक्षम एवं विकलांग बालकों के लिए विस्तृत योजना के निर्माण की घोषणा करते हुए) अक्षम मित्र बनाने की बात कही है।

निष्कर्ष:-

उपरोक्त अध्ययनोपरांत प्रस्तुत प्रपत्र से यह सार निरूपण होता है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा तथा समाज में अन्योन्याश्रित संबंध को दर्शाता है जिसके फलस्वरूप शैक्षिक वर्तमान परिदृश्य उतरोत्तर वृद्धि की ओर अग्रसर है तथा इस वृद्धि को सुचारू रूप से व्यवस्थित करने में समावेशी शिक्षा, अध्यापक शिक्षा हेतु एक एक ज़रूरी पहल है। समावेशी शिक्षा, अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत एक अध्यापक को कुछ अतिरिक्त कौशल सीखने के अवसर प्रदान करते हैं ताकि वह विशिष्ट विद्यार्थियों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार अपने आपको तैयार कर सकें। यहाँ केवल इतना कहना समीचीनी होगा कि प्रस्तुत प्रपत्र दोनों तरह की शिक्षा व्यवस्था के समावेशन पर बल देती है। यथा- सामान्य शिक्षा व विशिष्ट शिक्षा अर्थात सभी के लिए उपयोगी हो। इसके लिए प्राचीन धर्म ग्रंथ की पंक्ति- ''सर्वे भवन्तु सुखीन:' में भी सबको साथ लेकर चलने का भाव निहित है। तथा इन्हीं पंक्तियों को चरितार्थ करते हुए वर्तमान अध्यापक शिक्षा क्षेत्र में समावेशी शिक्षा का प्रासंगिक होना अपरिहार्य है।

****

सन्दर्भ सूची-

1. दास, अजय, अन्नामारिया जेरोम तथा सुषमा शर्मा, (2015), भारत में विकलांगता से ग्रस्त छोटे बच्चे: आरंभिक बाल्यावस्था शिक्षाप्रदाताओं के लिए अनिवार्य दशताएँ, आरम्भिक वर्षो की शिक्षा में विविधता, विशेषक आवश्यकताऐं तथा समावेशन, सेज भाषा, नई दिल्ली-44, पृष्ठ संख्या 186
2. कांडपाल, केवलानंद, (2013), समावेशन: चुनौती एवं समाधान, खोजें और जानें, वर्ष -2 अंक 7, उदयपुर (राजस्थान), पृष्ठ संख्या 4
3. ठाकुर, यतेन्द्र (2017), समावेशी शिक्षा, प्रथम संस्करण, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा 02
4. राम (2014), समावेशी शिक्षा के मायने, खोजें और जानें, वर्ष-2 अंक 8, उदयपुर (राजस्थान), पृष्ठ संख्या 12
5. नारंग, डा0 सुनीता (2005), विशिष्ट शिक्षा की संकल्पना और उसका विषय क्षेत्र, कल्याणी पब्लिशर्ज, लुधियाना 48
6. शर्मा, डा0 सुषमा (2004), एकीकृत एवं समावेशी शिक्षा के प्रसार के उपाय, शिक्षक-प्रशिक्षण लेखमाला, आल इण्डिया कंफेडरेशन आफ दि ब्लाइंड, नई दिल्ली- 85, पृष्ठ सं0 49
7. 2005, एन0सी0एफ0- पृष्ठ संख्या 96

लॉकडाउन के दौर में दो प्रमुख हिंदी अखबारों की रिपोर्टिंग का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ कुंजन आचार्य,
प्रभारी विभागाध्यक्ष
पत्रकारिता एंव जनसंचार विभाग, मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

निखिल शर्मा
शोध छात्र
पत्रकारिता एंव जनसंचार विभाग, मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

परिचय:-सदी की सबसे बड़ी महामारी कोरोना ने दुनियाभर को प्रभावित किया। पूरी दुनिया के लगभग हर हिस्से पर कोरोना ने असर डाला। भारत में कोरोना ने पहली और दूसरी लहर में सबसे ज्यादा प्रभावित किया। इन दोनों लहरों में कोरोना ने देश के हर वर्ग पर असर डाला। इस दौरान कोरोना का विपरीत असर मीडिया इंडस्ट्री पर भी देखने को मिला। मीडिया इंडस्ट्री प्रभावित हुई तो इसका असर पत्रकारिता पर भी देखने को मिला। कोरोना की दोनों लहरों में लॉकडाउन के दौरान पत्रकारों को बेहद चुनौतिपूर्ण हालातों में रिपोटिंग करनी पड़ी। इसका असर अखबारों के कंटेंट पर भी देखने को मिला।

मीडिया इंडस्ट्री की बात करें तो लॉकडाउन और कोरोना का सबसे गहरा असर प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री पर देखने को मिला। हमने देखा कि कोरोना काल में अखबारों से कोरोना फैलने के भय के चलते पाठकों ने अखबार लेना बंद कर दिया। इससे अखबारों के सर्कुलेशन में काफी कमी आई। विज्ञापन बंद होने का भी विपरीत असर अखबारों की वर्किंग पर दिखा। ऐसे दौर में पाठकों तक तमाम जानकारियां पहुंचाना भी पत्रकारों के लिए एक चुनौतिपूर्ण टास्क बन गया। ऐसे हालातों में अखबारों का कंटेंट एक विचार का विषय था।

हमने 2020 और 2021 में कोरोना की पहली और दूसरी लहर में दो महीने की रिपोर्टिंग की समीक्षा की। ये वो दौर था जब राजस्थान में कोरोना अपने पीक पर था। 2020 और 2021 में अप्रैल-मई महीनों में कोरोना से जुड़ी हर अपडेट पाठकों के लिए महत्वपूर्ण हुआ करती थी। राजस्थान के दो प्रमुख अखबार दैनिक भास्कर और राजस्थान पत्रिका की इन दो महीनों की रिपोर्टस का जब हमने विष्लेषण किया तो रिपोर्टिंग से जुड़े कई पहलू सामने आए। पेश है इन रिपोर्टस से जुड़ा विश्लेषण।

कोविड-19 और रिपोर्टिंग

कोविड-19 में रिपोर्टिंग की चुनौतियां:-कंटेंट की कमी - कोरोना काल के दौरान एक सबसे बड़ी चुनौती जो पत्रकारों और अखबारों के सामने थी वो थी कंटेंट की कमी। कोरोना काल के दौरान कोविड-19 को छोड़कर मीडिया के पास ज्यादा कुछ कंटेंट नहीं था। खासतौर से पहली लहर में मीडिया का अप्रोच पूरी तरह कोविड-19 के इर्द-गिर्द ही था। इसके चलते अखबारों में 80 से 90 प्रतिशत तक खबरें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोरोना से ही जुड़ी हुई थी।

लॉकडाउन और कोविड- कोरोना काल के दौरान पत्रकारों के लिए बड़ी चुनौती बीमारी खुद और लॉकडाउन भी था। इस दौर में पत्रकारों को महामारी के साथ रहकर उससे बचाव करते हुए रिपोर्टिंग करनी पड़ी। ऐसे में पत्रकारों के सामने चुनौती थी कि किस तरह वे ग्राउंड पर जाकर खबरें जुटाए और खुद को संक्रमित होने से बचाए। खुद के संक्रमित होने के चलते उनके परिवार को भी संक्रमण होने का खतरा भी था। कई पत्रकार पहली और दूसरी लहर में संक्रमित भी हुए। ऐसे में पत्रकारों के लिए कोरोना के खतरे के साथ-साथ रिपोर्टिंग करना बड़ी चुनौती थी।

सैम्पल और वर्किंग - इस विश्लेषण के लिए हमने राजस्थान के दो प्रमुख अखबारों को चुना। इन्हें इनके सर्कुलेशन और रीडरशिप के आधार पर चुना गया। ये दोनों अखबार राजस्थान में सर्कुलेशल और रीडरशिप में प्रदेश के टॉप-2 अखबारों में शुमार किए जाते हैं। इस आधार पर दैनिक भास्कर और राजस्थान पत्रिका को लिया गया। इन अखबारों के 1 अप्रैल 2020 से 31 मई 2020 और 1 अप्रैल 2021 से 31 मई 2021 तक की प्रकाशित खबरों को चुना गया। इस दौरान दोनों अखबारों में राज्य स्तर से प्रकाशित हुई खबरों को चुना गया। इनमें फ्रंट पेज, प्रदेश पेज और प्रमुख शहरों के फ्रंट पेज पर प्रकाशित खबरों की समीक्षा की। दोनों लहरों में दो-दो महीने जब कोरोना चरम पर और लाकडाउन काफी प्रभावी था उस कालखंड की रिपोर्टिंग को बारीकी से समझा गया।

वो मुद्दे जो इस दौर में प्रमुख रहे

कोरोना की पहली लहर-कोविड-19 की पहली लहर में कोरोना सभी के लिए एक बिलकुल नया विषय था। ऐसे में मीडिया का पूरा फोकस इसे समझने और समझाने पर रहा। सबसे ज्यादा खबरें कोरोना पर ही हुई। इसके बाद जब देश में लॉकडाउन लगा तो उसपर खबरें की गई। मीडिया ने इसके अलावा लॉकडाउन को लेकर जागरुकता, कोरोना के मामले और कोरोना से होने वाली त्रासदी का कवरेज किया। इसके अलावा प्रवासी मजदूरों के घर लौटने का भी कवरेज किया गया।

कोरोना काल का कवरेज

पहली लहर : राजस्थान पत्रिका:-कोरोना संक्रमण और आंकड़े- कोरोना से जुड़े कवरेज में बीमारी से सम्बंधित हर आंकड़ा, उससे जुड़ी हर गतिविधि बताने पर मीडिया का फोकस रहा। कोरोना के आंकड़े लगातार बताए गए। कोरोना संक्रमितों के आंकड़ों को अलग ढंग से बताया गया। स्वास्थ्य पर पड़ने वाले इसके असर के अनुसार कोरोना के आंकड़ों को विभाजित कर बताया गया। दिल के मरीजों पर किस तरह कोरोना असर कर रहा है यह भी बताया गया। फेंफड़ों में संक्रमण किन कारणों से हो रहा है। मृत कोशिकाओं का क्या रोल है। इन सभी पर खबरें की गई। कोरोना संक्रमण और स्कीनिंग से जुड़े आंकड़ों में कई जिलों और प्रशासन के स्तर पर गड़बड़ियां हुई। उसे मीडिया में उजागर किया गया। ज्यादातर अप्रोच डराने वाला रहा।

लॉकडाउन और उसका असर- कोरोना संक्रमण से लड़ने में पहली लहर में भीलवाड़ा मॉडल काफी प्रच्चलित रहा था। खबरों में उसके फायदे बताए गए। ताकी राजस्थान के बाकी जिले उससे सीखकर खुद को बेहतर कर सकें। ला◌ॅकडाउन के नियमों की पालना को लेकर भी खबरें की गई। किस तरह लॉकडाउन की धज्जियां उड़ाई गई। इसपर भी काम हुआ। कोरोना और लॉकडाउान का विपरित असर किस तरह दसरी चीजों पर पड़ा। अन्य जानवर इससे कैसे प्रभावित हुए उसपर भी खबरें की गई।

कोचिंग स्टूडेंट्स देशभर से कोचिंग के लिए कोटा आते हैं। उनके घर पहुंचने से सम्बंधित कई खबरें की गई। शराब की दुकानें खुली, इसे लेकर कतारें लगी। उसे लेकर खबरें की गई। जहां सोशल डिस्टेंसिंग की धज्जियां उड़ी। वो भी दिखाया गया। प्रवासी मजदूरों का पलायन- पहली लहर में प्रवासी मजदूरों का पलायन ऐसा मसला था जिसने सबका ध्यान अपनी ओर खींचा। प्रवासी मजदूरों के पलायन को अच्छी और लाइव फोटोज के माध्यम से दर्शाया गया। पहाड़ी रास्तों को पार कर कैसे प्रवासी मजदूर अपने गांवों को पहुंच रहे हैं, ये बताया गया। मजदूरों के पास राशन की कमी है। इसे लेकर रिपोर्टिंग की गई। मजदूरों को कई जगह खाना मिलने में भी दिक्कतें आई। पलायन में श्रमिकों की दिक्कतों पर भी खबरें हु◌ुई। कोरोना के दौर में मनरेगा में होने वाले काम में कमी आई। इससे मजदूरों के रोजगार पर भी विपरीत असर पड़ा। उसे लेकर भी खबरें की गई। हजारों मजदूर कोरोना के दौर फंस गए। एक ओर जहां स्टूडेंट्स को निकालने के

लिए कई राज्य सरकारों और प्रशासन ने त्वरित व्यवस्थाएं दिखाई। वहीं मजदूरों को अपने घर पहुंचाने में वो फुर्ती नहीं दिखी। इसे लेकर भी खबरें की गई। किस तरह बसों-जीपों में भरकर, कुछ बाइक पर तो कुछ पैदल चलकर अपने-अपने गांवों को पहुंचे। मजदूरों के हालातों पर खबरें हुई। प्रवासी मजदूरों ने सड़कों पर किस तरह रातें गुजारी उसे लेकर भी खबरें की गई। राज्यों के बॉर्डर पर किस तरह हजारों प्रवासी और मजदूर अटके रहे, उसकी रिपोर्टिंग की गई। श्रमिकों का दर्द बताया गया। प्रवासी मजदूरों को अपने घर पहुंचने के लिए किस तरह की संगठित लूट का सामना करना पड़ रहा है। इसपर भी खबरें की गई। मजदूरों को किन-किन मुश्किलों का सामना कर अपने घर या गांव पहुंचना पड़ा। उन हालातों को बताने वाली खबरें और फोटोज किए गए। रेलवे स्टेशन और बस स्टैंड के हालात बताकर स्थिति दर्शाई गई। जब मजदूरों को नरेगा में काम मिला तो तपती धूप में विकट हालातों में उन्होंने किस तरह काम किया। इसपर खबरें की गई। हालांकि मजदूरों के हाल पर साधारण रिपोर्टिंग हुई। आंकड़ों के आधार पर, कितने-कहां मजदूर गए। कुछ खबरें की गई। जिनमें मजदूरों को समय पर नहीं भेजने और जब उद्योग धंधे चलाने की आवश्यक्ता पड़ी तब मजदूरों के बारे में सोचा गया। इस तरह की खबरें की गई। मजदूरों के हालातों पर खबरें तो की गई। मगर उन्हे लेकर सरकार और प्रशासन की जो लचर व्यवस्थाएं थी। उनपर बेहद मजबूती से सवाल नहीं उठाए गए। उनके हालात तो बताए गए। मगर प्रशासन को कटघरे में खड़ा नहीं किया गया। ऐसी आक्रामक खबरों की कमी रही जो प्रशासन और सरकार पर दबाव बना सकती थी। श्रमिकों पर लाठीचार्ज हुआ उसकी खबरें की गई। सिर्फ मजदूरों के आने, उनके पहुंचने की खबरें की गई। मई के महीने में लगातार प्रवासी मजदूरों, बाहर काम कर रहे कर्मचारियों, अपने घर से दूर पड़ रहे छात्रों पर खबरें की गई। विशेषतौर पर से प्रवासी मजदूर जिन्होंने अपने घरों के लिए पैदल ही पलायन किया उनके हालातों को दर्शाया गया।

मरकज रिपोर्टिंग- पहली लहर में मरकज से आए लोगों से हुए संक्रमण को लेकर रिर्पोटिंग की गई। उनसे फैले संक्रमण के बारे में रिपोर्ट की गई। जमाती लोगों से जुड़ी रिपोर्टिंग भी की गई।

पॉजिटिव स्टोरीज- कोरोना काल में जिन लोगों ने अलग-अलग ढंग से जरुरतमंद या पीड़ित लोगों की मदद की, उनकी खबरें लाई गई। पुलिस का मददगार चेहरा भी दिखाया गया। प्रशासन ने लोगों का किस तरह सहयोग किया और लोगों की मदद की इसपर भी खबरें हुई। भावुक तस्वीरें और फोटोज, इमोशनल एंगल से की गई। जवानों की स्थिति पर चर्चा की गई। मरीजों की रिकवरी पर भी खबरें की गई।

पहली लहर : दैनिक भास्कर

कोरोना और उसका खतरा -दैनिक भास्कर ने कोरोना का खतरा उजागर करने सम्बंधी कई खबरें प्रकाशित की। इनमें आखों-देखी, रियल इंटरव्यूज के माध्यम से यह बताया गया कि कोरोना कितना खतरनाक है। यह मैसेज देने की कोशिश की गई कि अगर ध्यान नहीं दिया गया तो यह कितना नुकसानदायक हो सकता है। कर्फ्यू सहित तमाम तरह की सख्ती को लेकर ताकतवर खबरें की गई। सरकार और प्रशासन को मैसेज दिए गए कि जरूरी कदम उठाए जाएं। रात में भी ग्राउंड रिपोर्टस की गई। बताया गया कि रात में सख्ती नहीं है ,जिससे लोग एक से दूसरी जगह जा रहे हैं। लोगों की लापरवाही को लेकर मजबूती से खबरें की गई। बताया गया कि किस तरह कुछ लोगों की लापरवाही से पूरी सोसायटी को खतरा हो सकता है। लोगों को सतर्क करने के लिए मास्ट हैड लगाकर कोरोना से बचाव और मास्क के प्रयोग को लेकर अपील की गई। प्रोग्रेसिव माइंडसेट के साथ भीड़ ना जुटाने और घर में रहने को ही सबसे बड़ा धर्म बताया गया। अच्छे कैरिकेचर, ग्राफिक्स के माध्यम से कोरोना का खतरा और इसकी गंभीरता बताई गई। कई रस्मों-रिवाजों से भी ज्यादा जरूरी कोरोना से सुरक्षा है। इसे लेकर अलग-अलग एंगल से खबरें की गई।

हैल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर और कमियां- कोरोना काल में हैल्थकेयर से जुड़े संसाधनों की कमी रही। इसे लेकर भास्कर ने लगातार सवाल खड़े किए। आवश्यक संसाधन डॉक्टर्स को उपलब्ध कराने में किस तरह की कमियां रही। इसपर खबरें की गई। कोरोना की जांचों में लापरवाही और ढिलाई को लेकर खबर की गई। विदेशों और बेहतर काम करने वाली संस्थाओं से तुलना कर स्थानीय प्रशासन और सरकार पर दबाव बनाया गया। इसके लिए जिलों के कलेक्टर, एसपी, विधायक, मंत्री और यहां तक की मुख्यमंत्री के भी इंटरव्यू किए गए।

पॉजिटिव अप्रोच- पत्रिका की हीं तरह भास्कर ने भी सकारात्मक माहौल तैयार करने की कोशिश की। कोरोना को मात देने वालों की खबरें की गई। 2.5 साल की छोटी बच्ची कोरोना से रिकवर हुई तो उसे फ्रंट पेज पर जगह दी गई। लोग किस तरह भोजन से लेकर दवा तक के लिए एक-दूसरे की मदद कर रहे हैं इसे लेकर स्टोरी की गई। कोरोना काल के दौरान जब रिकवरी बेहतर होने लगी तो उसे भी प्रमुख पृष्ठों पर जगह दी गई। इसका मकसद लोगों तक सकरात्मकता पहुंचाना था। कोरोना पीड़ित मां ने स्वस्थ्य बच्चा जन्मा। इसपर विशेष खबरें की गई। ताकि लोगों में पैनिक पैदा ना हो। 92 साल के बुजुर्ग ने कैसे कोरोना को मात दी उसकी स्टोरी कर एक पॉजिटिविटी क्रिएट की गई।

कोविड-19 का असर और आंकड़े- कोरोना के आंकड़ों को समझाने वाले और बेहद अच्छे तरीकों से बताया गया। दुनियाभर में कोरोना की स्थिति से तुलना की गई। कोरोना संक्रमण से जुड़े ट्रेंड्स को अलग-अलग एंगल से एनालिसिस कर पेश किया गया। राजस्थान में कौनसा जिला किस कैटेगरी में है। रेड, ऑरेंज, ग्रीन कैटेगरी में किस तरह से स्टेट विभाजित होगा। यह बताया गया। कोरोना के आंकड़ों का अलग-अलग ढंग से बेहद शानदार एनालिसिस किया गया। बेहतरीन ढंग से उम्र के अनुसार कोरोना संक्रमण का विवरण दिया गया।

जिम्मेदारों से सवाल और कनेक्ट करने वाली स्टोरी- भास्कर पाठकों के सवाल, मुख्यमंत्री रोज देंगे जवाब। भास्कर ने यह एक सीरीज चलाई। जिसमें मुख्यमंत्री ने कोरोना से जुड़े आम लोगों के तमाम तरह के सवालों के जवाब दिए। यह कोरोना के दौर में एक बेहद मददगार सीरीज साबित हुई। लोगों को सरकार से एक किस्म का जुड़ाव महसूस हुआ। कोरोना की सैम्पलिंग में जो कमियां थी उन्हें लेकर सरकार और प्रशासन को अवगत कराया गया। कोरोना का आर्थिक असर क्या हो सकता है। इसपर भी खबरें हुई। कोरोना और लॉकडाउन कैसे अर्थव्यवस्था पर असर डालेगा। इसपर खबरें की गई। किस क्षेत्र से कितने मरीज हैं। इसे अलग-अलग जगहों के अनुसार बताया गया।

प्रवासी मजदूर और पलायन- पहली लहर के दा◌ैरान प्रवासी मजदूरों की स्थितियों को बेहतरीन ढंग से पेश किया गया। मजदूरों को अपने घरों तक ले जाने की सही व्यवस्थाएं नहीं की गई थी। इसपर सवाल उठाया गया। यह बताया गया कि जब कोचिंग के छात्रों को व्यवस्थित ढंग से ले जाया जा रहा है तो मजदूरों को क्यों नहीं। इसपर सवाल उठाए गए। "हमारे पास भी हैडलाइन के शब्द नहीं है" जैसी हैडलाइन देकर प्रवासियों के दर्द की हद को बताया गया। लोगों के बीच कनेक्टिंग अप्रोच बनाया गया। शहरी और ग्रामीण इलाकों की अलग से रिपोर्टिंग की गई। कोरोना को अलग-अलग ढंग से एनालिससिस किया गया।

आउट ऑव द बॉक्स कवरेज- सिर्फ कोरोना के आंकड़े और उनकी चिंताजनक खबरों के अलावा भी भास्कर ने रिपोर्टिंग की। कई ऐसे मसलों को लाकर भास्कर ने लोगों के सामने रखा जिनपर किसी का ध्यान नहीं जा रहा था। भास्कर ने बेहतरीन ढंग से कोरोना काल में

सैनेटरी पैड्स को लेकर खबर की। राशन तो पहुंच रहा मगर सैनेटरी पैड्स कहां से पहुंचाएं इस मुद्दे को लाया गया। ऐसे मसलों पर खबर कर ध्यान आकर्षित किया गया। सैनेटरी पैड्स स्कूल की बोरियों में बंद पड़े थे यह बताया गया। इसी तरह जो दृष्टिबाधित लोग हैं। उन्हें कैसे दिक्कतें आई। ऐसे मसलों पर लीक से हटकर खबरें की गई। ऐसे लोगों के लिए स्पर्श और सहारा ही सबसे बड़ी मजबूती होती है। मगर कोरोना काल में यह छिन गया। इसे लेकर शानदार स्टोरी की गई।

कोरोना : दूसरी लहर

दूसरी लहर : दैनिक भास्कर-दूसरी लहर के शुरुआती दिनों में कोरोना महामारी चौंकाने वाली नहीं थी। मामले बढ़ रहे थे मगर क्योंकि एक साल पहले कोरोना आ चुका था। तो कवरेज भी उसी तरह से हुई। मगर जैसे ही कोरोना की रफ्तार तेजी से बढ़ी और पहली लहर के मुकाबले संक्रमित तेजी से बढ़ने लगे। इसके बाद कवरेज की दिशा बदली। खास तौर से दूसरी लहर में मौतें तेजी से हुई। वहीं दूसरी लहर में ही हैल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर को लेकर सवाल खड़े हुए।

वैक्सीनेशन - अगर हम भास्कर की बात करें तो भास्कर ने इस दौर के हर पहलू पर रिपोर्टिंग की। दूसरी लहर के शुरुआती दिनों में लोगों को कोरोना वैक्सीन लगनी शुरू हो गई थी। ऐसे में कोरोना के साथ-साथ वैक्सीनेशन का कवरेज किया गया। तेजी से बढ़ रहे मरीजों के ग्राफ पर ध्यान दिलाने के लिए अलग ढंग से आंकड़े पेश किए गए। भास्कर ने कोरोना के आंकड़े और वैक्सीन के आंकड़ों को डेली बेसिस पर अनूठे ढंग से बताया गया। रोजाना की टेबल प्रस्तुत की गई।

उपचुनाव- दूसरी लहर के दौरान राजस्थान में 3 सीटों पर उपचुनाव भी थे। ऐसे में उसके कवरेज को भी प्रमुखता से जगह दी गई। उपचुनाव को लेकर जब नेताओं-मंत्रियों ने कोरोना गाइडलाइंस तोड़ी, नियम-कायदों की धज्जियां उड़ाई तो भास्कर ने उन्हें प्रमुखता से छापा। चुनावी रैलियों पर प्रतिबंध नहीं लगाने को लेकर सवाल उठाए गए। जिस भी मंत्री नेता ने नियम तोड़े उन्हें कठघरे में खड़ा किया गया। मंत्रियों ने किस तरह अपने जिलों के दौरे किए बिना ही अपने कामों में लापरवाही की। इसपर स्टोरीज की गई।

सतर्कता- कोरोना के दौर में मास्क कितना जरूरी है इसे अनूठे अंदाज से लोगों को बताया गया। पब्लिक प्लेस पर मास्क की विशाल तस्वीरें लगी। अखबार के मास्ट हैड मास्क के रूप में कन्वर्ट हो गए।

अप्रैल के दूसरे सप्ताह तक जब मामले बढ़ने लगे और लॉकडाउन जैसी कोई सख्ती नहीं हुई तो भास्कर ने आगे रहकर कोरोना के विकट हालातों को दर्शाते हुए सख्त फैसले लेने की बात कही। इसके लिए ताकत से जिम्मेदारों को उनकी जिम्मेदारी का अहसास कराया गया।

हैल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर- दूसरी लहर में केस तेजी से बढ़ने लगे तो अस्पतालों में बैड कम पड़ने लगे। प्रदेश के सबसे बड़े अस्पताल में बरामदों में बैड लगाने पढ़े। इसे लेकर ताकतवर कवरेज की गई। लोगों को कोरोना की गंभीरता का एहसास कराने के लिए लाइव केसेज सामने रखे गए। मैसेज दिया गया कि अब भी अगर सतर्कता नहीं बरती गई तो ऐसी स्थिति आपकी भी हो सकती है।

दूसरी लहर का पीक राजस्थान में मई के महीने में आया। इस दौर तक आते-आते राजस्थान का हैल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर भी जवाब दे गया। ऐसे में ऑक्सीजन की कमी, सिलेंडर्स की कमी, खराब वैंटीलेटर, आईसीयू बैड्स की कमी से लोगों को जूझना पड़ा। इन हालातों पर भास्कर ने ताकत से कवरेज किया। ऑक्सीजन नहीं मिलने से प्रदेश के अस्पतालों में जो मौतें हुई। उन्हें लेकर ताकतवर खबरें हुई। हैल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी किस तरह हुई उसे लेकर रिपोर्टिंग की गई। ऑक्सीजन सिलेंडर, इंजेक्शन की कालाबाजारी करने वालों पर आपराधिक मुकदमे दर्ज हों उसके लिए खबरें की गई। वैंटीलेटर पर भी मौतें हो रही हैं। उसपर सवाल उठाया गया। डॉक्टर्स और मेडिकल स्टाफ के लिए इक्वीपमेंट की कमी रही। उसके लेकर खबरें की गई। बताया गया कि डाक्टर्स और नर्सिंग स्टाफ के पास मास्क जैसे जरूरी उपकरण तक नहीं है।

ऑक्सीजन की कमी- दूसरी लहर में ऑक्सीजन की कमी सबसे महत्वपूर्ण मसला था। पूरे देश ने इस कमी को महसूस किया। हर प्रदेश, हर जिले और कस्बे में लोगों को इसकी समस्या से जूझना पड़ा। भास्कर ने इस मसले को प्रमुखता से छापा। ऑक्सीजन की उपलब्धता, उसके प्रोडक्शन सहित हर पहलू को गंभीरता से लोगों के सामने रखा गया। ऑक्सीजन सिलेंडर, वैंटिलेटर, आईसीयू बैड की कमी ने राजस्थान में लोगों के लिए मुश्किलें खड़ी की। इसे भी भास्कर ने बखूबी दिखाया। कोरोना की गंभीरता को उसकी रफ्तार से बताया गया। ऑक्सीजन की कमी से बिगड़े हालात सामने रखे गए। ऑक्सीजन की सप्लाई में केंद्र सरकार से राजस्थान के साथ भेदभाव किया गया। इसपर भास्कर ने प्रमुखता से खबर छापी। रेमडेसिविर के इंजेक्शन बेचते लोग पकड़े गए। इसे पब्लिश किया गया। रेमडेसिविर की कालाबाजारी, उसकी कमी के चलते आई दिक्कतें और लोगों की मजबूरी पर मजबूती से खबरें की गई।

पॉजिटिविटी- कोरोना के इस भयंकर तांडव में लोगों में विश्वास और हिम्मत दिलाने वाली खबरें भी की गई। इस भयानक दौर में जिन लोगों ने हिम्मत से लड़कर कोरोना से जंग जीती। उनकी कहानियों को प्रस्तुत किया गया। लोगों के सामने रिपोर्टस में उनके किस्से छापे गए। दूसरी लहर की तबाही के बाद पॉजिटिव खबरें भी की गई। बताया गया कि कोरोना धीरे-धीरे कम हो रहा है।

मौत के आंकड़ों पर सवाल- दूसरी लहर में मौतों की संख्या तेजी से बढ़ी। हर तरफ मौतों की चित्कार सुनाई दे रही थी। इस बीच जो आंकड़े सरकार और प्रशासन की ओर से जारी किए गए वो सच्चाई से अलग थे। ऐसे में मौतों के आंकड़ों को लेकर सवाल उठाने वाली खबरें हुई। सरकार, स्थानीय प्रशासन ने जो आंकड़े बताए उन्हें वास्तविक आंकड़ों से गलत साबित किया गया। शमशान स्थलों से आंकड़े जुटाकर खबरें की गई। गांवों में अर्थियां कितनी उठी उस आधार पर सरकारी आंकड़ों से तुलना कर उनका फर्जीवाड़ा उजागर किया गया। पूरे राज्य से भास्कर स्टेट की टीम ने अलग-अलग इलाकों से रिपोटिंग कर सच्चाई को सामने रखा।

वैक्सीन की बर्बादी और ब्लैक फंगस- कोरोना की भयावहता को अलग ढंग से कवर किया गया। आंकड़ों का प्रजेंटेशन कलैंडर के रूप में दिया गया। बताया गया कि कोरोना से मौतों ने हालात कैसे पैदा कर दिए हैं। गांवों के हालातों पर अलग से खबरें की गई। डायबिटिक रोगियों पर कोरोना कैसे असर डाल रहा इसकी अलग से खबर की गई। ब्लैक फंगस को लेकर भी खबरें की गई। बताया गया कि किस तरह ब्लैक फंगस लोगों की जिंदगियां छीन रहा है। कोरोना से मौत के बावजूद कर्मचारियों की मात को रूटीन से जोड़कर उन्हें मुआवजे से महरूम रखा गया। इस तरह के मसलों पर भी खबरें हुई। वैक्सीन की बर्बादी पर ताकतवर खबरें की गई। पूरे राज्य के कई वैक्सीन सेंटर पर जाकर वहां से वैक्सीन के वॉयल बरामद किए गए। बताया गया कि हजारों डोज बर्बाद हो रही हैं। सरकार को कटघरे में खड़ा किया गया। इसका काफी गहरा असर पड़ा।

दूसरी लहर : राजस्थान पत्रिका -दैनिक भास्कर की ही तरह राजस्थान पत्रिका ने भी दूसरी लहर में लगभग तमाम मसलों को छुआ। दूसरी लहर में पत्रिका ने भी कुछ खबरें अलग से की। कोरोना के दौरान स्टॉर्टअप्स को किस तरह से नुकसान हुआ इसपर खबरें की गई। विदेशों से पढ़ाई करने वाले छात्रों के संकट को लेकर भी सवाल उठाया गया।

उपचुनाव- दूसरी लहर के दौरान उपचुनाव में नेताओं के बिना मास्क

की तस्वीरें छापकर सवाल उठाया गया। कोरोना गाइडलाइंस की पालना नहीं करने वाले नेताओं सहित अन्य लोगों पर स्टोरी की गई। उपचुनाव को लेकर जिस तरह का माहौल था। उसे कोरोना के खतरे से जोड़ते हुए खबरें की गई। चुनाव के दौरान वैक्सीन के डिस्ट्रिब्यूशन को लेकर सवाल उठे। उसपर मजबूत खबरें की गई।

हेल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर- वैक्सीन को लेकर केंद्र और राज्य सरकारों में जो आरोप-प्रत्यारोप हुए उन्हें कवर किया गया। खराब हैल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर, संसाधनों की कमी जैसी चीजों पर खबरें हुई। ऑक्सीजन सिलेंडर्स की कमी पर खबरें हुई। अस्पतालों में बैड की कमी और कोरोना की भयावहता पर खबरें की गई। ऑक्सीजन सप्लाई बंद होने से जानें गई। तस्वीरों से ऑक्सीन की कमी से जुड़े हालात बताए गए। पीएम केयर से मिले खराब वैंटिलेटर्स पर स्टोरी की गई। शमशानों के हालात बताकर कोरोना की गंभीरता बताने की कोशिश की। मगर यह डराने वाला ज्यादा था। कोरोना के दौर में जो भ्रष्टाचार हुआ। जो रिश्वतखोरी हुई। उसपर खबरें की गई। जैसे ही स्थितियां सुधरने लगी पॉजिटिव खबरें की गई।

पत्रिका ने खुद आईसोलेशन सेंटर शुरू किए-दूसरी लहर के दौरान जब पूरे देश में स्थितियां बेहद खराब थी। कोरोना अपने पीक पर था। तब पत्रिका ने खबरों से इतर सामाजिक सरोकार का एक बड़ा प्रयास किया। पत्रिका ने कुछ राज्यों में आईसोलेशन सेंटर शुरू किए। खबरों से इतर ये एक अलग प्रयास था। इनकी मदद से लोगों को आईसोलेट करने और उन्हें जरुरत की चीजें मुहैया कराने में मदद मिली।

हेल्थ सिस्टम की खामियों को उठाया- दूसरी लहर के पीक के दौरान पत्रिका ने आरटीपीसीआर टेस्ट में रिपोर्ट की विश्वसनीयता को लेकर भी खबरें की। उपचुनावों के परिणाम की खबरें की गई। कोरोना के दौर में निजी अस्पतालों में भारी लूट हुई, इसपर भी खबरें की गई। अस्पताल और निजी संस्थानों की गड़बड़ियों पर खबरें की गई। चिरंजीवी योजना के बावजूद लाखों रुपए की वसूली किस तरह निजी अस्पताल कर रहे हैं, इसे खबरों के माध्यम से बताया गया। कोरोना काल में हुई रिश्वतखोरी, दलाली पर खबरें हुई। इंजेक्शन घोटालों से जुड़ी खबरें हुई।

ग्रामीण क्षेत्रों में कोरोना की स्थिति का जायजा- प्रदेशभर में कोरोना से किस तरह के हालात थे, उनपर जिलेवार रिपोर्टिंग की गई। प्रदेशभर की सीएचसी से रिपोटिंग कर बताया गया कि छोटे इलाकों में किस तरह की स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध हैं।फ्री वैक्सीन के बाद भी वैक्सीन की उपलब्धता नहीं होने से लोगों को दिक्कतें आई। इससे सामने रखा गया। ग्रामीण इलाकों से खबरें हुई। डॉक्टर और नर्सिंगकर्मियों के नहीं होने से झोलाछाप के चक्करों में लोगों के फंसने पर खबरें की गई। कोरोना के झूठे आंकड़ों पर कुछ खबरें की गई। मगर इन्हें मजबूती से प्रस्तुत कर जिम्मेदारों से सवाल नहीं किए गए। तीसरी लहर के चलते बच्चों को होने वाले नुकसान की संभावनाओं को लेकर स्टोरी।

धर्मस्थलों को लेकर अजीबो गरीब रिपोर्टिंग- कोरोना बीमारी के खतरे के चलते मंदिरों सहित धार्मिक स्थल लॉकडाउन में बंद थे। उन्हें खोलने को लेकर खबर की गई। उन हालातों में ऐसी खबरों ने सोचने पर मजबूर किया। मंदिरों को खोलने को पॉजिटिविटी से जोड़ने की कोशिश की गई। मगर एक ओर जहां भास्कर ने प्रोग्रेसिव माइंटसेट के साथ तमाम तरह के धार्मिक स्थलों के बंद रखकर कोरोना से निपटने की बात कही। वहीं दूसरी ओर पत्रिका में मंदिरों को खोलने जैसी खबरों ने विपरीत चर्चाएं बटोरी।

निष्कर्ष-कोरोना काल की पहली और दूसरी दोनों ही लहरों में दैनिक भास्कर और राजस्थान पत्रिका दोनों प्रमुख अखबारों ने अच्छी रिपोर्टिंग की। दोनों अखबारों ने कोरोना शुरू होने से लेकर इसका असर कम होने तक लगातार इस मसले पर नजर बनाए रखी। लोकल से लेकर प्रदेश स्तर तक दोनों ही अखबारों ने इससे जुड़ी कम से कम हर बेसिक जानकारी अपने पाठकों तक पहुंचाई। इसमें संक्रमण के आंकड़े, मौत के आंकड़े, पॉजिटिविटी दर, वैक्सीन की उपलब्धता, संक्रमण का ट्रेंड, जिलों और प्रदेशों की स्थिति सहित तमाम जरूरी जानकारियां लगातार प्रकाशित की। दोनों ही अखबारों ने अपनी खबरों से पाठकों को अपडेट रखने का काम किया।

पॉजिटिव स्टोरीज -कोविड-19 और लॉकडाउन से जुड़ी जरूरी जानकारियों के अलावा दोनों ही अखबारों ने इस दौर में पॉजिटिव रिपोर्टिंग पर भी काफी ध्यान दिया। कोरोना के उस दौर में जब लगातार फैल रहे संक्रमण, तेजी से हो रही मौतें और हैल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर धराशायी होने के बावजूद ... इंफ्रास्ट्रक्चर धरातल पर आ जाने के दौर में सकारात्मक खबरें की गई। दोनों अखबारों ने उन बुजुर्गों, बच्चों और महिलाओं के किस्से प्रकाशित किए जिन्होंने विपरीत परिस्थिति में कोरोना से जंग लड़कर जीती। उन कोरोना वॉरियर्स की कहानियां प्रकाशित की जो तमाम चुनौतियों के बावजूद लगातार कोरोना से लड़कर समाज को बचाने में योगदान दे रहे थे। भास्कर ने इन सकारात्मक खबरों को अनूठे अंदाज में प्रकाशित किया। वहीं पत्रिका ने अपने सामान्य अंदाज में इसे पाठकों को परोसा। मगर दोनों ही अखबारों ने लोगों में खौफ कम करने और हिम्मत और जज्बा पैदा करने के मकसद के साथ पॉजिटिव रिपोर्टिंग की।

कंटेंट-पहली और दूसरी लहर के कंटेंट की बात करें तो दोनों अखबारों का ट्रेंड एक जैसा दिखाई पड़ा। पहली लहर में जहां कोरोना एक नया सब्जैक्ट था और बहुत ही सख्त लॉकडाउन लगा था। इसके चलते अखबारों में कंटेंट के नाम पर सिर्फ कोरोना से जुडी जानकारियां और खबरें ही थी। पहली लहर के दौरान सिर्फ आवश्यक सुविधाओं को छोड़ तमाम गतिविधियां बंद हो गई थी। ऐसे में अखबारों में सिर्फ कोरोना से जुड़ा कंटेंट ही पढ़ने को मिल रहा था। इसका असर अखबारों की पृष्ठ संख्या पर भी दिखा। सीमित कंटेंट हो जाने से अखबारों ने अपने पृष्ठ कम कर लिए थे। वहीं इसके विपरीत दूसरी लहर के ज्यादा मारक होने के बावजूद कंटेंट को लेकर वैरायटी अखबारों में देखने को मिली। चूंकी दूसरी लहर में पहली लहर जैसा लॉकडाउन नहीं था। ऐसे में कई दूसरी गतिविधियां भी चल रही थी। इसके चलते पहली लहर की तरह अखबारों में सिर्फ कोरोना की कवरेज नहीं थी। इसके अलावा राजस्थान में उपचुनाव, अपराध, विभागीय उठापटक और दूसरी हैपनिंग्स भी इस दौर में थी। इन घटनाओं को भी कोरोना से जुड़े कवरेज के साथ-साथ दोनों अखबारों ने जगह दी। इसी का असर रहा कि दूसरी लहर में अखबारों की ना तो पृष्ठ संख्या कम हुई ना ही एक ही तरह की खबरें पढ़ने को मिली। ऐसा दोनों अखबार दैनिक भास्कर और राजस्थान पत्रिका के साथ देखने को मिला।

सरकार पर दबाव -कोरोना की दोनों लहरों में स्वास्थ्य सुविधाओं से जुड़ी कई खामियां निकल कर आई। इन खामियों को दोनों अखबारों दैनिक भास्कर और राजस्थान पत्रिका ने प्रस्तुत किया। हैल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर से जुड़ी कमियों को लगातार पाठकों के सामने रखा गया। मगर किसी भी मसले को लेकर जितनी मजबूती से भास्कर ने प्रशासन और सरकार पर दबाव बनाया। उतनी मजबूती से पत्रिका दबाव नहीं बना पाया। भास्कर ने ऑक्सीजन की कमी, अस्पतालों में बैड की कमी, मजदूरों के पलायन, संक्रमण और मौतों के आंकड़ों की सच्चाई पर मजबूती से खबरें की। हर मसले पर प्रशासन और सरकार से सवाल किए। ताकतवर अभियान चलाकर सरकार को कटघरे में खड़ा किया। वहीं दूसरी ओर पत्रिका ने खबरें तो की मगर इतनी मजबूती से सरकार से सवाल नहीं खड़े किए।

1. **ग्रामीण इलाकों की रिपोर्टिंग -**कोरोना काल में लॉकडाउन और महामारी से जुड़े खबरें अलग-अलग क्षेत्रों से की गई। बड़े शहरों से रिपोर्टिंग हुई तो छोटे कस्बों और गांवों को भी कवर किया गया

संभाग और जिला स्तर के बड़े अस्पतालों के हालात बताए गए तो सीएचसी और पीएचसी की भी स्थितियां दर्शाई गई। मगर ग्रामीण इलाके की रिपोर्टस प्रस्तुत करने में राजस्थान पत्रिका बेहतर रहा। पत्रिका ने भास्कर के मुकाबले ज्यादा प्रभावी ढंग से ग्रामीण इलाकों से रिपोर्टिंग की। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता और वहां के हालातों को ठीक उसी तरह दर्शाया जिस तरह शहरी इलाकों से रिपोर्टिंग हो रही थी। ग्रामीण इलाकों में भी कोरोना के फैलाव और उसके ट्रेंड की विस्तारपूर्वक रिपोर्टिंग राजस्थान पत्रिका ने की।

निजी अस्पतालों पर रिपोर्टिंग-कोरोना काल के दौरान लोगों को निजी अस्पतालों में भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। निजी अस्पतालों में कभी बैड की अनुपलब्धता तो कभी ऑक्सीजन और रेमडेविसियर की कमी पड़ी। इसके अलावा निजी अस्पतालों से लोगों को लूटने की भी कई जानकारियां सामने आई। उस दौर में कई निजी अस्पतालों ने खुलकर पैसे बटोरे। लोगों को निजी अस्पतालों में काफी परेशानियां झेलनी पड़ी। मगर दोनों ही अखबार राजस्थान पत्रिका और दैनिक भास्कर में निजी अस्पतालों को लेकर रिर्पोटिंग नहीं हुई। कुछ एक खबरों को छोड़ दिया जाए तो दोनों अखबारों ने निजी अस्पतालों की कालाबजारी और मनमर्जी को एक्सपोज नहीं किया। इसके पीछे की वजहें और कारण कई हो सकते हैं। मगर दोनों लहरों की रिपोर्टिंग में निजी अस्पतालों पर सवाल खड़े करती रिपोर्टिंग दोनों ही प्रमुख संस्थानों से नजर नहीं आई।

प्रोग्रेसिव रिपोर्टिंग -कोविड-19 पिछले 100 साल में भारत में आई सबसे बड़ी महामारी थी। इस महामारी ने भारत सहित उपमहाद्वीप में मेडिकल साइंस और तकनीक की महत्ता को दर्शाया। ऐसे में इस दौर में मीडिया से प्रोग्रेसिव रिपोर्टिंग की आवश्यक्ता थी। मगर दोनों लहरों के दौरान दैनिक भास्कर और राजस्थान पत्रिका से कोई खास प्रोग्रेसिव माइंडसेट के साथ की गई रिपोर्टिंग देखने को नहीं मिली। भास्कर ने जरूर कुछ ऐसे मसलों को छुआ जो समाज में अब भी टैबू हैं। कुछ अच्छी खबरें भास्कर ने की। मगर राजस्थान पत्रिका इस तहर की पत्रकारिता से दर रहा। इसके विपरीत पत्रिका में तो कुछ ऐसी खबरें भी हुई जिनमें कोरोनों के दौर में मंदिरों और धार्मिक स्थलों को पाजिटिव एनर्जी से जोड़कर उनके द्वार खोलने की मांग की गई। प्रोग्रेसिव माइंडसेट के विपरीत भी कई खबरें हुई। ओवरऑल बहुत ज्यादा प्रगतिशील रिपोर्टिंग इस दौर में दोनों सस्थानों से देखने को नहीं मिली।

****

संदर्भ

1. दैनिक भास्कर : 1 अप्रैल 2020 से 31 मई 2020 तक राजस्थान के प्रदेश संस्करण की तमाम खबरें।
2. राजस्थान पत्रिका : 1 अप्रैल 2020 से 31 मई 2020 तक राजस्थान के प्रदेश संस्करण की तमाम खबरें।
3. दैनिक भास्कर : 1 अप्रैल 2021 से 31 मई 2021 तक राजस्थान के प्रदेश संस्करण की तमाम खबरें।
4. राजस्थान पत्रिका : 1 अप्रैल 2021 से 31 मई 2021 तक राजस्थान के प्रदेश संस्करण की तमाम खबरें।

बाबा साहब डॉ.भीम राव अम्बेडकर जी के सामाजिक विचार

डॉ. भीमराव अम्बेडकर मूलतः एक समाज सुधारक अथवा समाजिक चिंतक थे। वह हिन्दु समाज द्वारा स्थापित समाजिक व्यवस्था से काफी असंतुष्ट थे और उन में सुधार की मांग करते थे ताकि सर्व धर्म सम्भाव पर आधारित समाज की स्थापना की जा सके। अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के उन्मूलन और अस्पृश्यों की भौतिक प्रगति के लिए अथक प्रयास किय । वे 1924 से जीवन पर्यन्त अस्पृश्यों का आंदोलन चलाते रहे। उनका दृढ विश्वास था कि अस्पृश्यता के उन्मूलन के बिना देश की प्रगति नहीं हो सकती। अम्बेडकर का मानना था कि अस्पृश्यता का उन्मूलन जाति-व्यवस्था की समाप्ति के साथ जुड़ा हुआ है और जाति व्यवस्था धार्मिक अवधारणा से संबद्ध है। समाजिक सुधारों को प्रमुखता समाज सुधार हमेशा डॉ. अम्बेडकर की प्रथम वरीयता रही। उनका विश्वास था कि आर्थिक और राजनीतिक मामले समाजिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति के बाद निपटाये जाने चाहिए। अम्बेडकर का विचार था कि अर्थिक विकास सभी समाजिक समस्याओं का समाधान कर देगा। जातिवादी हिंदुओं की मानसिक दासता की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार जातिवाद के पिशाच/बुराई के निवारण के बिना कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। हमारे समाज में क्रांतिकारी बदलाव के लिए समाजिक सुधार पूर्व शर्त है समाजिक सुधारों में परिवार व्यवस्था में सुधार और धार्मिक सुधार भी शामिल हैं परिवार सुधारों में बाल विवाह जैसे कुप्रथाओं की समाप्ति भी शामिल है। अम्बेडकर ने भारतीय समाज में महिलाओं की गिरती स्थिति की कटु आलोचना की उनका मानना था कि महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार मिलने चाहिए और उन्हें भी शिक्षा का अधिकार मिलना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि हिंदू धर्म में महिलाओं को सम्मति के अधिकार से वचिंत रखा गया है। हिंदू कोड बिल जो उन्होंने ही तैयार करवाया था उन्होने यह ध्यान रखा कि महिलाओं को भी सम्पति में एक हिस्सा मिलना चाहिए। उन्होंने अस्पृश्यों को संगठित करते समय अस्पृश्य समुदाय की महिलाओं का आगे आने के लिए सदैव आहवान किया कि वे राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों में भाग ले।

डॉ. भीम राव अम्बेडकर जाति प्रथा के कट्टर विरोधी थे। जाति प्रथा का विरोधी होने का मुख्य कारण उनके स्वयं का भुक्त भोगी होना था वह जाति प्रथा को वर्ण व्यवस्था का आधुनिक और घृणित रूप मानते थे क्योंकि समयानुसार वर्ण व्यवस्था में जटिलता आ गई और उसने जाति प्रथा का रूप धारण कर लिया था। अब व्यक्ति को उसके कार्यों की अपेक्षा जाति से जाना जाने लगा था। जहां समान जाति की उपजातियों के लोगों में भोजन, सदाचार व्यवसाय की समानता होने से विवाह सम्बन्धों की स्थापना हुई और उसने जाति व्यवस्था को मजबूती एवं स्थायित्व प्रदान किया। डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने जाति प्रथा के विरोध के निम्नलिखित कारण बताए--

1. यह प्रथा निम्न वर्गों के लोगों के गुणों एवं प्रतिमा की उपेक्षा करती है। 2. जति प्रथा अंतजातीय विवाह सम्बधों का बहिष्कार करती हैं।
3. यह समाज में विद्यमान विभिन्न जातियों में परस्पर द्वेष और तनाव को पैदा करती है।
4. यह व्यवस्था प्रजातन्त्र विरोधी है क्योंकि प्रजातन्त्र में समानता स्वतन्त्रता न्याय और बंधुत्व पर बल दिया जाता है।

डॉ. अम्बेडकर ने जाति प्रथा को मानवीय विरोधी माना क्योंकि यह निम्न वर्गों को घृणित और अमानवीय कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। इन्ही आधारों पर डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने जाति प्रथा का विरोध किया।

****

The changing discourse of Subalterns: From subordination to dominance

Dr. Bidisha Ghosh Dastidar
PrincipalBanipur Mahila Mahavidyalaya, Banipur Habra, North 24 Parganas, West Bengal

Bikram Ghosh
State Aided College Teacher, Department of Botany and Environmental Science, Banipur Mahila Mahavidyalaya, Banipur, Habra,

Jayini Bhaumik
Ph.D. Research Scholar
Department of English, Central University of South Bihar, Gaya, Bihar

Abstract: Subaltern means people of lower status or from the degraded and underdeveloped sections of society. The Sundarbans, a land of 18 river delta areas with brackish water, deep mangrove forests, and the ferocious wild beasts in the south of Bengal, have a vibrant lifestyle. The subalterns of Sunderbans earn their livelihood by catching crabs and fishes from the brackish water and collecting honey from the forest. The honey collectors are known as Moule. A recent Bengali novel expresses the tale of a unique story of a battlefield, which is a live documentation of the subalterns of Sunderbans. Sundarbans is a huge depository of different kinds of honey which provides livelihood to the extremely poor moules. Under the umbrella of a corrupt administration and political leaders, thousands of beekeepers working for corporate companies gather in the courtyard of Sunderbans with their pet bee boxes, which creates a battle with the Moules. Churni a girl of a poor moule family fought against these powerful people and saved Sunderbans from overexploitation of its natural resources.

Keywords: Subaltern, Sunderbans, endemic bees, moule, honey collectors, battle.

The literal meaning of the word 'Subaltern' is -

1.People of lower status;

2.People from the degraded and underdeveloped sections of society.

History and ancient literature, and scriptures have either completely avoided the lower caste people or tried to contempt, oppress, and subjugate them. The source of power has always been concentrated in the hands of the "upper class" or the people who are high on the scale of economic, educational, and social status, and on the contrary, the lower-class people or socio-economically disadvantaged people are forced to submit to their hegemony. Indian society is a prime example of an economically stratified society, coupled with caste-related empowerment.Social history of India written from a colonial perspective, interprets the various activities, assessment of the character of indigenous people, and arguments for empowerment from their viewpoint, which is challenged by the construction of the social structure of Dalits. The exploited and oppressed people, their protest strategies and their contribution to the social formation, analysis of the impact of subjugation from their perspective, and re-reading and re-evaluation of history have given birth to new theories about the lower class.The term Subaltern is the name of a relationship. At every level of society beyond state power or political power or the layer upon layer of embedded power structures lie these relationships. Along with the theoretical discussions about Subalterns, the voices of the lower classes are expressed and spoken through literature and other creative media. The story of the people, who earn their living by catching crabs and fish, is depicted in their language, in various scripts. Among these scripts, a recent Bengali novel expresses the tale of a unique story of a battlefield, which is a live documentation of the subalterns of Sunderbans.

As urban civilization has spread its arms, the area of Sundarbans has narrowed down. The air, water and soil of Sundarbans have been contaminated with several poisons. The crisis of human existence got linked to the crisis of the existence of wildlife. This crisis is not only a by-product of urbanization but also the expansion of a class of self-interested business-minded profiteers. The struggle for land possession in the Sundarbans is not only a human-to-human struggle but also a duel between urbanization and virgin land.

Extinction or alteration of one link of the chain can lead to the extinction of all biological entities.Sundarbans is a huge storehouse of forest resources, along with a huge depository of different kinds of honey. The Sundarbans has its indigenous honeybee (*Apis dorsata*), which is locally known as Bagha or Dansh. They create large hives in dense forest habitats. The forest dwellers 'Moule' or honey collectors collect the honey on special occasions. They also collect the wax from the bee hives using different local techniques.

These honey collectors do not have a specific occupation for their livelihood. Sometimes they plough the land of the rich landlords, sometimes they pull nets in the river to catch fish, crabs and fishlings. Collecting honey is a profitable activity for them.Einstein said, 'If there were no bees, it would take only four years to destroy the whole world'. As this is true, so true is the fact that by removing native species, intrusions by other species can cause destruction. All over the world, beekeeping is a profitable business. Professional beekeepers keep bees in specific boxes. Honeybees go out and collect pollen from flowers, return to the box, and make honey there. Honey is collected without any special effort.

Sundarbans is one of the best in the world in terms of flora. Commercial beekeepers know that if they can get their pet beehives into this forest, their honey boxes will be filled with pure honey from various flowers, which will fetch high prices in the market. So they came to the Sundarbans with their pet bees (Apis mellifera). This Apis mellifera will be defeating the indigenous honey bee of Sundarbns Apis dorsata, locally known as Bagha. This creates another war story.As the poison of urban civilization i.e. pet bees is entering the interior of Sundarbans, they are trying to remove the indigenous wildlife by exogenous species. This war of

encroachment is giving birth to a larger socio-economic struggle, or, conversely, a war of encroachment is born out of various socio-economic crises. The combatants of this arena are both humans and other organisms.They are so-called 'subalterns'. They are rural and illiterate, and their daily lives are dictated by the whims of ferocious tigers, crocodiles, snakes, and the ever-changing climate. Some of them are Hindus and some are Muslims by faith, but in the hope of saving their lives, and from the urge of providing food to the family, they devoutly worship Goddess Banbibi. They feel that their lives can be taken at any time by evil tiger God Dakshinray. Bonobibi protects her children from the wrath of God Dakshinray.

On the eve of the Bengali New Year both the Hindus and Muslims gather under a huge jackfruit tree. It is said that goddess Bonobibi herself planted this jackfruit tree long ago.No one knows the truth of the legend. The people of Sundarbans fear and worship Devithan or the jackfruit tree blindly. The Namo, Malo and Pods worship Harichand Thakur, Lord Shiva, Goddess Kali or Durga in their homes. Muslims do their Namaz at their home. But when these people come under the jackfruit tree, they bow down their heads praying for her blessings to save them from the crocodile in the water, and tigers and snakes in the forest.To end the deadly battle with poverty Churni desires to wring its neck. But this work is not easy for her. Society does not look favorably on the desire of an illiterate underprivileged girl to be independent. Political leaders, police administration and government officials of the Sunderbans hold the controlling power. In this forest background, there are occasional glimpses of urban babus who come with water – prostitutes for having fun. To rob them gangs of robbers also come from the city. They all display power in their way. Both babus and robbers want the hard-earned share of honey from the moules, and also want the taste of the moule girl's flesh.Under the umbrella of a corrupt administration and political leaders, thousands of beekeepers working for corporate companies gathers in the courtyard of Sunderbans with their pet bee boxes.A different kind of war begins. The pollen storage of Sundarban's wildflower is limited. Pet bees share in that storehouse and honey accumulates in their breeding boxes, but Bagha bee hives lay empty deep in the forest. This not only strikes like a thunderbolt on the poor Moules but it also destroys the ecosystem of Sundarbans. Churni enters the deep forest with her father and discovers that all the beehives are empty; all the honey has been stolen. A question popped into Churni's mind. Only stolen honey helps her find the faces behind multiple masks."Is a group of parasites growing in the Sundarbans? The chief of the village or Gram Pradhan is elected by the poor people of Sundarbans. But is he truly the representative? She wants to express her deep thoughts in front of the villagers.It is not just a fight for pollen or land. There are various diseases in the body of pet bees, diseases caused by pollution. Commercial beekeepers have masked the disease somewhat by using antibiotics, but they are infecting native Bagha bees. The epidemic has struck their flock and the extinction of Bagha bees means the extinction of Sundarbans. Churni learned about this from Aban Mistry, who is a talented student at university and her neighbor. But this protesting attitude of Churni can't be accepted by village people and outsiders.Theoretical discussions about the subalterns, however, highlight this harsh reality. Churni's protesting voice is insulted, because power is always created in the form of force, in our country's society, in the patriarchal structure, women is always victims of hegemony.Her voice against hegemony can be said to be a conflict between the two opposite relations of domination and exploitation and subordination and suffering, and the consequent change in the source of power. If Churni's protest was accepted and achieved some success, it would have established the theory of decentralized radiation and relative mobility of power.Churni does not know much about education, but in times of crisis in her native land, she takes on the role of protector of sunderban like Goddess Bonobibi. A destitute, poor girl with her power stands against police administration, political thugs, businessmen and self-interested beekeepers from outside.She anyhow manages to unite village people against outside beekeepers. When the beekeepers came with several trucks laden with bee boxes, no labour was available to unload the trucks and carry them up to the boats. There is no reverse blockade but beekeepers felt the pulse of non-cooperation. They carried the boxes themselves up to the ferry ghat. But they did not get any ferry.Traders now hire engine-driven boats. But those engine-driven boats can't move through the water. Surrounding those boats there are a huge gathering of small boats of Moules and fisherman. These boats are named dingi, poukha, and bhatbhati. The small boats are floating in Gomar, Durgadwani, Hemel, and Sarsa river tributaries

Namo, Pod, Jalia, Naiya, Tiyar, and Muslim sailors came down in the boat. Adivasi Moule of Munda Para and fishermen has arrived. It's like a festival in the Munda boats. The women of the house wore marigold garlands on their heads and came with their husbands to save the forest. The business party, which was heated by the power of the administration, was defeated by the collective resistance of the local people.Forgetting class, caste, religion, community and gender identity, in the urge to protect the motherland,these lower classes changed the relative position of male and female supremacy in their direction.Churni, therefore, did not remain limited to the name of a protesting girl; she became the language of protest of the forest-dependent subalterns of Sundarbans. She represents the transition from subordination to dominance.

****

References:

1. Amitav Ghosh: The Hungry Tide.
2. Ranajit Guha: Subaltern Studies.
3. Sasimkumar Baroi: Sundarbaner Mahal Koinya

STRUGGLES OF MODERN INDIAN WOMEN IN THE NOVELS OF SHOBHA DE AND SHASHI DESPANDE.

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1470

Birendra Kumar Pandey
Research Scholar,
Department of English, J.P.U. Chapra

Keywords: Feminism, Sexual pleasure, Marriages, Female Identity, Feminine love and compassion.

Shashi Deshpande and Shobha De are the most proficient modern Indian women writers in English. Their novels inquire into the condition of women who have been subjected to different types of oppression, and deal with the condition of the oppressed women. This paper therefore seeks to investigate upon how Shashi Deshpande and Shobha De use their respective narrative techniques in order to succinctly, yet vividly display the oppressions faced and struggles overcome by women. To this end, the paper will examine the struggles of modern women in select novels of Shobha De – *Sultry Days* (1994), and *Starry Nights* (1991). It also intends to investigate upon the novels of Shashi Deshpande on the same theme, in The *Dark Holds No Terrors* (1980).

Shobha De's women confront the conventional position of women in the modern Indian society. Her women are significantly more confident, authoritarian, and brave in comparison to men, as well as in comparison to women as portrayed in traditional literature, particularly prior to the dawn of the late twentieth century. They are neither submissive, nor suffer from undue guilt in expressing their feelings, emotions, and desires. *Sultry Days* is a story about Sujata – a sex-worker – who is independent in both thoughts and actions. Her independence is a source of her joy and positivity, feeding her life force and motivating her to further pursue her dreams without looking back. She is portrayed as the master of her own life, and one who defines her life on her own terms and conditions. A similar depiction of emancipated women can be discovered in T*he Starry Nights* (1991). Asha Rani – the protagonist of the novel – is a famous actress in Bollywood. She formulates a code of conduct for herself which is does not adhere to the andronormative gender rules and sexual constraints typical of a neo-traditional and androcentric society. The novel does not attempt to display women as beacons of moral virtue and avoid the pitfalls of over preaching. In fact, the women in Shobha De's novels are shown to be of dubious nature and true to human nature, instead of idealistic icons of perfection with which readers may not be able to realistically relate. The idea of revolt always comes to their minds when their self-interest is at risk, showing their humane nature and sense of self-preservation. Struggling and overcoming the constraints of reality while abiding by the laws of human nature and limitations is an integral part of narration in Shobha De novels.These characters may face a series of hurdles throughout the duration of the novels, but they are intelligent enough to either ignore them or overcome these hurdles very skilfully and tactfully, and emerge out of it victorious. The most remarkable aspect of Shashi Deshpande's narrative technique is that she tries to depict a realistic picture of the middle class, sophisticated women who are economically autonomous – which represents a large part of the contemporary Indian society.

Shashi Deshpande's novels *The Dark Holds No Terrors* (1980), on the other hand, is a story of Sarita, who is desirous of marrying a man from a different caste. In her own words, "The love marriage between Sarita and Manu doesn't prove to be Constructive". The protagonist of the novel – Sarita, also refered to as Saru – is a cultivated woman who has been rebellious from her childhood against traditional norms.

The empowerment of women is a topic which is at the forefront of socio-political discourses in the modern world. In India specifically, women have been pushed to the corner for several generations. They have been deprived of their fundamental human rights and are event to this day being treated violently in specific rural, suburban, and conservative. Despite the numerous changes which have been repeatedly introduced in various forms and as in response to various situations in order to protect the rights of women by the Indian Constitution, they however remain victims of rape, suffering, domestic violence, cruelty, honour killings, female foeticide, and a long list of gender-based crimes. It is believed, however, that awareness, education, financial freedom, and a shift in the public mindset may possibly direct the society towards true empowerment and emancipation. Indian writers, particularly Indian women writers, have faced several challenges in the course of their lives and career due to the herculean task of establishing themselves in a male-dominated industry. Yet, finally in the twenty-first century they have arrived at the state of representing the condition of women in and through literature, as well as their own individual dreams and ambitions. Feminist literature plays a significant role in towards this progress by addressing oppression and suppression of women in both political and literary domains of discourse.

De is one of the most well-known Indian English writers. In a nutshell, her novels support a healthy man-woman relationship. Most of De's works portray the beginning and transformations of new Indian women who are motivated to fight back against gendered oppression. The female central character, Nisha in *Sultry Days*, is a

strong woman. She stands shoulder-to-shoulder her male counterparts for power and fame. She is keen to earn for herself a position of power and social status. The novel, *Sultry Days*, reveals how all characters are drawn to politics, and it also emphasizes on Indian women's active participation in socio-political activities. De has taken a stand against gender discrimination in the workplace with this novel. She attempts to demonstrate that men and women have equal economic power.

Sultry Days is a romantic tale set in Mumbai. It is a realistic presentation of youth during their college days. It looks into how careers change personal relationships in the current world. This book is the fifth novel by the author and the lifestyle of Mumbai's upper middle-class is explored thoroughly in its pages. Nisha gets introduced to God (who is actually named Deb) in the initial days of her college. God isn't the most polished guy she has ever met in terms of speech or behavior but Nisha regardless gets unusually caught-up in his thoughts. She feels that God's rustic personality, raw actions and rough selection of words is what makes him different and desiring. He starts calling her his intoxicant and that gradually makes Nisha a part of his life. When God takes her into his group, both starts becoming close to each other. But God slowly enters into the field of poetry and artistic imagination, while Nisha gets a job in advertising. Their different careers gets them introduced to people like party girls, dirty men, sex workers and other odd individuals. Sultry Days presents the secure days of one's youth in contrast to the exploitative but unavoidable, life outside. *Starry Nights*, the second novel of Shobha De, is based on Bollywood affairs. The book is also referred to as 'Bollywood Nights'. The novel has witnessed a great success in early 1990's. It paved Shobha De's position in the Indian literature as a bold novelist. She is considered as a bold novelist because she features female characters in her books and sex is something which recurringly occurs as a day to day element of human interpersonal interactions in her works, as opposed to the relatively reserved treatment which the topic receives from more traditional works of literature. This book, has damaged the status of certain Bollywood stars; Amitabh Bachan and Rekha among others. Aasha Rani and Akshay Arora are the main characters of the story. However, there are many other characters in the book, like Malini – the wife of Akshay, a lesbian journalist, a pimp mother, bloodsucking distributors, producers, and actors. Aasha Rani, once a porn star, is a dusky actress who has come from Madras to Bombay to work as an artist outside from the porn star. On the other hand, Akshay Arora is a famous Bollywood star, a heartthrob of millions. When she meets and enters a physical relationship with him, she soon becomes a hot aspiring actress in Bollywood. Her career is built on the foundation of male exploitation.

Whereas on the other hand, Shashi Deshpande's novels also explore and expose the condition of women in the present day and world. They are imprisoned within the four walls of domesticity and suffocating under the pressure of custom and modernity, which surrounds them on all sides. These women however reject an orthodox and tradition-bound life in order to identify their true self. Shashi Deshpande's protagonists are all interested in keeping hold of their independence in this modern world which threaten their identity – a concept which in *The Dark Holds No Terrors* is embodied and portrayed by the protagonist Sarita.

The Dark Holds No Terrors is the story of a marriage on the rock. Sarita is 'two-in-one woman' who in the daytime is a successful doctor and at night 'a terrified trapped animal' in the hands of her husband Manohor, an English teacher at a small college. The novel opens with Saru (Sarita) returning after fifteen years to her father's house – a place she had once affirmed never to return. Outwardly, the reason to come back to her home was to see and serve her ill father, but in reality she is unable to bear the sexual aggression of her husband. The rest of the novel is what Saru remembers and a brief confession to her father about her trauma. Her stay in her father's house gives Saru a chance to review her relationship with her father, husband and her dead mother. She acquires a better understanding of herself and the others and this gives her the courage to confront the reality.

This novel harshly questions the absolute dominance of a man in the male-dominating society, which – as a result – eventually pushes women towards an inevitable identity crises and she suffers at the hands of inequality. As Sarita narrates up her past life during her residence at her parents' house, reminiscing about her childhood, when her mother was alive, before her marriage, she realizes that behind the success of male dominance over women, women themselves too are responsible. In her case, her mother was spiteful towards her, and this clearly shows that the gender discrimination are often perpetrated by women towards other women, which finally sets the ground for the introduction of male dominance in future.

Saru's situation becomes even more alarming further along, when she could not save her younger brother from drowning. After this incident, she becomes resentful towards being a daughter, and hence she starts craving for a new role for herself – that of a wife – thinking that it will give her freedom and recognition as an individual and as a person in the form of a woman, who otherwise was being merely considered as a toy for pleasing carnal desires by her immediate society.

When she moves out of her maternal home, she not

only becomes financial independent but also marries a person of her choice. At her husband Manohar's home, she receives yet the larger shock of her life. When she accidentally outpaces her husband in both occupation and fame, she is treated like instead a minuscule creature and her husband practices brutal sexual practices on her only in order to keep her controlled and under his dominance. She felt that she was being trapped and the piling guilt in her heart flutters ferociously for freedom.

In conclusion, that both the writers discussed above have described the condition of women which is prevalent in modern day India. One must realize the fact that women still have to struggle harder in order to reach a significant position in this modern world. The investigation on the topic revolves around a collective consideration regarding where the society stands with respect to them. May the twinkling and shining stars comes down to greet such writers who are trying to discuss boldly about women emancipation.

****

References:

1. Barche, G. D. (2000). *The Fiction of Shobha De.* Jaydip Singh Dodiya, ed. New Delhi: Prestige.
2. De, Shobha (1991). *Starry Nights* - New Delhi: Penguin India.
3. De, Shobha (1995). *Snapshots*, New Delhi: Penguin India.
4. K. M Pandey, *'Tearing the Veil': The Dark Hold No Terror*, ed. R. S. Pathak, The fiction of Shashi Deshpande, New Delhi, creative 1998, p. 49.
5. "Hunter College Women's studies Collective: Women's realities". *Women's choices: An introduction to women's studies.* New York, Oxford University Press. 1983, p. 68.

Buddhist Prayers

As we all gather here today in friendship and community, taking a moment out of our busy lives,... to learn, share and reflect on the insights, experiences and wisdom of others, we are reminded of how blessed we all are. In the current world around us there are many who suffer and face grave challenges. We stand in solidarity with them in compassion and by practicing loving kindness to ourselves and all those around us.Taking a couple of stanzas from Metta or compassion meditation, let us engage in the power of prayer that connect us - irrespective of religion - with our beliefs and ideals more deeply helping us to hold them in our minds as we go about our daily business, and helping us to develop a stronger sense of conviction. Let us pray the following in the name of all that is good.May we all be well, happy and peaceful, May no harm come to us,May we all also have patience, courage, understanding, and determination to meet and overcome inevitable difficulties, problems, and failures in life.May our parents, our teachers and mentors, our friends and may all living beings across the world...be well, happy and peaceful. May no harm come to them,May they also have patience, courage, understanding, and determination to meet and overcome inevitable difficulties, problems, and failures in life.

Praise to Buddha Shakyamuni

O Blessed One, Shakyamuni Buddha
Precious treasury of compassion,
Bestower of supreme inner peace,
You, who love all beings without exception,
Are the source of happiness and goodness;
And you guide us to the liberating path.
Your body is a wishfulfilling jewel,
Your speech is supreme, purifying nectar,
And your mind is refuge for all living beings.
With folded hands I turn to you,
Supreme unchanging friend,
I request from the depths of my heart:
Please give me the light of your wisdom
To dispel the darkness of my mind
And to heal my mental continuum.
Please nourish me with your goodness,
That I in turn may nourish all beings
With an unceasing banquet of delight.
Through your compassionate intention,
Your blessings and virtuous deeds,
And my strong wish to rely upon you,
May all suffering quickly cease
And all happiness and joy be fulfilled;
And may holy Dharma flourish for evermore.

****

Unemployment problem among graduates -A study in the Dima Hasao district of Assam

Dr Mousumi Borah
Associate Professor Dept. of Economics
Arya Vidyapeeth College (Autonomous)
Guwahat 781016

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1469

Ms Tina Bardhan
M.A in Economics (IGNOU)

Abstract-The Dima Hasao district of Assam, which was earlier known as the North Cachar Hills district, is one of the two autonomous hill districts of the state, the other being the Karbi Anglong district. The Dima Hasao district, according to the 2011 Census, is the least populated district of the state. It has its headquarter in Haflong which is the only hill station in Assam. Dima Hasao occupies an area of 4,888 square kilometers with a majority of the tribal population. As per the 2011 Census, the tribal population in Dima Hasao accounts for about 73% of the total population of the district.

The problem of educated unemployment among the youths has become a global concern in the 21st century. As per 2011 Census, the total population of Assam is estimated to be 36 million (3.6 crores). Assam's unemployment rate has been increasing every year due to an increase in the growth of its population.

The present study aims at understanding the main causes of unemployment among the youths of the region and also seeks to find solutions to the problem.

Key words:-Unemployment problem, educated youths, Dima Hasao district, Assam

Introduction-The Dima Hasao district of Assam is one of the two autonomous hill districts of the state, the other being the Karbi Anglong district. Previously the district was known as the North Cachar Hills district. This district, as per the 2011 Census, is the least populated district of Assam. Dima Hasao district has its headquarter in Haflong which is the only Hill Station in Assam. Dima Hasao occupies an area of 4,888 square kilometers with a majority of the tribal population. According to the 2011 census, the tribal population in Dima Hasao accounts for about 73% of the total population of the district.

The problem of educated unemployment among the youth has become a global concern in the 21st century. As per 2011 census, the total population of Assam is estimated to be 36 million (3.6 crores). Assam's unemployment rate has been increasing every year due to an increase in the growth of its population.

The present study aims at understanding the main causes of unemployment among the youths of the region and also seeks to find solutions to the problem. The study has been conducted in the town of Haflong.

Unemployment problem among graduates has become one of the basic economic, social and political problems. These 'labor forces' are ever ready to put in their best services in any kind of job, but would not be called upon to do so because of the situation in the region. The basic problem of unemployment is the tremendous increase in the growth rate of population. As population increases the number of unemployed educated youths also increases. With the present growth rate of the district's economy, it has not been possible to generate employment of this magnitude. The present study intends to study in detail the efforts of the governments for the solution of the problem of educated unemployment

In the words of Blaug Mark, Layard, and M. Woodhall (1969), the slow movement of the labour market for the educated youth is because of the difficulties of changing jobs, preferences for older candidates, inadequate information about jobs, and so on. They have concluded that the presence of educated unemployment in India is due to the unavailability of jobs for educated people which on its part have led to the increasing growth of unemployment in the country.

According to Mathew E.T. (1997), the average people of Kerela have a preference for a salaried job as compared to self-employment. This has led to great importance being given to liberal arts and science education at the expense of vocational and technical training which could have had led to more employment.

Amongst the major sources of data in India, The National Sample Survey Organisation (NSSO) of the Department of Statistics, Government of India is the most comprehensive. Besides NSSO, the other major sources of data on unemployment in India are the Population Censuses and the Employment Exchanges.

The crucial phenomenon of the continued expansion of enrollments in higher education at a time when employment opportunities for university graduates are found to be decreasing has been well analyzed by Varghese N.V. (1996) in his article 'Higher Education and Employment of the Educated in India'. According to the author, this has been the result of 'the qualification escalation' process which has taken place in the labour market. As the situation demands a higher educational qualification for jobs it has led to an increase in the individual's demand for higher education.

Mark Blaug (1973) in his work entitled "Education and Employment Problems in Developing Countries" discusses the fundamentals of educational planning with special reference to the developing countries. According to him, a mismatch between aspirations and opportunities results in educated unemployment. It is through

Education, under-employment gets converted to open unemployment. Blaug further thinks that public subsidies to education are the cause of excess demand for education which leads to an excess supply of educated manpower.

Objectives of the study

The broad objective of the study is to assess the unemployment problem amongst graduates in the Dima Hasao district of Assam. Its specific objectives are:

- To undertake an in-depth analysis of reasons for unemployment amongst graduates of the region
- To find out the effects of unemployment on the unemployed graduates of the region
- To suggest measures to solve the unemployment problem among the graduates of the region

Methodology

The data and information that have been used in conducting this study include both primary and secondary data. Primary data have been collected through an intensive survey. For secondary data personal observation, books, journals, documents, internet downloads, etc. relevant for the study have been used.

The sample design adopted for the study is that of a random technique, fitted to the requirement of the study. With time and resource constraints, the research project is confined to the Haflong subdivision of the Dima Hasao district of Assam.

To collect the primary data, an intensive survey has been carried out. Unemployed graduates (sample units) have been selected randomly. Data have been collected with the help of pre-tested and well-structured interview schedules designed for the purpose. Data analysis, presentation and interpretation have been done with the help of appropriate statistical techniques.

Significance of the study-This study aims at showing how the various problems of unemployment among the graduates could be eradicated. This study seeks to throw light on the unemployment problem amongst graduates in the Dima Hasao district of Assam. It also aims to find solutions to the problem of educated unemployment. The findings of the study are expected to help the planners, policymakers, and Government in devising and implementing strategies to solve the problem of educated unemployment.

Discussion and Analysis

Causes of Unemployment:

The following are the factors responsible for unemployment amongst the graduate youths of the region:

- **Increasing enrollment in educational institutions:** With the development of the district, there has been an extensive improvement in the education and health facilities which has resulted in significant changes in the lives of the people. As a consequence, the enrollment of students in educational institutions has been increasing annually. This annual increase in enrollment has . resulted in an increased supply of jobseekers in the labour market which has outnumbered the available jobs
- **Mismatch of jobs and the skills required:** It is very often seen that there are job seekers with different levels of qualification, yet they do not possess the required related skills, which would equip them to be eligible for the jobs available in the job market. Again, there are young people who are on the lookout for jobs in the market, but the employers in the private sector give preference to the ones who have prior job experience. Employers normally do not prefer fresh employees without prior skills and experience. Thus, this mismatch of demand and supply is a significant matter of concern.
- **Rural-Urban migration:** The phenomenon of rural-urban migration also plays a significant role in the ever-increasing urban youth unemployment situation in the district. The migration also results in decreasing number of workers in the farms and agricultural activities in the rural areas. This has led to the reduction of workforce in the agriculture sector, underutilization of established infrastructure in rural areas, and housing shortage and unemployment in urban areas.
- **Less preference for the private sector:** Because of the lack of job security, perks, opportunities for further studies, and pension schemes the jobs in the private sectors are not readily opted for by the graduates. This results in an increasing number of unemployed youth. As the private sectors are still at an infant stage of development they cannot afford to provide such packages and the job seekers are reluctant to take jobs available in the private sector. Again the private sectors' preference for experienced jobseekers rather than fresh graduates has further aggravated the problem.
- **Inappropriate educational system:** The Indian education system has certain flaws. Many times it fails to provide appropriate training to the people required for the job in the present economic environment. As such, even the highly educated people in India may be unable to get an appropriate job.
- **Lack of human resources planning:** The employment planning of the government is not adequate compared to the high growth of the population. The increase in the employment opportunities is not proportional to the rate of growth of population.
- **Lack of awareness of opportunities:** In various fields like pharmacy, retail telecoms, service sectors, and hotel management, hospitality, etc. there are huge opportunities for jobs. But people are unaware of this and are not wisely choosing their course of study. People need to grow their network

•to know the various opportunities around them and also need to diversify their skills to be able to cope up with any kind of situation.

•**Lack of training centers:** Another reason for the rise of the problem of unemployment is the lack of training centers. Adequate facilities are essential for imparting training and up skilling the graduate youths.

•**Shortage of jobs:** Due to the dearth of jobs very often the job seekers find themselves without work. As such they may be forced to take up unskilled or casual work in the informal sector. Again youths who cannot afford higher education opt for self-employment with extremely low income.

•**Slow growth process:** As a country grows, its production expands and in turn employment also expands. In the case of India, her production has expanded and the economy has also grown. As a consequence, employment opportunities have expanded in the country. However, opportunities were not enough to solve the problem of unemployment in the study area as the growth process was comparatively lower in the district.

•**Lack of entrepreneurship development:** In India, most of the youth are sent to educational institutions with the aim to acquire a good job in the future. The pre-graduate level and graduate level do not focus on self-employment and entrepreneurship development.

•**Rapid growth of population:** The most fundamental cause of large scale unemployment is the rapid growth of population which adversely affects the employment scenario in two ways- first it increases the labour force, and second, it reduces the saving capacity of the people affecting capital formation.

•**Effects of Unemployment**

•**Labour Exploitation:** The labourers are exploited due to unemployment. They were forced to come to work under any condition.

•**Industrial disputes:** Due to the prevalence of the problem of unemployment the industrial disputes have become very apparent. This has led to a further rise in unemployment. It has a detrimental effect on the employer-employee relation.

•**Social problem:** Unemployment has also led to an increase in social evils like crime, vandalism, gambling, immortality, etc.

•**Increase in poverty:** Since the unemployed person does not have any source of income there is a rise in poverty. Due to unemployment and poverty, the burden of debt also emerges amongst the unemployed people.

•**Human Resource: As** the labour force is not being used constructively there is the wastage of the human resources. If the human resources would have been properly utilized there would have been economic growth and development.

- **Political problem:** The problem of unemployment may also be the reason behind political instability which makes economic development difficult. Unemployed persons are sometimes found to be engaged in destructive activities

This study was conducted to form an opinion about the extent of unemployment among the graduates in the Dima Hasao District of Assam. The study also aims to suggest measures to reduce the problem of unemployment in the region. The unemployed graduates were interviewed in order to assess the extent of unemployment among the young graduates, the initiatives that have been taken by the authority in the district to solve this problem of unemployment and the extent to which youths have been benefited from such initiatives. The population of the study consisted of 100 graduate youth (21 males and 79 females) ranging between the ages of 21-29 years. The jobseekers registered with the Employment Exchange Office were interviewed.

Table 1: Difficulties faced in finding a job

Reasons	**Frequency**	**Percentage**
No vacancies	71	55
Lack of experience	44	34
Having to work for free	4	3
Others	10	8
Total	**129**	**100**

Source: Field Survey, 2022

The data in Table 1 indicates the various difficulties faced by the youths while looking out for a job. From the table it is seen that for 55% of the sampled youths lack of vacancies was the prime difficulty in finding a job. Again according to 34% of the unemployed youths it was lack of experience that posed as a problem in finding job opportunities.

Table 2: Number of Jobs Applied for

Number of Jobs applied for	**Frequency**
0-10	21
11-20	18
21-30	28
31-40	33
Total	**100**

Source: Field Survey, 2022

Table 2 shows the range of the number of jobs the sampled youths applied for. The table indicates that 33 sampled youths applied for 31-40 jobs.

Table 3: **Problems faced by the unemployed youths in their day-to-day life**

Problems faced by the unemployed youths in their day-to-day life?	Frequencies	Percentage
Severe financial hardship and poverty	67	23
Debt	24	8
Homelessness and housing stress	11	4
Family tensions and breakdown	71	24
Shame and stigma	27	9
Increased social isolation	29	10
Violent crimes, kidnappings, etc	7	2
Lack of confidence and low self-esteem	56	19
Others	2	1
Total	**294**	**100**

Source: Field Survey, 2022

Table 3 shows the various problems faced by the unemployed sampled youths in their day-to-day life which have led to serious issues. The data shows that highest number of the unemployed youths (24%) have indicated that family tensions and breakdown is a major problem faced by them followed by severe financial hardship and poverty and lack of confidence and low self-esteem.

Table 4: Reasons for unemployment amongst the graduate youths in the Dima Hasao district of Assam

Reasons for unemployment amongst the graduate youths in the Dima Hasao district of Assam	**Frequency**	**Percentage**
Lack of sufficient jobs	47	41
Lack of experience	3	3
Lack of right skills or education	13	11
Poor quality of education	5	4
Increased population growth	4	4
Slow economic and industrial growth	14	12
Job opportunity and qualification mismatch	24	21
Others	4	4
Total	**114**	**100**

Source: Field Survey, 2022

Table 4 shows the various reasons responsible for the problem of unemployment amongst the graduate youths in the Dima Hasao District of Assam. According to 41% of them it is the lack of sufficient jobs which is the main reason for their unemployment, 21% believes that job opportunity and qualification mismatch is the cause responsible for their unemployment and 12% thinks that slow economic and industrial growth is the reason for their unemployed state. .

CONCLUSION AND RECOMMENDATION

The study has revealed that the incidence of unemployment amongst graduates in the Dima Hasao district of Assam is acute and needs to be addressed to. The study has elaborately analyzed the diverse reasons for unemployment amongst the graduates of the region. The study has also looked into the effects of unemployment. The problem of unemployment has affected the young population who are the future leaders of our country. Unemployment leads to underdevelopment. The problem of unemployment needs to be solved for development of the District and the state as a whole.

Recommendation:

- There should be a constant check on the rapid growth of the population. People living in both the rural and urban areas need to be made aware of the different family planning programs adopted by the Government. The government emphasizes controlling the population because an increase in population will directly contribute to the increase in the number of unemployed people.
- The prevailing education system is outdated and needs to be updated. As the world is entering a technical era, educational institutions should also provide more scope for technical and vocational education.
- The Government should introduce schemes to help the educated unemployed, schemes through which the cottage and small-scale industries could be developed. Banking institutions should be encouraged to provide loans to youths to set up small industries.
- Entrepreneurship is to be encouraged and the people opting for such should be provided with some guidance as to how they can properly sustain a particular start-up. Also, with an increase in the number of entrepreneurships, there will be more availability of jobs in the market.
- Skill development courses needs to be introduced by the government for the unemployed youth.
- Corporates and industries need to be advised to promote internships for fresh graduates to provide them with practical knowledge of the required skill sets in the market.

****

Bibliography

1. Blaug M., Layard and Woodhall, M.(1969), The causes of graduate unemployment in India, Allen Lane, The Penguin Press
2. Blaug M., (1973), Education and employment problems in developing countries, ILO, Geneva.
3. Friedman, F.G., (1971), Youth and Society, London: Macmillan,
4. Mathew E.T. (1997), Employment and unemployment in Kerela-some neglected aspects, Sage publications, New Delhi
5. Psacharopoulos, G., & Woodhall, M. (1985). Education for development, an analysis of invest and choices. Washington, DC: Oxford University Press
6. Thomas, Joseph. A (1990), Education and Economic Development, Anmol Publication Pvt. Ltd., New Delhi.

A Study of Impact of Modern Technologies on Society

Dr. Mohan Lal 'Arya'
Professor
Department of Education
IFTM University, Moradabad, UP, India

Abstract:-The present research paper deals with the impacts of technology in Indian Education system, improper use of modern technologies by the society and their effects on economic, religious and social aspects as well as their influence upon people's behaviour and the responsibility of the society in monitoring the children who are in need of attention by everyone through the proper guidance of educational ways. Moreover, this research paper deals with the need of adding all efforts collectively in order to protect the whole society from the imminent dangers of modern technologies and work together to take opportunities of its resources properly. This generally begins from the family and schools and closes with universities, mass media and the various institutions that guarantee the rights of children from all different areas. However this research paper emphasizes the fact that everyone should make efforts towards using this technology properly whether at home or outside.

Keywords:- Modern technologies, Negative effects, Impact of technology, Society.

Introduction:-Now days, the era of 21st century is often regarded as an era of technology. Technology plays a very important role in our daily life. It is seen as a basis of growth of an economy. An economy which is poor in technology can never grow in today's scenario. This is because technology makes our work much easier and less time consuming. The impact of technology can be felt in every possible field, one such field is education. At the same time, it also generates some problems for our society such as the decline in ordinary social behaviours. Yet, modern societies realized the significance of intellectual technology which is a form of new knowledge that achieves goals or solves many problems. Technology is a term that refers to a body of knowledge that is employed to generate tools creates skills and chooses materials for human use. Technology includes the use of materials, tools, techniques and sources of power to make life easier or more pleasant and work more productive. Technology has been derived from Greek word "techno-logia"— Techno means an art or skill and logia means science or study. Thus, technology means systematic treatment of, art or study. According to Oxford English Dictionary— "Technology is application of scientific knowledge for practical purposes". Technology is a tool or device or implement used for a particular task. Thus, the linguistic meaning of the word technology is the methods and tools that a society has developed in order to Facilitate the solution of its practical problems and to provide the necessary needs for the community. Consequently, the use of modern technology in all spheres of life increases risks, threats and crimes related with the use of this technique which reflects negatively on the possibility of its use in absolute terms in all walks of life. Since human beings are more dominated by the use of modern technologies such as social media this reduces the distances, despite of having negative effects on human relations in society and family. Now a days people reorganize that the use of modern technologies is a requirement for life and an indication of the cultural awareness of the community. They have positive prominent roles as one of the requirements of this era where they enter in all walks of life to provide services, improve the quality of life and increase communication and relationship since it is a developed culture reflects the culture of the community. This research presents the impact of technology on education, the negative impacts of modern technologies on society and this paper will also contribute to raise people's awareness towards the appropriate ways of using modern technologies. The author hopes that by presenting the negative effects of modern technologies on society, it will have positive influences on individuals and society in general since modern technologies play a major role in people's lives and future possibilities.

Statement of the Problem: Positive impact of technology on education technology, the most important negative impacts of the use of modern technologies on society and its impact on individual behaviour are: the formation of personal beliefs, social isolations, reduction in the family ties between the family and society members, inactivity, obesity, lack of desire to work different kinetic activities. The statement of the problem is: "**A Study of Impact of Modern Technologies on Society**".

Objectives:-

1. To the present study the positive and negative impacts of the use of modern technology on society. These are the main objectives of this research paper:
2. To study the impact of technology on education.
3. To study the use of modern technological techniques by members of the society and their influences on the social aspects.
4. To study the reasons for gaining modern technological techniques.

5.To study the disadvantages of the use of modern

technological techniques in all spheres of life.

6.To study spreading awareness ideas among members of the society about positive and negative influences of modern technological techniques.

7.To identify the family's role in reducing the risk of modern technological techniques.

Discussion and Analysis: -The main purpose of this research is to identify the impact of technology on education, negative impacts of misusing modern technologies on society. Moreover, it provides detailed information regarding the impact of modern technological techniques on individuals and societies.

To study the Impact on Technology on Education: In this decade, technology has significant influence in many areas of society especially for improving education, language acquisition, support learning and it is a great way to access to information. In fact, now a day's students depend on their machine such as computers, laptops, mobile phone to study in the classroom or outside the class. In addition, they use the internet to communicate with teachers and to help them do research for information they need to do homework. Although, technology is a substantial part of teaching and language learning, in some aspect of languages learning may not have any favourable impact. The efficiency of any technology on learning technology relies on its uses quite than the technology itself. Expressively, numerous recent studies have focused on the effectiveness of the technology and to explore the recent potential to improve technology in language learning. Technology advancement has really provided new platforms for various disciplines leading to great improvements in the education process. Furthermore, education has been thoroughly being applied to education. Actually, technology can be thought of as the application the scientific knowledge and approaches for the different purposes.

b. Second Objectives of the Research

To study the use of modern technological techniques by members of the society and their influences on the social aspects: Technology influences society through its products and processes. Technology influences the quality of life and the ways people act and interact Technological changes are often accompanied by social, political and economic changes that can be beneficial or detrimental to individuals and to society. However, human societies experienced significant and rapid development of these techniques, making it more convenient in social communication. Because of adoption of these techniques, children do not have enough time to use their imagination or to read or think deeply about the material, they find the information but they may not remember it, they might have difficulty to develop social skills and emotional reactions. Technology leads to social isolation which is characterized by a lack of contact with other people in normal daily living such as the workplace, with friends and social activities. Furthermore, the occurrence of new and increasing patterns of behaviours and values influenced the social interaction process. Computers have had a tremendous impact on human interaction with other humans. According to David Bell, reader in cultural studies at Staffordshire University, "Technology and Society are kept separate, even held in opposition to one another. Technology causes social change". Computers have created social change due to the uses of them as well as acceptance into society by people. Media and communication, technologies or telematics as referred to earlier, further disconnect people from reality and push towards a virtual world. Relationships among people have drastically changed since the introduction of the personal computer. Interpersonal relationships are uniquely different than ever before. In most circumstances, due to geographic location convenience or comfortableness, human to human interaction is much different in the 21st century than the 20th and prior to. In particular the use of email has been shown to eliminate a lot of the usual visual and verbal cues we often use in communicating with one another. In addition to removing such cues, computer-mediated communications make attributes such as race, gender, age or physical disability, in addition perhaps to the person's social or management status within an organization with the use of the virtual world. However, many people especially younger generations, are losing the ability to properly communicate in face to face situation because of being accustom to conversing in what has became known as cyberspace. The modern technology reduced family interaction just as the television did prior to and this technology changes the boundaries between households and larger world.

To study the reasons for gaining modern technological techniques: One of the most important reasons for youth generations to use modern technologies is the desire not to associate with others directly and not to make social relationships. Therefore, these become strong medium of social visits and exchange of experiences and feelings. Media such as radio and television still have major impact on the orientation of young people towards these techniques where most of them have been brought up on information quoted from the media. It is cleared that most people who are addicted to the use of the internet are the ones who suffer from social isolation because they spend long times using these techniques and their communication is limited to the written conversations with no sensory feelings.

To study the disadvantages of the use of modern technological techniques in all spheres of life: First, the evolution of technology is beneficial to humans for several reasons. On the other hand, the evolution

of modern technology has disadvantages as for example dependence on new technology. Man no longer needs to think. Even if the calculator is a good invention, man no longer makes mental calculation and no longer works his memory. The decline of human capital implies an increase in unemployment. In some areas, devices can replace the human mind. One of the major disadvantages is social isolation where people are spending more time playing video games, learning how to use new modern technology, using social networks and they neglect their real life. Technology has replaced our old way of interacting. If a user can easily interact with 100 friends online, they will feel no need to go out to make new friends which at a later stage can lead to loneliness. Wasting time, the spread of incorrect and unauthenticated information and spreading lies through these techniques are among the most drawbacks that face our communities due to the use of these techniques. As a result, these means have significant impacts on individuals that take them away from reading books and getting information through printed paper. Modern technology has been the main aid in the increasing of endless wars. It aids the manufacturing of modern war weapons. So when these weapons get into hands of criminals, they will use them for their selfish reasons. To add, these weapons often severely damage the natural earth, making some areas uninhabitable.

To study spreading awareness ideas among members of the society about positive and negative influences of modern technological techniques: Awareness is the ability to directly know and perceive, to feel or to be cognizant of events. More precisely, it is the state of being conscious of something. Research investigations have shown that people's views and ideas conflict on the positive and negative use of these techniques. On one hand, some of people emphasized the need to stay up to date with modern life, as a result of the accelerated pace of life in all aspects as a method to reduce distances, save time and effort in terms of access to information and the completion of the transactions. On the other hand, some of them believe that modern technologies have formed a severe blow to social and family system and the cause of the high incidence of divorce and they recommend the need to impose sanctions on these technology techniques so as not to leave their children in a world of illusions and assumptions and lessens the social and family ties.

To identify the family's role in reducing the risk of modern technological techniques: It is the parents' role to make numerous decisions about their children's media environment; how many TVs, Computers and Video games they buy for the home; whether their kids have cell phones and i-pods; whether there are TVs and video players in their children's bedrooms; whether the TV is usually on during meals or as daily background; and whether they establish any rules about their children's media use. All of these decisions, put together, create a media environment for young people. Hence, it is essential to encourage family members to take advantage of their free time and access to training courses. For example, parents can guide their children to the best way to use these techniques without intolerance or rigidity by clarifying the pros and cons and try to hold them part of the responsibility and internal control.

Results and Conclusion:

With the development of new technologies thing will always be lost while at the same time new things are gained. In this research it was noticed that medium could often have two outcomes; to serve as a device for independent activities or as a mechanism for socializing and communication. The research tells us to take into consideration not only the use of a medium but also how it is being used and what is being used for. The role of parents following up their child's unsupervised media interaction by engaging in conversation with them was also revealed. It was noticed that the unintended effects could be damaging to the manner in which parents communicate with their children and possibly hinder the development of their family relationships. There are many researches investigating the negative impacts of misusing modern technologies on society in different countries in the world. Khulaifi (2002) sought to explore the advantages and disadvantages of the internet. The results showed that most of the participants have the desire to use the internet and focus on the most important uses of this network for the purposes of communication, exchanging information with others, searching for information and entertainment. Participants in this study revealed the negative aspects of the internet such as helping in the cultural invasion and causing social and health problems if it is used frequently. Lailah (2000) conducted a study aimed at clarifying the role of media in the information technology that badly affecting the family relationships and focused on the negative impact of the performance of the media and information technology in our society. As a result, this helps to erode the value systems which oriented to family interaction. The study recommended upbringing the young and adult according to a moral system supporting their identity. Bryant (2006) carried out a study intended to identify the relationship between the use of text messaging and the information of social networks for teenagers. The sample of study consisted of 40 participants ranged in age group (11-13). The study results confirmed that there is a limited overlap between friendships in the lives of individuals and friendships through interactive technology. So, there are a number of friends on the internet to communicate

with them on line and instant messaging has proven that it is not a substitute for a source of social support to people who suffer from isolation.

Life is a series of cycles that are continuously changing, the moon, the seasons and stages of life all have cycles. Likewise, media has cycles where things are perpetually being created, developed and then sometimes left behind, changing the fabric of society and the ways in which we live. It was apparent that media does not affect the way a family unit socializes and as a result, their relationships. Without boundaries of time and place, features of technological device allow individuals to foster familial bonds and relationships by creating the perpetual ability to connect with others. While this is one of the best aspects of media, it also has potential for negatively impacting in person family contact, hindering face to face interactions and social involvement. Research shows that the correct use of modern technologies require a comprehensive understanding to reality of change that happens to the community. Thus, this requires concerted efforts through full cooperation among all sectors of society, from family to government institutions, along with the presence of useful awareness programs supervised by these institutions pursued by the family to utilize the modern technologies accurately in order to ensure and protect the future generations. Finally, this research is simply a little effort towards doing justice to this subject and it could assist future researchers in examining this topic with other groups and in more depth and with more relationships to the present use of modern technologies and their impacts on societies.

****

References:

1. Hawsawi, A, Impediments to the use of educational technologies in teaching mentally retarded students as perceived by teachers of Education in Riyadh. The first scientific conference, Department of Mental Health, the College of Education, Benha University.
2. Beniger, J.R., Personalization of mass media and the growth of pseudo community. Communication Research, 14,352-371, (1987).
3. Lailah, A., The role of mass media and information technology in the family disruption: monitoring the movement of the reaction from the center to the margin. Cairo University, Faculty of Information, p.23, (2009).
4. Khulaifi, M., the impact of Internet in the community: A Field Study, Alam Al Koteb.p.469-502, (2002).
5. Al-Majali, F., The use of Internet and its impact on social relations among university students, An Empirical study, light house, (2007).
6. Bryant, A., Sanders, J. & Mal, W., Instant Image text and adolescents social networks, 4 Journal of computer and Communications Mediation, (2006).
7. Younes, Mohammad Bani, The Impact of Technologies on Society: A Review: Journal of Humanities and Social Science, Volume-20, ISSN: 2279-0845.
8. Proceedings of the New York State Communication Association, Vol.-2012, Art, 10, (2013).

DEPICTIONS OF CHILDHOOD AND INNOCENCE: A COMPARATIVE STUDY OF ROALD DHAL AND R.K NARAYAN

DOI-https://doi.org/10.56716/4/1471

Raghwendra Prasar
Research Scholar,
Department of English, J.P.U.Chapra

Keywords: Childhood, Friendship, Innocence Parental love

This paper studies the treatment of children in R.K Narayan's *'Swami and Friends'* (1935) and Roald Dhal's, *Danny, the Champion of the World* (1975). Swami and Friends is the story of the turbulent friendship of Swaminathan, his four childhood friends, and a new boy named Rajam. It takes place in British-colonial India in the year 1930. The story begins by introducing Swaminathan and his friends Somu, Sankar, Mani, and Pea. Swami talks about how different all of his friends are from one another and how their differences actually make their friendships stronger. Soon, however, a new boy arrives, named Rajam whom Swami and Mani absolutely hate. It is not until the three boys confront each other that they realize they have a lot in common, and become fast friends. Their adventures, splits, combats, carefree roaming in the lap of nature encompass a child's ideology and philosophy.

In Dahl's fiction, children are often described unfavorably: they are "disgusting little blisters", "vipers", "spoiled brats", "greedy little thieves", "greedy brutes" and many more.

In *Danny, the Champion of the World*, Dahl concentrates on the shared otherness of a loving father and tender child. Upon reaching the crux of Danny, after a whirlwind of pheasant-poaching and small-English-village adventure, Dahl leaves his readers with a strong suggestion for when they have children of their own. He writes, "a stodgy parent is no fun at all / what a child wants / and deserves / is a parent who is out of context". The message might seem irresponsible and careless, but such a message fits the narrative superbly. More than anything, Danny is a story about the love between an eccentric, "sparky" father and his adoring son.

In the R.K. Narayan's story 'Swami and Friends' we observe that how this book throws light on the social issues of pre-independence era. The story highlights many problems of children which we witness today. The conflicts that arise throughout the book between Swaminathan and his friends are problems that many children face in this contemporary world. For instance, towards the commencement of the book, Swami and his four original friends do a great job of seeing the

in the book is the importance of using our words to express how we feel, rather than our actions. When Swami is upset about the politician who was arrested, he chooses to go out and join a mob rather than talk to his parents or a teacher to express his feelings. Even if he didn't start with the intention to damage school property, the power of the mob mentality and peer pressure are evident in Swami's actions and he is effectively punished for what he chose to do. Likewise, at Swami's new school, he gets very irritated at his headmaster and expresses this by throwing his cane out the window as a substitute of using his words to explain his disappointment. The outcome of this was the guilty feeling he got from his actions that caused him to run away and miss the cricket game. Simultaneously we can visualized that children can see that Swami could have avoided a lot of trouble if he had taken a deep breath and used his words to explain how he felt, instead of only using actions. Finally, the conclusion of this book is not what we assume. In the end, the reader is left wondering if Rajam would ever forgive Swami for the way he treated him. There can be different argumentation about the treatment of children in this story but I believe that that children who read this story will have a more precise description of the world they live in after they read it. I think it is important to show them that not every story has a happy ending.

Now, I would like to investigate on the next, novel entitled '*Danny the Champion of the World*'. It tells the reader about a life and the journey of nine years old boy Danny and his fabulous father. Poor Danny has to admit the fact that he cannot obtain the affection of a mother. When Danny was about four months, his mother died suddenly. He also has no brother or sister on his side, so he only lives alone with his father. Danny and his father are described living in an old gypsy caravan behind a filling station and a workshop owned by his father. Since Danny was a child, he used to be familiar with car engines and the stuffs in the workshop which he used as his play-room. As Danny grows up, he discovers the deepest darkest secret of his father. Danny was stunned and disbelieved that his fabulous father is a pheasant poacher (illegal hunter) in Hazell's wood. Nevertheless, at the same time, Danny also discovers a sparkling idea dealing with poaching. Danny's brilliant idea leads him and his father to the real adventure in poaching pheasants at Hazell's wood where there were so much keepers equipped with gun. Danny the Champion of the World written by Roald Dahl attracted the writer attention because it contains so many good moral value messages not only for children, but also for parents to be applied in the society. The book is full of so many morals values and lessons that children can be used as a brilliant resource for nation. The author, Roald Dahl engages the reader to be familiar with a nine-year old boy named Danny. He only lived alone with his father and had no brother or sister. When Danny was about four months, his mother died sud denly so Danny's father had to look after Danny all by himself. It was not easy for Danny's father after his wife left. He had no choice but to take over the things that his wife usually does for Danny while at the same time he had to earn money for living.Finally, my intention is to show how R.K. Narayan and Roald dhal use children and gave a brilliant message that children are the image of God and they have lots of talent infuse in them. In the *Swami and the friends* we observe the famous saying, "Meeting and parting is the rule of nature". Children do have the feelings and emotion. The instances makes us deeply concern about Swami's attitude when Swami come to know from Mani that Rajam is leaving Malgudi as his father has been transferred. He is upset because his friend is leaving him with anger. He sets out to meet Rajam at the railway station with a book to gift him. The station is full with men in uniform. He and Mani cannot get near Rajam. As the train starts moving Swami runs with hope and apologizes to Rajam. Before he could utter a word the train leaves but he succeeds in giving the gift to Rajam. However, he is never fully convinced. It leaves swami unsatisfied. R.K. Narayan covered all the children issues with a safer theme of friendship. On the other hand if we talk about Roald Dahl's *Danny, the champion of the world,* Danny is a very bright, loyal and cooperative boy. He helps his father, a mechanic; fix other people's cars in the filling station. Danny's father is described as "sparky" in the book, because he has amazingly and interesting ideas. Like his grandfather, his father is a master poacher of pheasants and has lots of creative ways to catch them. It has also has a deep, dark secret story, but this paper does not intend to show that except how Danny has been treated in this story, *Danny, the Champion of the World* should be suggested for everyone over the age of eight that will help the children to learn moral and ethics. Dahl never disappoints his readers with his colorful and amusing images of events. Moreover, his characters are fun, mischievous, and touching. The readers would find it easy to relate either Danny or his father. The loving bond between them makes *Danny, the Champion of the World* a memorable book that is also very heartwarming.

Lastly R.K. Narayan and Roald Dhal provides compensation for misery of children by portraying them as a 'deserving' child. Lastly this paper seeks to conclude that the story tries to show how childhood includes excitement, amusement, purity, and innocence, but self-centeredness, coldness, and mannerism are unavoidable. It can be seen with Swami, Danny, and other friends of Swami in general. Our history is replete with so many examples which depict that 'Human beings are basically evil by nature and being good is occasional mask. Swami and friends gives a realistic and simple view on children who breaks the myth that they are full of innocence and faith.

****

References:

1. 1. Narayan, R. K. *Swami and Friends*. Chennai: Indian Thought Publications. 91st Reprint, 2019.
2. 2. Iyengar, KRS. *Indian Writing in English*. New Delhi: Sterling Publications Private Limited, 2019.
3. 3. Walsh, William. *R. K. Narayan: A Critical Appreciation*. New Delhi: Allied Publishers Limited, 1982.
4. 4. Dahl, Roald. *Danny, the Champion of the World*. New York, Puffin Books, 1975.
5. 5. Matilda. New York, Puffin Books, 1988.

A Study on : Environmental Impact Assessment (EIA)

Nabamita Nath
Research Scholar
RKDF University, Ranchi

Abstract :-Environmental Impact Assessment (EIA) may provide a mechanism for implementing sustainable development and ensuring wise use of natural resources. By providing analytical procedures for studying relationships between organisms and their environment, ecological science has an obvious role in EIA, but this has been under-exploited under the existing legislation. Ecological input to environmental statements (ESs) for proposed developments has been criticized for its lack of scientific rigour and its failure to predict and evaluate ecological impacts.

In recent years, there has been a remarkable growth of interest in environmental issues, sustainability and the better management of development in harmony with the environment. Associated with this growth of interest has been the introduction of new legislation, emanating from national and international agencies that seek to influence the relationship between development and environment. Environmental impact assessment (EIA) is an important example. EIA means identify, predict and evaluate the environmental effects of proposed actions.

EIA is a tool of decision-making development. The three core value of EIA study that has been identifying till date is integrity, utility and sustainability. EIA is a tool for measuring environmental impacts of a upcoming projects or activity covering physical and social factors and providing measure to minimize their impacts. In real sense it is a tool to evaluate the impact of business activity, profitable planning or action leading to bio-geophysical environment and on the health and well being of human beings and interpreting and making public aware about the same. That is to say, EIA focuses on various complications, hardships faced by environment in terms of curtailment of natural resources or human health proned to the upcoming project. It also examines implications of a project that might harm people, their homeland or their livelihood or other nearby developments. After predicting the problems, an EIA identifies measures to minimize the problems and presents with the optimum guidelines to establish the project in the proposed environment synchronizing with the minimum impacts. In the last three decades, EIA has been recognized as the important tool to decide and minimum the feasibility of the project at the particular site. EIA has more wide scope in comparison of other technique. EIA has the potential to be a basis for negotiation among the developers, public interest groups and planning regulators.

Keywords :: Environmental issues, international agencies, environmental impact assessment, public aware, planning regulators etc.

Introduction:-Environmental Impact Assessment (EIA) is a planning and decision making tool first enshrined in the United States in the National Environmental Policy Act of 1969. The Government of India vide its policy and regulatory functions, ensures protection and improvement of the environment of India. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, mandated to formulate policies, laws and rules related to environment, and issuing environmental clearance (EC) for any developmental project, as in the Schedule of the Environmental Impact Assessment (EIA) Notification, dated 14 September 2006, under the Environmental (Protection) Act, 1986. The EIA notification of 1994 was further improved upon with the more detailed notification of 2006. The EIA system, being multidimensional and interdisciplinary in nature, is concerned with identifying and evaluating direct and indirect impacts of a project on the environment. The EIA system supports project proponents in incorporating environmental considerations in project planning.

EIA by Central Regulatory Authority/ State Environmental Impact Assessment Agency (SEIAA) is guided by the following criteria:

Environmental considerations are integrated into overall project planning; and

The environmental impact assessment is sound, and the proposed environmental mitigation measures are effective.

Environmental impact assessment (EIA) is the evaluation of the effects likely to arise from a major project (or other action) significantly affecting the environment. It is a systematic process for considering possible impacts prior to a decision being taken on whether or not a proposal should be given approval to proceed. EIA requires, inter alia, the publication of an EIA report describing the likely significant impacts in detail. Consultation and public participation are integral to this evaluation. EIA is thus an anticipatory, participatory environmental management tool.

History of EIA in India ::

The Indian experience with Environmental Impact Assessment began over 20 years back. It started in 1976-77 when the Planning Commission asked the Department of Science and Technology to examine the river-valley projects from an environmental angle.

Till 1994, environmental clearance from the Central Government was an administrative decision and lacked

legislative support.

On 27 January 1994, the then Union Ministry of Environment and Forests, under the Environmental (Protection) Act 1986, promulgated an EIA notification making Environmental Clearance (EC) mandatory for expansion or modernisation of any activity or for setting up new projects listed in Schedule 1 of the notification.

The Ministry of Environment, Forests and Climate Change (MoEFCC) notified new EIA legislation in September 2006.

✦The notification makes it mandatory for various projects such as mining, thermal power plants, river valley, infrastructure (road, highway, ports, harbours and airports) and industries including very small electroplating or foundry units to get environment clearance.

However, unlike the EIA Notification of 1994, the new legislation has put the onus of clearing projects on the state government depending on the size/capacity of the project.

The EIA Process ::

EIA involves the steps mentioned below. However, the EIA process is cyclical with interaction between the various steps.

Screening : The project plan is screened for scale of investment, location and type of development and if the project needs statutory clearance.

Scoping : The project's potential impacts, zone of impacts, mitigation possibilities and need for monitoring.

Collection of baseline data : Baseline data is the environmental status of study area.

Impact prediction: Positive and negative, reversible and irreversible and temporary and permanent impacts need to be predicted which presupposes a good understanding of the project by the assessment agency.

Mitigation measures and EIA report : The EIA report should include the actions and steps for preventing, minimizing or by passing the impacts or else the level of compensation for probable environmental damage or loss.

Public hearing: On completion of the EIA report, public and environmental groups living close to project site may be informed and consulted.

Decision making: Impact Assessment Authority along with the experts consult the project-in-charge along with consultant to take the final decision, keeping in mind EIA and EMP (Environment Management Plan).

Monitoring and implementation of environmental management plan: The various phases of implementation of the project are monitored.

Assessment of Alternatives, Delineation of Mitigation Measures and Environmental Impact Assessment Report: For every project, possible alternatives should be identified, and environmental attributes compared. Alternatives should cover both project location and process technologies.

Once alternatives have been reviewed, a mitigation plan should be drawn up for the selected option and is supplemented with an Environmental Management Plan (EMP) to guide the proponent towards environmental improvements

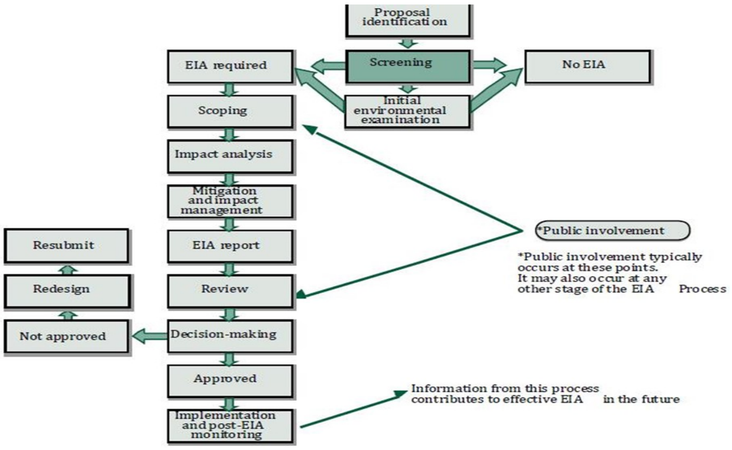

Inventory analysis and hazard probability and index also form part of EIA procedures.

Purpose of EIA ::

The most immediate purpose of EIA, arising directly from these functions, is to supply decision-makers with an indication of the likely environmental consequences of their actions. This is with the aim of ensuring that development only proceeds in an acceptable manner. (To this end, EIA provides the mechanisms for development proposals to be amended where necessary, and likely adverse impacts ameliorated. Although EIA may lead to the abandonment of certain proposals, its focus is more strongly on the mitigation of any harmful environmental impacts likely to arise.) In addition to these 'proximate aims' (Sadler, 1996), EIA is increasingly being positioned within a broader context of sustainability and its original, substantive aim of contributing to more sustainable forms of development is being rediscovered (Glasson et al., 2005). However, its precise role in this regard remains to be clearly defined (Cashmore et al., 2004).

Specialty of an Environmental impact assessment (EIA) ::

Identifies the sources of impacts from the project activities and recognizes the environmental components which are critical to the changes or the impacts;

Predicts the likely environmental impacts on the identified environmental component either using quantitative, qualitative, semi quantitative or hybrid methods.

Find ways to reduce unacceptable impacts and enhance the positive contributions of the project by recommending mitigation measures or by exploring a change in the capacity, technology or design or even by evaluating alternative sites.

Presents to decision makers and other concerned

agencies the results of impact identification, prediction & assessment with options of suggested measures of mitigation & monitoring.

Importance of EIA :: Environmental impact assessment links environment with development for environmentally safe and sustainable development.

Environmental impact assessment provides a cost effective method to eliminate or minimize the adverse impact of developmental projects.

Environmental impact assessment enables the decision makers to analyse the effect of developmental activities on the environment well before the developmental project is implemented.

Environmental impact assessment encourages the adaptation of mitigation strategies in the developmental plan.

Environmental impact assessment makes sure that the developmental plan is environmentally sound and within the limits of the capacity of assimilation and regeneration of the ecosystem.

Benefit of EIA :: EIA is an effort to anticipate measures and weigh the socioeconomic and biophysical changes that may result from a proposed building construction project. Best practice EIA identifies environmental risks, lessens conflicts by promoting community participation, minimizes adverse environmental effects, informs decision makers, and promotes environmentally sound projects. EIA of building construction projects focuses on the prediction of environmental impact of the different components of the construction activity, ways and means to reduce adverse impacts by shaping the project to suit local environmental conditions, and presents the predictions and options to the decision-makers.

The importance of Environmental Impact Assessment (EIA) in planning of human settlement ::

To facilitate decision-making : For the decision-maker, for example the local authority, it provides a systematic examination of the environmental implications of a proposed action, and sometimes alternatives, before a decision is taken. The decision-maker along with other documentation relating to the planned activity can consider the environment impact statement (EIS).

To aid in the formation of development : Many developers see EIA as another set of hurdles for them to cross in order to proceed with their various activities.

To be an instrument for sustainable development : The key characteristics of sustainable development include maintaining the overall quality of life, maintaining continuing access to natural resources and avoiding lasting environmental damage. Institutional responses to sustainable development are, therefore, required at several levels which can be facilitated by EIA.

SWOT Analysis of EIA :: strengths, weaknesses, threats and opportunities Having taken stock of the current state of EIA. Some broad points are made here in the context of the SWOT framework.

Strengths : EIA is well established around the world, as evidenced by its widespread use in statutory development control and other environmental law processes, and its presence in international law and lending institution standards. The use of EIA at different levels of decision-making is growing significantly, as is the range of decision-types for which it is now used. There is a well-developed support infrastructure, from professional groupings (such as the IAIA, and its national affiliates and branches), through to support units in international agencies (UNEP, World Bank, WHO etc.), and to national environmental agencies and tertiary institutions, providing capacity-building, guidance material and other resources. In addition, a vibrant community of researchers and practitioners is engaged in learning about this process, through case studies, and theory-based analyses. A feature of the literature over the last 15–20 years is the increasing maturity of EIA research, and in particular the growing influence of theoretical debates in related areas of knowledge, affecting how EIA is viewed, and potentially opening minds to alternative ways to look at the processes that make up the activity of EIA. For many, EIA will retain its inherent rationalist purpose and character, but that is not incompatible with recognizing how other actors in the process may value different aspects of the process, and that these views should be actively encouraged and protected. Similarly, concepts such as environmental justice and inclusivity ought to inform and add value to the design of EIA practice.

Weaknesses : There is concern in many countries over the poor quality of impact assessment information. Depending on circumstance, this might reflect problems with institutional arrangements, low levels of commitment by proponents, or issues with the nature, extent and quality of training and capacity building in the impact assessment, or elements of all of these. Achieving significant change in practice, to improve EIA quality, often means overcoming entrenched professional and bureaucratic perspectives, which can be very difficult without radical overhaul of the institutional procedures. Therefore, there is a significant gap between the best practice thinking represented in the research and practice literature and the application of EIA on the ground – the resulting practice inertia provides a real challenge to the EIA community as the consequences of poor practice (delays, poor decisions, increased costs to proponents etc.) tend to be blamed on the EIA process rather than on the practitioners themselves.

Threats : As governments look to stimulate economic growth and create employment in response to the

current financial crisis, many are promoting a major expansion of physical infrastructure, encouraging resource development projects, and generally seeking to speed decision-making about development projects. Both EIA and SEA should be even more important in such circumstances, yet the moves taken in some countries to speed up decision-making may weaken the provisions for environmental protection, including impact assessment. One example is the current proposal in England and Wales to change the National Planning Policy Framework to speed development decisions, a proposal that is causing concern in many quarters (Levett 2011). The proposals place significant pressure on local authorities to 'operate to encourage growth and not act as an impediment' and 'plan positively for new development, and approve all individual proposals wherever possible' (Department for Communities and Local Government 2011, paras 13 and 14). In a planning system where the development plan is already given priority over other material considerations (which includes, where relevant, EIA) when determining planning applications, the fear is that the increased weight that will be given to the financial viability of developments will further reduce the influence of EIA on development decisions.

Opportunities : Despite the weaknesses and threats outlined above, we should take comfort from the degree to which EIA as a concept has been accepted by governments, the international legal community, the funding agencies and other key players. The profile of EIA can only increase as concerns over issues such as climate change grow and communities and governments recognize the importance of true anticipatory mechanisms in their decision-making processes. The impact assessment community has the opportunity to build on these foundations, and in particular to shift EIA thinking away from the licensing stage and closer to the critical decisions within organizations. That is, EIA should be integral to project development and design processes, not left to the final legal step before project implementation. This would reduce the emphasis on compliance-oriented EIA, allowing impact assessors to work more constructively with proponents and stakeholders to develop processes that meet the needs of all parties, and in so doing result in projects that are consistent with the environmental and social aspirations of local communities.

Conclusion ::

Over the last 35 years or so, EIA has become an internationally accepted and established tool for environmental management. During this time, EIA procedures have been strengthened and EIA capacity has been improved in many different contexts, including developeddeveloping and transitional economies. There is no doubt that, especially in more mature EIA systems, EIA has made a difference to patterns of development through design modifications, institutional learning, and stakeholder.

****

References ::

1. *Ashby, E., 1976. Background to environmental impact assessment. In: T. O'Riordan and R. Hey, eds. Environmental Impact Assessment. Farnborough, UK: Saxon House, 3–15.*
2. *Bartlett, R.V., and Kurian, P.A., 1999. The theory of environmental impact assessment: implicit models of policy-making. Policy and Politics, 27 (4), 415–433.*
3. *Bond, A.J., and Morrison-Saunders, A., 2011. Re-evaluating sustainability assessment: aligning the vision and the practice. Environmental Impact Assessment Review, 31 (1), 1–7.*
4. *Bond, A., Palerm, J., and Haigh, P., 2004. Public participation in EIA of nuclear power plant decommissioning projects: a case study analysis. Environmental Impact Assessment Review, 24 (6), 617–641.*
5. *Bravante, M.A., and Holden, W.H., 2009. Going through the motions: the environmental impact assessment of nonferrous metals mining projects in the Philippines. The Pacific Review, 22 (4), 523–547.*
6. *Caldwell, L.J., 1978. The environmental impact statement: a misused tool. In: R.K. Jain and B.L. Hutchings, eds. EIA – emerging issues in planning. Urbana: University of Illinois Press, 11–25.*
7. *Caldwell, L.J., 1988. Environmental impact analysis (EIA): origins, evolution, and future directions. Review of Policy Research, 8 (1), 75–83.*
8. *Cashmore, M., et al., 2004. The interminable issue of effectiveness: substantive purposes, outcomes and research challenges in the advancement of environmental impact assessment theory. Impact Assessment and Project Appraisal, 22 (4), 295–310.*
9. *Cashmore, M., et al., 2010. Evaluating the effectiveness of impact assessment instruments: theorising the nature and implications of their political constitution. Environmental Impact Assessment Review, 30 (6), 371–379.*
10. *Cloquell-Ballester, V.A., et al., 2007. Systematic comparative and sensitivity analyses of additive and outranking techniques for supporting impact significance assessments. Environmental Impact Assessment Review, 27 (1), 62–83.*

RELATIONSHIP BETWEEN FRUSTRATION TOLERENCE &MENTAL HEALTH OF SECONDARY SCHOOLGOING ADOLESCENTS

DR. Bimal Mandal
Associate Professor
Seram pore Girls College under Calcutta University
West Bengal, India

Abstract:-THE STUDY INTENDS TO EXAMINE RELATIONSHIP BETWEEN FRUSTRATION TOLERANCE & MENTAL HEALTH OF SECONDARY SCHOOL GOING ADOL ENSCENTS AS WELLAS SEX DIFFERENCE IN THESE TWO VARIABLES. TO A RANDOMLY SELECTED SAMPLE OF EIGHT GRADE BOYS(N=164) & GIRLS (N=170) REACTIONS TO FRUSTRATION TEST & F-INVENTORY WERE ADMINISTERED FOR THE ASSESSMENT OF FRUSTRATION TOLERANCE & BETTER MENTAL HEALTH THAN THOSE OF THE GIRLS? & HIGH FRUSTRATION. TOLERANT BOYS & GIRLS HAD BETTER MENTAL HEALTH THAN THEIR LOW FRUSTRATION TOLERANT COUNERPARTS.

It is not uncommon to notice that two different individuals elicit different.

Patterns of reactions to. Frustration & suffer from different extent of frustration when confronted with the desired with equal amount of valance.

Psychologists are of the constellation of several factors, such as, strength of drive, ego strength, cognitive appraisal of the situation, emotional security, self – involvement, physiological condition- both constitutional & temporal., (BISWAS -1988), acting either indecently or jointly with in the psychological field of an individual's mode of. In the context, Rosenzweig (1944) asserts, an individual's mode of reactions to frustration & of course, the extent of his frustration is determined mainly by individuals global capacity to with stand frustration which he terms (frustration tolerance) which acts as immunity system to tolerate frustration is an individual's capacity to mwith **Stand frustration without failure of psychological adjustment i.e., without restoring to inadequate modes of response". This term presumably bears similar connotation with the terms (ego strength). (Freud) "ego control" (Block & Martin, 1955) & "Hierarchical organizing process" (Breakers, etc 1939).**

Essentially, "frustration tolerance" involves two aspects – motive tonal & intellectual. The (first) emphasizers delay gratification, which seems nearest in the meaning to reality principle of reaction- capacity of the organism to retain impressions after stimulus is removed (Hunter, 1913). Then, as pointed out by Nathan (1963), frustration tolerance situation & the adequacy of conceptual performance in general. Frustration tolerance of an individual, Rosenzweig (1944) asserts, develops through disciplinary measures taken by parents in the ongoing process of child rearing & he mentions, some adequate degree of frustration tolerance for successful adjustment & he con colds, individuals' frustration tolerance increases with age. finally, he concludes, individuals' frustration tolerance increases with age. Finally, he postulates' that (mental) patients generally have low frustration tolerance in com parison to normal subjects implying that frustration tolerance is related to integrative personality – **adjustment.**

Then, it is presumed that "frustration tolerance : is related to mental health , which implies a satisfactory relationship to one's self & ones environment (Rogers , 1957) & also a scientific perception of the world as a whole n(Anand 1984) .

But, systematic study corroborating relationship between the two constructs, seems inadequate.

Furthermore, this relationship may happen to be different for two sexes at the adolescence stage. Particularly in India. Because boys & girls are offered different child rearing practices by parent as well as by the authority of the society.Then in this modest venture the investigator envisages to study relationship between frustration tolerance & mental health pf adolescent boys & girls & it is hoped the out come of this study would reveal some information regarding adjustive mechanism of adolescents & also help parents, teachers & anybody concerned for guidance & counselling these cross section of population who suffer from many hazards of adjustment due to only their rapid development changes at this stage.

OBJECTIVES:

To study sex- differences in (a) "frustration tolerance" & (b) mental health of school – going adolescents.

To find out relationship between frustration tolerance & health of school – going adolescents.

HYPOTHESES:

The study proposes to test the following hypotheses-

(1) There are significant sex differences in frustration tolerance (FT)

(b) mental health (MH) among secondary school – going adolescents.

(2) There is significant relationship between secondary school going adolescents Frustration Tolerance & Mental Health.

High Frustration Tolerant (HFT) & Low Frustration

tolerant.(LFT) adolescents would differ in mental health (MH).

METHOD SAMPLE-

The sample comprised of 334eight grade boys (N=164) & girls (N=170), randomly selected from seven Bengali medium rural secondary schools situated in the District of Midnapore. West Bengal. The majority of subject belonged to families having main source of income on agriculture & the educational level of parents were marginally low. The selection majority of children (mean age 13+) pass through a transitional consequently suffer from high close of adjustment problem (Hurlock , 1987).

ASSESSMENT OF VARIABLES – (a)ASSESSMENT OF FRUSTRATION OF TOLERANCE-

Reactions to Frustration Test – develop mint by the investigator. On the principle of semi – projective picture Frustration Study Technique of Rosen zing (1978). & Standard dazed on secondary school going Bengali adolescents was used.However, for the present investigation only Group Conformity Rating (GCR) scores bin percentages were used as an index of frustration tolerance (Rosenzweig. 1950). GCR is 'An index of the degree to which the responses of the individual on the-F (Picture – Frustration) conform to those typically given by his normative group in similar situation (Rosenzweig. 1978) & these scores are assumed to reflect adequate response to frustration tolerance.)

(Nathan, 1963) Subject s belonging to the treated as the bottom 27 % of cross distribution of GCR were treated as HIGH FRUSTRATION _ Tolerant & Low Frustration Tolerance group respectively.

(b)ASSESSMENT OF MENTAL HEALTH -

F-Inventory prepared by G.S BOSE & revised by SEN (1969) was used to assess mental health .

This 70 – item inventory, each with their response alternatives, comprised twelve dimensions viz. Obsession , Anxiety , Hysteria , anxiety – Hysteria , Paranoia , Schizophrenia, Depression , Manic Depression , Mania , Neurasthenia , Depressions, Manic , Aggression & Psychiatric Anxiety . This test measures global mental health & high score on the inventory indicates greater degree of mental illness.

DATA ANALYSIS DESIGN

To test hypothesis t – test & produced – moment correlations were computed.

RESULT-The following Tables contain the results obtained from the analysis of data.

Table – 1

Mean S.D & t- values for Different Group S

VARIABLE GROUP S.E T- VALUES

BOYS (N=164) GIRLS (N170)

	M		SD		M		S.D		
FRUSTRATION									
TOLERANCE	47.78	9.40		43.52		9.87	1.09	3.91*	
MENTAL HEALTH	93.68	29.23		113.87		28.20	3.15	6.41*	

***SIG. AT . 01 LEVEL**

Thus boys & girls different significantly in both the measure considered in the study & in both the occasions frustration & had better mental health in comparison to that of girls.

Next, Product moment coefficient of correlation was computed between the variables – frustration tolerance & mental health separately for boys & girls as the two sexes 0.23 & 0.19 for boys & girls respectively.

Both the significant values of R, at. 01 level indicated positive association between frustration tolerance v& mental health

(as high score on F- Inventory means high mental illness).

Further test were performed to examine whether High Frustration – Tolerant (HFT) & Low Frustration Tolerant (LFT) group differed in mental health.

TABLE-2

Significance of Mean differences in Mental Health Between Two Condition Of Frustration Tolerance

SEX H F T LFT

M S.D M S.D SE T values

Boys (N=44) 86.32 27.39 103.94 6.06 291*

Girls (N=46) 104.45 24.01 121.88 25.25 515 3.12*

Sig. At. 01 level

Thus, from Table 2 it is apartment that the high Frustration tolerance boys & also such girls have better mental health than their Low Frustration Tolerance counterparts.

Therefore, both the hypothesis was retained.

Discussions

That the girls have low frustration tolerance is predictable by the fact that they have consistent preference for immediate gratification (Kaul, 1986) & therefore, they cannot defer gratification which is one criterion of frustration tolerance. Usually they have comparatively weak ego & are more anxious & less stress tolerance (Coleman, 1981) than males (boys here). Swayed by emotionally stable, more

susceptible to mental illness (Pledge 1984) & more neurotic, (KUMAR 1984)Moreover, girls low frustration tolerance may emerge from Moreover , girls , low frustration tolerance may emerge from their identification with mothers , who in the traditional agriculture rural culture , are subjected to gross neglect of their husbands & druggy of monotonous household activities & thus leading them to greater anxiety & lesser stress tolerant

CONCLUSIONS-From the present study following conclusions emerge-Secondary school – going adolescent girls are less frustration tolerant in comparison to such boys.

(2) Such girls are also relatively less mentally unsound than the boys.

(3) As frustration tolerance is found to be positively associated with mental health. The former variables may be included as one dimension in the future assessment of the latter variable.

(4) Indirectly, this study validates the Reactions to Frustration Test because in the P-F Study , GCR has been taken as one criterion of successful adjustment in frustrating situation.

****

REFERENCES

(1) Anand S.P Guidance for mental health in school J.Indian Edn . 9(5), 43-49.
Barker , R, Dembo R& Lewin, K (1930) , Frustration & regression an experiment with young children , Ivin low Stand . Child Welfare. 18, NO 1.
(3) Bernard , W.H (1961) . Mental Hygiene for classroom Teachers New York, MC Graw Hill.
(4) Biswas P.C (1988). Reactions to frustration in school children Children . Unplug. PHD Thesis , Unit of Kalyani .
(5) Block J. & Martin B.C .Predicting the behaviour of children under frustration. J. Abnormal . Soc . Psyche 51, 127 – 134.
(6) Coleman , J.C Psychology & Effectively Behaviour , Bombay : D.B Trioval.
(7) Coleman , JC. (1981) . Abnormal psychology & Modern Lifer . Bombay D.B Treponemal.
(8) Falls , R.P & Blake R.R (1949) . a quantitative analysis of the Picture – Frustration Study , Japer's . 16, 320-325.
(9) Ghosh , P& Khurana , K . (1986) . A study of the effects of socio – economic status & sex on the levels not the self concept anxiety & adjustment , J. Edn. & psyche, $6 (2 & 3). 141-147.
(10)Hunter , WS. (1913) . The delayed reaction in animal & children . Behaver . Monegro . 2 , NO. 1.
(11) Hurlock, ED. Development al psychology , Delhi Tata Mc Graw Hill . P . 198.
(12) Jindal, CR & Panda , SK. (1982). Anxiety & achievement a Rorschach study of high & low achievers . Ind Edn. Rev 17 (4) , 118- 124.
(13) Kaul , V. (1986) Delayed gratification & the social economically dis advantaged IND . EDN REV 21 (3) , 96-106.
(14) Kumar , D> (1974) . An experimental study of problem solving behaviour as a function of personality , drive & practice , Unplug PHD THESIS PUNJAB UNIV.
(15) Nathan P.E (1963) .Conceptual ability & indicates of frustration tolerance on the Rosenzweig picture Frustration Study J, ProJet Tech , 27, 290 – 297.
(16) Pledge , D. J.Abnormal Psychology . New Delhi TATA MC- GRAW Hill.
(17) Rogers D. (1957) . Mental Hygiene in Elementary Education , NEW YORK HAUGHTON MIFFIN , p.5 .
(18) Rosenzweig. S. (1944) An out line of Frustration theory in JMCV Hunt (Ed) . Personality & the behaviour In J. MCV Hunt (Ed) Personality & the Behaviour Disorders VOI .I , NEWYORK : Ronal press 379- 398.
(19) Rosenzweig, S. (1950) . The Rosen weigh Picture Frustration Study, Psyches SERV, Psyche Serv , Cent K.2,108-115.
(20) Rosenzweig, S. (1978) . THE Rosenzweig Picture Frustration (P-F) Study Basic Manual St. Louis : Pana House.
(21) Sen , A (1969) . Incidence of neurotic symptoms in a cross section of school population in West Bengal Unplug PHD THESIS CAL . U.
(22) Shanmugam . TE (1985). Abnormal Psychology , NEW DELHI TATA – McGraw Hill.

Re-reading Disability: A Study of Ishan Mushahari's Bodo Short Story "Abari"

Doi-https://doi.org/10.56716/4/1478

Dr. Chandrima Sen
Assistant Professor
Department of English
Bodoland University. Mo-8638771701

Abstract:-Ishan Mushahari is one of the most convincing Bodo short story writers. His writings mainly deal with individual dealings, societal implications, cultural encounters and traditional forum. His short story "Abari" is the first printed Bodo short story. The story represents Bodo society, culture and tradition. The Bodos are one of the most prominent tribes of the North Eastern region of India. They have their own distinct vocabulary and grammar. The story designates the underlying concepts of hope, religious beliefs, gender bias and social obligations. The main plot revolves around the female protagonist, namely Abari. Her disability casts her as an independent and self-sufficient woman. This paper intends to study the discourse of disability and its prospective consequences. Disability here appears as an instrument that enables one to move ahead in life and not as a burden. It further acts as a source of strength. This paper attempts to situate the elements of mental, physical and psychological growth of a character like Abari.

Keywords: individual, disability, society, pain

Ishan Mushahari is one of the most significant writers in the history of Bodo literature. His writings exemplify the correlation between man and nature, individual and society, discrimination and tolerance and marginalisation and liberation. His writings give us a glimpse of the Bodo society. The Bodos are a group of Mongoloid people. They are known for their customs, culture and tradition. They are the aboriginal tribes of the North eastern region of India. Bodo short stories occupy a very important place in the history of Bodo literature. The short story collection titled *Modern Bodo Short Stories* is a culmination of eleven short stories. The stories are translated from Bodo to English by Joykanta Sarma and published by Sahitya Akademi. The short story "Abari" by Ishan Mushahari actually deals with woman, disability and society. Mushahari is an evolving Bodo writer who generally talks about, Bodo customs and heritage. He intends to elucidate the aspect of gender biasness and social categorisation in a Bodo ethnic panorama. He further tries to uncover the different possibilities and expectations of leading the life of a disabled.Disability as a genre is an evolving area of study. It ushers on the aegis of physical

changes and mental empowerment. Linton in *Claiming Disability: Knowledge and Identity* writes about the social structure that claims disability and disabled people are the result of: "social and political circumstances that have forged us as a group" (2, 4). The trajectory of disability urges one to believe in oneself. The plot casts the character of Abari not as a born disabled but a result of unaware medical measure. The story begins with the character of Abari as a young and beautiful girl of eighteen years of age. She was attractive and conscious of herself. She had a pleasing personality. Mushahari casts her as a disabled character. Margarat Lloyd states: "the dilemma of identity for an individual experiencing multiple disadvantage and oppression" (82). Disability acts as not a burden for her rather a reality that she urges to face with confidence and valour. She seems to be preoccupied with thoughts and feelings. The story casts another set of characters namely her mother; her elder brother, Ule and her younger sister, Maifri. Mushahari's attempt of not providing a particular name to the mother inscribes the factor of discrimination, marginalisation and subalternity. It is her own mother who tries to subjugate her because of her being a disabled. But Abari never allows others to saturate her aspirations and desires. Susan Lonsdale writes: "For women the status of 'disabled' compounds their status of being female to create a unique kind of oppression" (82).David Michell and Sharon Synder writes in *Narrative Prosthesis* about the narrative structure of text dealing with disability. The present story offers the causes and the consequences of being a disabled in a Bodo society in particular and in an Indian society in general. They say: "The unknowability… consolidates the need to tell a story about it" (6). The concept of disability helps in framing a narrative structure. Berube puts disability as: "ubiquitous" (1). This again expands the scope for the textual understanding of the term in relation to its contextual execution. The story gets divided into three consecutive sections. Each of the sections conceptualises the very conviction of familial oppression, societal inequity and individual upbringing. The first section concentrates on Abari's conscious self and bold outlook. The story emphasises on administering Abari's marriage. The proposal that comes for her was from a lame and hunch backed fellow. She never intends to marry a boy with a 'defective profile' (31). Thus, she replies in negative. Thereby, her family and the villagers begin to counsel her. But the societal interference and familial countenance fail to create utter frustration and doubt in her mind. Her character symbolises solidity and fortitude. She never appears to become a victim of emotions and weakness. The village elders say, as Mushahari writes: "As the bride, so will be the groom. Moreover, where is the inferior among menfolk" (31). Inspite of the distrust and dereliction from the village elders her confidence and sagacity remain constant. In this instance, she realises the obstacles that one faces in leading a life of a disabled. But she takes her disability as a challenge to her womanhood. Her feminine proposition gets personified by her clarity in thoughts and development of mental wellbeing. The story caters to a set of interrogative sentences by Abari like: "How shall I be happy marrying a person whom I cannot accept with all my heart? Am I able to stand on my own feet? Will it be proper to marry such a person?" (31). All these monologues show the amount of rational thinking and intellectual endurance that she dwells with in living her life. Inspite of her disabled nature, she manages to win a weaving competition. She also seems to be an expert in performing household works. She thus proves herself to be self-sufficient and competent in each and every sphere of life. For her, disability was a physical phenomenality and not a mental one. As Seemanthini Niranjana focuses on a female body as a 'sign' or 'code' and how it is socially 'formed' and collectively 'represented' (106). Her physicality never appears to be a hindrance for her liability rather it provides her an assurance to go by her mind. The thinking of her mind suggests certitude and equanimity.

In 2005 Michael Berube considers disability narratives as: "grounded in the underrecognized and undertheorized facts of bodily difference" (570). The present narrative unpacks the theorising impact of feminine disability. The second part of the story brings a climax. Mushahari here manifests varied happenings in Abari's life. Her declination of her first ever marriage proposal arouses the element of anger and arrogance among her near and dear ones. The very decision of not tying the knot with a disabled boy reflects her confidence and optimism. Unlike other girls she also wishes to marry a handsome young man. But the society and her family make a critique of her and thus she becomes a victim of marginalisation and dominance. In such an instance, though she becomes a bit impassioned but emerges out instantly. The story reaches to a climax when Abari's mother and brother prepare for her younger sister's marriage. Mushahari writes: "An upswing of hope and despair ran through her" (32). As Abari seems to be the eldest girl in the family she feels subjugated when the preparation for her sister's marriage begins. She seems to be completely unaware of the fact that the bracelet was kept for Maifri and not for her. The reference to an underlying Bodo custom of accepting the bracelet which means assent to the marriage proposal contributes to the amount of discrimination and abuse done on Abari by her family. In this respect, Abari says to herself: "It has been quite an injustice to accept the bracelet for the younger sister while her elder sister is yet to be married" (33). She further considers this to be a 'sin', a transgression. Her mother actually plays an unscrupulous scheme on Abari. When Abari questions her mother she tries to wind up the whole issue by saying that 'you will know later' (33). Abari appears to be completely ignorant of the then recent developments within her family. But still then she seems to be completely confident about what she wants in her life. The part ends with: "A smile flickered on her lips as she paced about with measured steps, head bowed down" (33). This

particular line suggests the idea of disability as an existential discourse. Mushahari dwells not just with her disabled body but also with her inner psyche as well. The inner working of her mind accelerates her objective to live in a tranquil state. As Goodley writes: "Disability is both a signifier of inequity and the promise of something new and affirmative".

The concluding section of the story urges one to visualise the physical decay and psychological pacification of Abari. In 2007 Thomas writes disability actually relates to the ostracization of people for having cognitive lesion, corporal worry and internal impediment. She somewhat becomes despondent with the thought of her sister's wedding. Though she was aging yet her intellect to achieve satisfaction in life seems to be a constant desire. She never attends to the villagers allusion and comment about her. Her disability acts as a motivating and abiding force. All the misdoings in her life give her the strength to begin anew. The story reads: "In the mirror of her mind, an image of a face repeatedly reflected. She blushed. She felt moribund. Her heart sought out, but the lip was tight" (35). On the other hand, she faces insults and shame but never becomes a victim of social prejudice and familial intrigue. The ending of others hope becomes a beginning for her living. As in 2018 Slee remarks: the phenomenon of disability is an element of collective rhetoric. The concluding part of the story hints at the arousal of love in the mind of Abari. She comes to know that a handsome boy from a nearby village loves her and wants to get married to her. At first she thinks about her mother but later her mind answers in affirmative. She comes to know that the boy wants her to elope with him. She agrees and as the story reads: "One day, in an auspicious moment, Abari set out to go to the young man's house … Yet she was filled with joy and happiness" (36). This development in her character manifests the idea of satisfaction, fulfillment and contentment.The character of Abari appears to be not diseased but with 'individual differences' which is largely 'acceptable' of 'being human' (39). In Disability Theory, Tobin Siebers writes in the Introduction: "… disability studies relates to representation itself" (2). He says: "More specifically, disability names the states of social oppression unique to people with disabilities, while asserting at the same time the positive values that they may contribute to society" (4). Siebers quotes Charles Taylor who says: "My identity is defined by the commitments and identifications which provide the frame or horizon within which I can try to determine from case to case what is good, or valuable, or what ought to be done, or what I endorse or oppose" (15). Further, he also mentions Alcoff's saying that goes as: "identity is not merely that which is given to an individual or group, but is also a way of inhabiting, interpreting, an objective social location and group history" (15). He also refers to Mark O' Brien's poem "Walkers" where he defines disability as: "Disability's no big deal" (13).Disability here appears more as a social creation. The World Health Organization defines disability as: "…not an attribute of an individual, but rather a complex collection of conditions, many of which are created by the social environment" (2001, pp. 28). Kuppers also states that: "disability culture is the difference between being alone, isolated, and individuated with a physical, cognitive, emotional or sensory difference that in our society invites discrimination and reinforces that isolation…" (109).In the Introduction Lennard J Davis writes: "disability, always an actively repressed" aspect, now gains a new, nonmedicalized, and positive legitimacy…" (xv). Moreover, Tom Shakespeare writes: "Like gender, disability is a culturally and historically specific phenomenon, not a universal and unchanging essence" (3). Instead of feeling self-pity, Abari gets annoyed anf feels gratified for her physical impairment. Mushahary talks about the civil despotism and exclusion and not about individual deficits. She never suffers from a sense of personal inadequacy and defeat.The story outlines the binary between abled and disabled people that foregrounds the gendered implications in a Bodo society. Here, disability acts as a metaphor that commemorates bodily differences, thought provocation and psychological variations. The structural framework of the story intensifies the affirmative side of disability. It also at the same time suggests an open ended rhetoric. The story suggests how one's survival strategy depends merely on the psychic mental set up and not on the bodily manifestation. The present study attempts to create an awareness among the reading folk about a sustainable social and individual development. The paper aims to break the stereotypical malice of objectifying the existence of a feminine disabled character. Her position never appears to be scintillating howsoever tough the situation be. The present study urges for an inclusive and reformative society.

****

Works Cited:-

1. Berube, Michael. *Disability and Narrative*. PMLA 120 (2): 568-576, 2005
2. The Secret Life of Stories: From Don Quixoteto Harry Potter, How Understanding Intellectual Disability Transforms the Way We Read. New York: New York University Press, 2016.
3. Dan Goodley, Rebecca Lawthom, Kirsty Liddiard and Katherine Runswick-Cole. Provocations for Critical Disability Studies, Disability and Society, 34:6, 972-997. 2019
4. Davis,Lennard J.*The Disability Studies Reader*.New York: Routledge, 2006.
5. Gabel, Susan L. *Themes of Disability in Literature*. Michigan Reading Journal.Vol. 23. Issue 1. Article 11. 1990.
6. Kuppers, Petra. *Disability Culture and Community Performance: Find a Strange and Twisted Shape*. Houndmills and New York: Palgrave, 2011
7. Linton, Simi. *Claiming Disability*. New York and London: New York University Press, 1998
8. Lloyd, M. "Does She Boil Eggs? Towards a Feminist Model of Disability". *Disability, Handicap and Society*. 7 (3): 207-21. 1992.
9. Lonsdale, Susan. *Women and Disability*. London: Macmillan, 1990.
10. *Modern Bodo Short Stories*. Trans. Joykanta Sarma. Sahitya Akademi, 2003.
11. Niranjana, Seemanthini. Feminty, Space and the Female Body: An Anthropological Perspective. In Embodiment: Essays on Gender and Identity. Ed. M. Thapan. New Delhi: Oxford University Press, 1997.
12. Shakespeare, Tom. "The Social Model of Disability." The Disability Studies Reader. Ed. Lennard J. Davis. New York: Routledge, 2010
13. Siebers,Tobin.*DisabilityTheory*.Michigan: University of Michigan Press, 2008
14. Slee,R.*Inclusive Education isn't dead it just Smells Funny*.London: Routledge, 2018
15. Synder, Sharon L.and Mitchell, David.T.*Narrative Prosthesis*. United States: University of Chicago Press, 2006
16. Thomas, C. Sociologies of Disability, 'Impairment', and Chronic Illness: Ideas in Disability Studies and Medical Sociology. Palgrave, 2007

MENTAL HEALTH DISORDER IN ADOLESCENTS

Tuli Bhattacharya
State Aided College Teacher,Department of Education,
Serampore Girls' College

ABSTRACT: Adolescence is a unique and formative time. Physical, emotional and social changes, including exposure to poverty, abuse, or violence, can make adolescents vulnerable to mental health problems.Multiple factors affect mental health. The more risk factors adolescents are exposed to, the greater the potential impact on their mental health. Factors that can contribute to stress during adolescence include exposure to adversity, pressure to conform with peers and exploration of identity.Emotional disorders are common among adolescents. Anxiety and depressive disorders can profoundly affect school attendance and schoolwork.Mental health problems are the leading cause of health-related disability in children and adolescents worldwide and are a global health challenge of the twenty-first century.

KEYWORDS:-
Unique,Violence,Exposed,Exploration,Profoundly,Disability.

INTRODUCTION :Mental health problems are among the leading causes of a health related disability among children and adolescents worldwide.The prevalence of Mental Health disorders has been reported to increase in adolescence. Worldwide estimates indicate that up to 20% of children and adolescents have mental health disorders. (Kessler and others,2005,Patel,Flisher and others,2007). Mental health is largely determined by the social economic and physical environment in which people live (WHO,2014).Mental health is intrinsically positive and holistic in nature.

It is estimated that globally mental health conditions affect about one in seven children and adolescents ages 10 to 19. Depression is among the leading causes of disability among young people. Youth with mental health conditions face considerable stigma, which serves as a major barrier to help seeking. A recent study in one European country estimated that the proportion of people affected by mental illness who experienced some exam form of discrimination at the same point during their illness to be approximately 70%(Chambless,2010).

Discrimination was likely to be greater in developing countries where there was less recognition and awareness of Mental Health issues. Help seeking behavior was less likely among younpeople who are even more likely to be impacted by stigma, embarrassment and lack of basic knowledge about mental health(Saxena and others,2007). Gender differences in mental health problems have been reported with girls reporting more symptoms of mental health problems than boys(Derkikman-Eiron et all.2011,Schulte-Korne,2016)

OBJECTIVES :

The primary purpose of the present report is, by drawing on the available research, to raise awareness of youth mental health conditions and start a global conversation regarding strategies for addressing the challenges faced by young people. Specifically, the objectives of this report are to :-

1>Disseminate information on youth with mental health conditions :

Discrimination scientifically based information is critical to promoting successful development and socialization of adolescence and youth, as well as for challenging misconceptions and eliminating stigma. This information concerns the relevant stakeholders- including your families, youth Care,providers,educators, communities and mental health agencies for effecting change.

2> Raise awareness of the cultural and contextual dimensions of mental health conditions faced by youth:-

Cultural elements, including social attitudes,peer group norms, religious beliefs, family values and other socio-cultural factors are strongly related to the behavior of the youth.Awareness and respect for these and other cultural factors as well as the underlying social circumstances of individuals, must be considered when addressing youth mental health concerns.

3> Identifying critical skills to be developed among youth with mental health conditions to overcome challenges to their self development and social integration:-

Building skills relates to the promotions of competencies to facilitate the transition process for youth with mental health conditions from development to independent living. Life skills, social emotional competence and social skills coupled with cognitive and occupational skills are instrumental for the successful transmission to adulthood and social integration.

4> increase understanding of support systems and raise awareness of access issues among youth with mental health conditions:-

Well coordinated comprehensive programmes and support services are necessary to prevent mental health conditions, as well as to aid youth who already have mental health conditions. A Central aim of the present report is to increase awareness of these issues, thereby engaging educators ,peers, parents and others in addressing these concerns to their daily interactions with youth and youth focused policies and programming.

5> Summarize Research and provide case studies of of effective programs and approaches for preventing and addressing youth mental health conditions:-

The report identifies programmes, policies, and strategies which have been successful in promoting the social integration of youth with mental health conditions. These are examples of various intervention approaches from each geographical region from both developing and developed countries.

SPECIFIC DISORDERS

Depression :- Depression is one of the most widely studied mental health condition because of its large burden on individuals, families and society and its links to suicide. It is the most widely reported this order, with over a quarter of adolescents affected by at least mild depression symptoms. It is more than twice as prevalent among females ages 15to 20, compared to males of the same ages, according to an analysis of data from the 1990 to 1992 National Comorbidity study.

Anxiety Disorder :- National prevalence data and specific anxiety disorders in adolescents are limited, although original studies suggested that the combined prevalence of anxiety disorder is among the highest in childhood and adolescence. National datawere located on post-traumatic stress disorderL(PTSD); according to the 1995 National survey of adolescents (NSA) 3.7 % of all mental meals and 6.3 % of all females ages 12 to 17 were reported to have PTSD in 1995. Among these youths, nearly half of the males (47.3%) also had the symptoms of major depressive disorder as did nearly 30% of the females.

Substance Abuse Disorder :- Although substance abuse incidence is widely reported from several national surveys using different samples,fewer sources assess the prevalenceof the more disabling psychiatric diagnosis of substance abuse dependence disorder, in which one's life is controlled by substance news.The 1995 in the NSA estimated that 8.2% of bill and 6.2%of female ages 12-17 have a substance abuse dependence disorder. In 2006 that NSDUH data showed that 8.2 % of 12 to 17 year olds depended on alcohol or illicit drugs for this behavior was slightly higher among female adolescents than male peers (8.4%-7.9%)Conduct disorder and oppositional defiant disorder :-Stealing, damaging property ,and threatening others which were associated with contact disorder diagnosis .Using 7-15 criteria in the DSM-IV diagnosis for conduct disorder,addhealth found that 3.4 % of adolescents ages 12 to 17 met the criteria for diagnosis of a contact disorder.Eating disorder:- In 2005 4.5 % of students Tu a or committed and 6.3 to diet pills powder or liquid without a doctor's advice to lose weight avoid gaining weight. Learning disability and attention deficit and hyperactivity disorder ADHD:- Learning disabilities and ADHD disorders are functional impairments that can challenge relationships and well-being.Youth learning disabilities are nearly twice as likely to report emotional disorders and suicide attemts.In 2005, 9.2% of 12-17 years olds were reported to have a learning disability, compared to 6.5 % of 5 to 11 years olds.ADHD was identified among 8.9 % of the adolescents and 6.1 % of the children of the children.

CONCLUSION

National data make clear that a sizeable proportion of Young people have symptoms of emotional distance, and analysis using add health data,For example shows that is sexual minorityyouth report higher level of depression substance use and suicide attempts. While they are clearly limitations in our understanding of adolescence mental health we know enough to act.

****

REFERENCE

1. Rice, M. S., Purcell, R., & McGorry, D. P. (2018). Adolescent and young adult male mental health: Transforming system failures into proactive models of engagement.
2. Journal of Adolescent Health, 62(3), S9–S17.
3. Mojtabai, R., Olfson, M., & Han, B. (2016). National trends in the prevalence and treatment of depression in adolescents and young adults. Pediatrics, 138(6), e20161878.
4. Jackson, M. (2009). Understanding links between adolescent health and educational attainment. Demography, 46(4), 671–694.
5. Boudon, R. (1974). Education, opportunity, and social inequality : Changing prospects in western society. Wiley
6. World Health Organization (2017) Mental health atlas 2018. World Health Organization, Geneva
7. Schaefer JD et al (2017) Enduring mental health: prevalence and prediction. J Abnorm Psychol 126(2):212–224
8. Dey M, Landolt MA, Mohler-Kuo M (2012) Health-related quality of life among children with mental disorders: a systematic review. Qual Life Res 21(10):1797–1814
9. Torsheim T et al (2006) Cross-national variation of gender differences in adolescent subjective health in Europe and North America. Soc Sci Med 62(4):815–827

Learning as a Bystander: Case of *Lakshami* in Shyam Benegal's *Ankur*

Vaishali Yadav
Research Scholar
Indira Gandhi University, Meerpur Ph.- 9896372170

Abstract: The world inhabited by humans is a complicated one, woven into the fabric are concepts of have's/ have not's, black/ white, master/servant and so on and so forth. The society has demarcated borders and fixed roles for each and every category of people with no scope for defiance. One such stereotyped category is that of the domestic help. It is these stereotypes that force people to live a life they despise with no light at the end of the tunnel. Their plight has provided the plot to many narratives which in turn inspired stage plays and film adaptations. Film or as widely known as cinema, an all -pervasive art form has taken multiple stances while realistically representing the predicament of the domestic servants. On one hand cinema vows to curb the evil that is devouring the society and on the other it tends to rejuvenate and re-establish the same by way of repeated representation.
Keywords: Class division, stereotypes, cinema, binary opposition.

Introduction

Since it's invention in 1895 cinema has come a long way to become the part and parcel of every human's life. There are a multitude of things that unite people across continents but nothing as does cinema. Irrespective of origin, language, caste, class people look at cinema and it's various forms with the same intent i.e. entertainment. But only a few can see beyond the façade that is cinema. Selection and representation of themes on the screen is not innocuous and a careful analysis will reveal that they are loaded with seductive snares and prejudicial stereotypes. It is rare to spot cinema without any designs thereby violating the very being of to keep the viewer in the company of stimulants, robbing her/him of his sense of body, mind and emotions. French anthropologist Claude Levi Strauss in 1900s propounded his theory of 'binary opposites' and focussed on their existence mainly in the narratives either written or made into films. Based on his theory it can be very well understood that the basic structuring of cinema is based on binaries. Hero /villain, comic/tragic, rich/poor are some of the most common binaries represented in cinema of all types. Absence of these binaries would render it not just formless but meaningless. Similarly, a widely acclaimed and enjoyed art form such as cinema can not possibly have a unidirectional impact on the audience. It can bring about multifarious transformation in the lives of the viewer depending on the representation of the themes on those big flashy screens. Although viewer's perception also plays an effective role in determining the meaning of the film or a particular shot but here, the focus will remain centred around the execution of themes on the screen and their impact in demolishing or re-establishing the age old stereotypes rampant in the name of customs/ traditions.

One such widely circulated stereotype in the society is about the particular way in which the servants or domestic help are expected to behave, while catering to the needs and desires of their masters. And especially in Indian societies servants are looked down upon as undesirable and yet believed to be indispensable parts of a well- functioning household. From sunrise to sunset, they drag themselves in making our lives easier running across the house performing almost all the errands but still remain oblivious to the eyes of the master. Possibly the master arrogantly chooses to ignore their presence, a presence so widely impactful and so little acknowledged. Always at the beck and call of the masters they are also exploited in ways known only to them. Common human characteristics such as courage, aggression, retaliation, self – esteem, integrity, freedom, are undesirable and unacceptable of servants in the house/community. It's almost like servants are a completely different variant of humanity devoid of all the human emotions that could possibly be a threat to the well established bourgeoise system. A good servant, or even better 'a bearable servant' as servants are always considered as a bad influence on society because of illiteracy, ill-mannerism, unhygienic living, and so on. Imagining a good servant conjures up the image of submissiveness, voicelessness, vulnerability and the state of being always at the mercy of the master. These demarcations are so rigid that any sort of deviation from them is not just unacceptable but a punishable offense. Hansen sums up the representation of servants in media, film and literature as "The literary writer's servant is there in an active variety: as a loyal tool, mercenary opportunist, active agent, disturber of the social order, representative of the rising bourgeois, forerunner of the revolution" (1989:22). The view that servants threaten the social order is reinforced in Dipesh Chakrabarty's comment on servants where he states that servants represent the dirt, disease and "rubbish" of a disorderly outside world (Dickey,2000). Servants are regarded as harbingers of disorderly and filthy outside which tends to pollute the order and cleanliness of the upper class inside. At the same time servants are also regarded as markers of having achieved upper or middle-class status. They are considered as agents of maintaining the class status. There is contradiction inherent

in the views about servants. On one extreme they are regarded as the 'disturbers of the social order' whereas on the other extreme they are an indispensable part of every household, and a necessary tool to maintain the social status. The social order they are blamed of disturbing is actually established and maintained by them. Voltaire once wrote "the comfort of the rich depends upon an abundant supply of the poor" and it's the comfort that compels the rich to let the poor in their so called safe and ordered inside. Sara Dickey talks

about the major class divisions based on two or three –part models of class structure. The two-part model consists of the rich and the poor and the three-part model consists of lower, middle and upper classes. For both the have's and have nots' there are different connotations of these class divisions. For poor there are rich and poor. For the rich there are upper class, middle class and then the lower class. The crux of this class division concept is that existence of one class is inevitable to the existence of another class. Imagine a classless and casteless world, where all are economically and socially equal. There would be no servants at all. And if there are no servants there are no masters. So, the social order outside and inside is maintained by both masters and servants alike.

Widely accepted notion of a servant is, one who is submissive, available 24x7 for their master's errands, apprehensive of mistakes, low class, ill-mannered and powerless with a need of uninterrupted monitoring. In the December 17, 2011 issue of *The Economist,* servants have been referred as "necessary evils". The unwillingness of masters to do the household chores gives rise to the necessity of servants. Even if they regard servants as low-bred, uneducated, unsophisticated, and above all dirty and unhygienic they are still in a dire need of servants, since having a servant is an indicator of high- class status and also a one stop solution for hassle free life. In the same issue of *The Economist,* one mistress voiced her dilemma as "bad with her; worse without her" and referred to maids as 'paid enemies'. Apart from the notion of order, purity and hygiene there is another reason for the master's dislike of the servants and that is security. Sara Dickey in her paper talks about the dangers posed to the households by 'servant's entrances and exits'. Servant's exit is a matter of concern for the masters, for with the servant goes all the details of their cultural and material wealth. Domestic help in the house is supposed to know the masters inside out and hence the fear of the exit. But it's not the exit that worries them much but the entrance in some other neighbourly house where supposedly the servant will spill all the secrets resulting in ruined reputation. And still there is an undying need and requirement of having a servant. Hiring servants in middle and upper-class houses does not only indicate the status one has achieved but also 'reinforce gender and class stereotypes' (Srinivas). Gender holds great importance while looking for servants as 'caring for the home, nurturing the family are women's responsibilities' says Sara Dickey. Household is mainly regarded as women's domain and hiring maids reinforces such notions of gender bias. Also, women are considered as more obligatory and submissive as compared to their counterpart and so the preference of maids over male servants. Gender, class, caste, religion and ethnicity play a great role in the lives of house helpers.

Indian cinema is flooded with themes of servitude depicting their helplessness and misery solely for the entertainment of the wealthy folks. Mrinal Sen's *kharij,* Chetan Anand's *Neecha Nagar,* Bimal Roy's *Do Bigha Zameen,* Shyam Benegal's *Ankur* and thousands of such other movies have been made, circulated, widely accepted and enjoyed in the name of realistic art. Their pain, suffering, helplessness, unrealised dreams, shattered hopes, broken and leaking homes, tattered clothes, unreciprocated cries for help all made into source of amusement for people sitting in their magnificent bunglows and motor cars. Shyam Benegal's *Ankur* released in 1974 gives heart wrenching representation of exploitation of a domestic worker Lakshami, played applaudingly by Shabana Azmi. After being abandoned by her husband Kishtayya, she faced multifarious exploitation on the hands of her young master Surya, who is shown to be an educated man although his actions speak otherwise. Married a child bride, and while waiting for her to come of age, driven by his bodily desires he indulges in sexual intimacies with Lakshami, the domestic help. Surya promised to take care of her until death do them apart, and Lakshami believed him. Promises like these abound in every corner of their lives and yet they fall for it hoping against the hopes that maybe this time the promise so made will be kept. But contrary to their expectations such promises are nothing but bait to lure them into satisfying the ego of their masters. Exactly what happened with Lakshami, when he found out that she was carrying his child he pressurised her to abort it failing which he would deny having any sort of relationship with her. As opposed to Lakshami, he actually enjoyed a position of superiority and no one would have had the courage to challenge or oppose him. On the other hand, Lakshami was forced to bear the oppression as per her master's whims and fancies solely for being poor, and a low caste female domestic help. Surya's father was well aware of his son's misdeed and Lakshami's status as a servant and yet he allowed his son to indulge with her who otherwise was regarded as untouchable and low-bred. If discovered and opposed by the village people, she will be sacrificed as the shameless slut who trapped an innocent boy by her

charms and Surya would walk out freely without even a hint of guilt. And as expected of her, as it is expected of the entire community of servants, she would stand there voiceless and vulnerable waiting for them to decide her fate. She would have been turned out of the village or may be incinerated for committing an unforgiveable crime of having sexual relationship with a man outside the wedlock, for she is a mere servant whereas the man would walk free as a predator waiting for his next prey after having devoured the last one, for he is the master. The film aptly depicts the plight of servants as desired and enjoyed by the bourgeoise and so did most of the films of the time. The climax of the film presents a clear contrast to the widely accepted notion of master-servant relationship. Kishtayya is back completely oblivious of Surya's acts, is willing to take up a job at his house for providing a better future to the kid who he believes to be his. Surya is scared at the sight of kishtayya walking towards him, imagining that he had come to take revenge and beats him mercilessly with a stick until Lakshami intervens to save her husband. It is in this scene for the first time that Lakshami, the servant is shown strong and determined while hurling abuses at Surya, the master in a very aggressive tone, becoming an eye opener for the audience who otherwise had imagined Lakshami to be incapable of such words and tone considering her status as a mere domestic help. But she rose above the stereotypes and went above and beyond the role prescribed to her by the society to save her mute and dumb husband from the tyranny of her master who had violated her in the name of love.

Owing to her husband's impotency a woman of the village deserted him and started living with a man of some other village. She was dragged from her hair by her husband's brothers to the panchayat. This is how the Sarpanch gave the verdict- -

" *aurat sirf mard ki hi ni gharwalon ki bhi hoti h, khandan or jaat paat walon ki bhi hoti h'*

Implying thereby that a woman can seek sexual gratification outside the wedlock but only from the men of her own caste lest she be defiled and be a disgrace to the entire community.

Lakshami, who was among the crowd learnt that the concepts of morality and immorality are relative of caste and class divisions. And that people choose to mould them to suit their needs and desires. Shyam Benegal shows Lakshami standing near the window around dusk and brooding over what she saw this morning. Then comes the representative of a hypocritical patriarchal society, Surya, who cajoles her and seduces her promising to be by her side forever, a hollow.promise that abounds the life of such people. Lakshami is well aware of the consequences and the horrible reality of the man but she gives in either for the want of love or a child, since her husband Kishtayya is unable to impregnate her.

The film is a satire on the hypocrisies of the male dominated society and the bitter reality of caste division, where the upper class is comfortable violating the women of the lower caste who are otherwise repulsed for being untouchable

****

Works Cited

1. Dickey, Sara. *Cinema and the Urban Poor in South India*. Cambridge University Press, 1993.
2. Kumar, Shanti. "4. Film/City: Cinema, Affect, and Immaterial Labor in Urban India".
3. *Precarious Creativity: Global Media, Local Labor*, edited by Michael Curtin and Kevin
4. Sanson, Berkeley: University of California Press, 2016, pp. 49-62.
5. https://doi.org/10.1525/9780520964808-006
6. Ahmed, Akbar S. "Bombay Films: The Cinema as Metaphor for Indian Society and
7. Politics." *Modern Asian Studies*, vol. 26, no. 2, 1992, pp. 289–320.,
8. doi:10.1017/S0026749X00009793.
9. Qayum, Seemin, and Raka Ray. "Grappling with Modernity: India's Respectable Classes
10. and the Culture of Domestic Servitude." Ethnography, vol. 4, no. 4, Dec. 2003, pp. 520–
11. 555, doi:10.1177/146613810344002.
12. Lévi-Strauss, Claude. "Structuralism and Myth." *The Kenyon Review*, vol. 3, no. 2, Kenyon
13. College, 1981, pp. 64–88, http://www.jstor.org/stable/4335186.
14. Dirks, Nicholas B. *Castes of Mind: Colonialism and the Making of Modern India.* Core
15. Textbook ed. Princeton University Press, 2011. *Project MUSE* muse.jhu.edu/book/36417.
16. Bharti, Swami Agehananda, 1977. "Anthropology of Hindi Films," Folklore 18,8: 288- 300
17. Das Gupta, Chidananda, 1981, *Talking About Films.* New Delhi: Orient Longman. 1991. *The*
18. *Painted Face* . New Delhi: Roli Books
19. Driver, Edwin D. and Aloo E. Driver. 1987.*Social Class in Urban India: Essays on*
20. *Cognitions and Structure.* Leiden: E. J. Brill.
21. Hansen, Karen Tranberg. *Distant Companions: Servants and Employers in Zambia, 1900–*
22. *1985*. Cornell University Press, 1989, http://www.jstor.org/stable/10.7591/j.ctt207g71p.
23. Dickey, Sara. "Permeable Homes: Domestic Service, Household Space, and the Vulnerability
24. of Class Boundaries in Urban India." *American Ethnologist*, vol. 27, no. 2, [Wiley,
25. American Anthropological Association], 2000, pp. 462–89,
26. http://www.jstor.org/stable/647180.
27. Srinivas, Lakshmi. "Master-Servant Relationship in a Cross-Cultural Perspective." *Economic*
28. *and Political Weekly*, vol. 30, no. 5, Economic and Political Weekly, 1995, pp. 269–78,
29. http://www.jstor.org/stable/4402351.

नागफनी

अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला त्रैमासिक शोध-साहित्य

'नागफनी' पत्रिका द्वारा देश के प्रतिष्ठित साहित्यकारों एवं समाज सेवियों को वर्ष 2017 से 2022 तक प्रदान किये जाने वाले राष्ट्रीय अवार्ड की सूची :-

क्र	नाम	पता	सम्मान /अवार्ड का नाम	वर्ष
1	प्रो.(डॉ.) सीताराम पवार	कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़, कर्नाटक	भारत रत्न डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2017
2	प्रो. डी.के . मेहरा	सरदार वल्लभ भाई पटेल यूनिवर्सिटी वी वी नगर आनन्द,गुजरात	भारत रत्न डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2018
3	डॉ.सत्य प्रकाश प्रसाद	जामिया मिल्लिया इस्लामिया नई दिल्ली	महात्मा ज्योतिबा फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2018
4	डॉ.मो.जमील अहमद	चेयरमैन बी ओ एस डिपार्टमेंट ऑफ़ हिंदी तेलंगाना यूनिवर्सिटी निजामाबाद, तेलंगाना	नामदेव ढसाल राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2018
5	डॉ.वी.पार्वती	तेलंगाना यूनिवर्सिटी निजामाबाद, तेलंगाना	माता सावित्री बाई फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2018
6	Dr. B. Krishnaiah	School of Humanities University of Hyderabad	दया पवार राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2018
7	डॉ.संतोष कुमार सोनकर	इंदिरा गांधी नेशनल ट्राइबल यूनिवर्सिटी अमरकंटक (म.प्र.)	भारत रत्न डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2019
8	प्रो.के. एस. नेताम	संजय गांधी स्मृति शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)	'धरती आबा' बिरसा मुंडा राष्ट्रीय सम्मान	2019
9	प्रो.अशोक कुमार सभ्रवाल	हिन्दी पंजाब यूनिवर्सिटी चंडीगढ़	महात्मा ज्योतिबा फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2019
10	प्रो. काम्बले अशोक	कर्नाटक स्टेट ओपन यूनिवर्सिटी मैसूर,कर्नाटक	माता सावित्री बाई फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2019
11	प्रो. (डॉ.) तारु एस. पवार केरल	हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल	नामदेव ढसाल राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2019
12	डॉ. विजय एफ. नगन्नावर	अंग्रेजी विभाग,रानी चनम्मा विश्वविद्यालय बेलगावी	दया पवार राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2019
13	प्रो. दिनेश कुशवाह	अवधेश प्रताप सिंह विश्व विद्यालय रीवा (म.प्र.)	भारत रत्न डॉ.बाबा साहब अम्बेडकर राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2020
14	प्रो. ईश्वर जे.पवार	CT BORA CENTRE FOR PG AND HINDI RESEARCH SHIRUR PUNE	'धरती आबा' बिरसा मुंडा राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2020
15	डॉ. दोडा शेशु बाबू	मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्व विद्यालय हेदराबाद	महात्माज्योतिबा फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2020
16	डॉ. मायादेवी	बोर्ड ऑफ़ स्टडी चेयर पर्सन हिंदी विभाग ओ.यू. हेदराबाद	माता सावित्री बाई फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2020
17	प्रो.(डॉ.)धीरज भाई वनकर	गुजरात विश्व विद्यालय अहमदाबाद	नामदेव ढसाल राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2020
18	डॉ.मुंजाजी इंगोले	कला बाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय गंगाखेड जिला-परभड़ी, महाराष्ट्र	दया पवार राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2020
19	डॉ.जयप्रकाश कर्दम- प्रख्यात लेखक	प्रख्यात दलित लेखक नई दिल्ली	भारत रत्न डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2021
20	डॉ. बी.के. कलासावा	सौराष्ट्र राजकोट गुजरात	'धरती आबा' बिरसा मुंडा राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2021
21	प्रो.श्यामराव राठोड़	अध्यक्ष हिन्दी विभाग अंग्रेज़ी अवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय,हैदराबाद	महात्मा ज्योतिबा फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2021
22	डॉ. राजकुमारी	जाकिर हुसैन कॉलेज यूनिवर्सिटी ऑफ़ दिल्ली	माता सावित्री बाई फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2021
23	प्रो. संजय एल. मादार	दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा हेदराबाद	दया पवार राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2021
24	प्रो. सुरेश चन्द्र बिहार	डीन,साउथ बिहार युनिवर्सिटी गया	दया पवार राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2021
25	डॉ. विष्णु सरवदे	दलित आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय,हैदराबाद	भारत रत्न डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2022
26	श्री भगवानदास मोरवाल प्रख्यात लेखक	WZ-745G, दादा देव रोड, नजदीक बात चौक,पालम नई दिल्ली-45	'धरती आबा' बिरसा मुंडा राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2022
27	प्रो.व्ही. कृष्ण	दलित आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय,हैदराबाद	महात्मा ज्योतिबा फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2022
28	डॉ. जी.व्ही.रत्नाकर	मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय हेदराबाद	माता सावित्री बाई फुले राष्ट्रीय साहित्य सम्मान	2022
29	प्रो.(डॉ.) पान सिंह	हिमाचल युनिवर्सिटी शिमला	नामदेव ढसाल राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2022
30	डॉ.राजेश करकाल	मुंबई	दया पवार राष्ट्रीय दलित साहित्य सम्मान	2022

नागफनी परिवार आप सभी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है .

शोधालेख प्रकाशन के मानक

व्यक्तिगत पंच वार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी । शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा स इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं ।हिन्दी की स्तरीय पत्रिका नागफनी के जो सदस्य हैं उनका ही आलेख प्रकाशित होगा ।

जो भी व्यक्ति शोधालेख भेजना चाहते हैं उसमें निम्नोक्त बिंदु आवश्यक हैं जैसे-

1.सरांश
2. विषय वस्तु / बीज शब्द
3.भूमिका / प्रस्तावना
4. मुख्य अंश / उद्देश्य
5. परिणाम / निष्कर्ष
6. सन्दर्भ
7. शब्द मर्यादा अधिकतम शब्द 3000 । इससे ज्यादा शब्द है तो कार्यकारी संपादक से परामर्श कीजिएगा ।
8. सत्यापन एवं सहमति पत्र देने पर ही आलेख के सम्बन्ध में निर्णय होगा ।

मैं .... सत्यापित करता/करती हूँ की नागफनी के लिए प्रस्तुत शोधालेख शीर्षक...मौलिक एवं अप्रकाशित है स लेखन संबंधित सारे संदर्भ सत्य है । किसी भी अंश के विवादित स्थिति के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूँगा / रहूँगी । साथ ही प्रस्तूत शोधालेख में नागफनी के पीयर रिव्यू कमिटी को संशोधन, संपादन और संवर्धन करने की सहमति जताता / जताती हूँ । शोधालेख प्रकाशित-अप्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक मंडल और पीयर रिव्यू कमेटी का है । स्तरीयता एवं मौलिकता आदि के परीक्षण के बाद ही शोधालेख की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा, मुझे मान्य होगा । उपरोक्त नियम और शर्तों को मैं स्वीकार करता/करती हूँ।

हस्ताक्षर :-
नाम:-
मोबाइल नं. :-

व्यक्तिगत पंच वार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी । शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा । इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं ।

STANDARD NORMS FOR AUTHORS

Nagfani, the U.G.C. Care listed journal publishes articles, research papers etc. written by the members of journals only. The manuscripts should contain the following:

1. Abstract with keywords
2. Objectives
3. Conclusions
4. References
5. Word limit is 3000 (For higher limits, please contact the editor)

UNDERTAKING BY AUTHOR

I———— certify/undertake to say that the manuscript entitled———submitted for publication in the NAGFANI issue is an unpublished original work. I know that I will be fully responsible for any controversial situation arising out of the manuscript/article or part of it. I also transfer the rights to edit, review and conserve the manuscript to the peer review committee of NAGFANI.

Signature of the author:
Mobile No:

अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट देखिए http%//naagfani.com